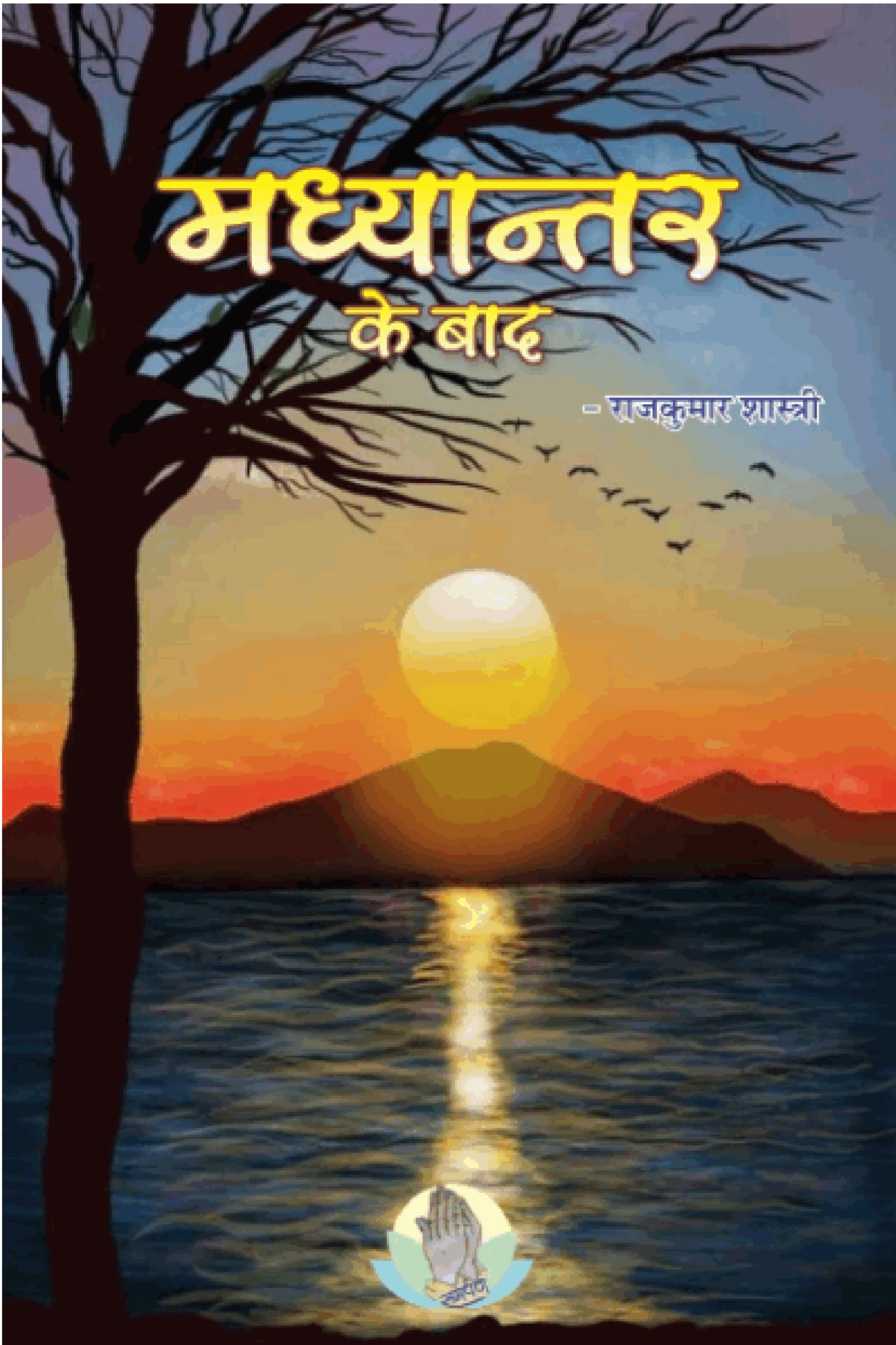
मध्यान्तर
के बाद
- राजकुमार शास्त्री

लेखक द्वारा प्रकाशित साहित्य

मध्यान्तर

के

बाद

– राजकुमार शास्त्री, द्रोणगिरि

परिवार दो शब्दों से बना है परि+वार अर्थात् चारों ओर से ढ़ँकना, आच्छादित करना। जो हमें हर दुःख की परिस्थिति से, प्रतिकूलताओं से दूर रखता है, आच्छादित करता है, हमें ढ़ँककर सुरक्षा प्रदान करता है, वह हमारा परिवार है। आज की भाषा में कहें तो परिवार हमारा सुरक्षाचक्र है, जो हमें बुरे कार्यों से बचाता है, मिथ्यामार्ग पर जाने से हमें रोकता है और जो हमें सुख के मार्ग पर न्याय-नीति-धर्म के मार्ग पर चलने के लिए सुरक्षित वातावरण प्रदान करता है। परिवार में हमारा तन-मन-धन तीनों ही सुरक्षित रहते हैं। परिवार के सदस्य दादा-दादी, माता-पिता, ताऊ-ताई, चाचा-चाची आदि होते हैं।

- इसी पुस्तक से

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का 32 वाँ पुष्प

मध्यान्तर के बाद

(पारिवारिक समस्याओं के समाधान एवं तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार की जीवन में उपयोगिता को दिग्दर्शित करने का प्रयास)

लेखक
राजकुमार, द्रोणगिरि

प्रकाशक
समर्पण
18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)
मो. 91 9414103492

उपन्यास	**: मध्यान्तर के बाद**
प्रथम संस्करण	: 1100 प्रतियाँ (20 सितम्बर 2020, रविवार)
प्राप्ति स्थान	**: शाश्वतधाम, उदयपुर** मो. 9414103492
	: श्री दिनेश शास्त्री, जयपुर मो. 9928517346
लागत मूल्य	: 69 रुपये
साहित्य प्रकाशन-	
हेतु सहयोग राशि	: 50 रुपये
मुद्रक	: देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर मो. 9928517346

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले दातार

1. श्री विवेकजी जैन, बहरीन	5100/-
2. श्री गुलाबचन्दजी जैन, डाबी	5100/-
3. श्री दिलीपभाई वेलजीभाई शाह, मुम्बई	5000/-
4. डॉ. पारसमलजी अग्रवाल, उदयपुर	4000/-
5. श्री जिनेशजी जैन, इन्दौर	2100/-
6. श्री रमेश-श्रुत वालावत, उदयपुर	2100/-
7. श्री कुंदनकुमार-अमन पचोरी, उदयपुर	2100/-
8. श्री अशोक-समकित-भरत-प्रद्युम्न-डॉ. सम्यक् जैन	2100/-
9. श्रीमती मीना-आलोक दाऊ, घुवारा	2100/-
10. श्री मुकेशकुमारजी जैन पुत्र श्री मुन्नालालजी जैन, बड़ोदिया	2100/-
11. श्रीमती नंदनीबाई जैन, द्रोणगिरि	2000/-
12. डॉ. ममता-निष्ठा-विपाशा जैन, उदयपुर	2000/-
13. श्री चेतनजी वालावत, उदयपुर	2000/-
14. श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर	2000/-
15. श्री राजेन्द्रजी बैनाड़ा, उदयपुर	2000/-
16. श्री अशोककुमारजी जैन, जबलपुर	2000/-
17. श्रीमती वीना मुदोलकर, नागपुर	1100/-
18. श्री नेमीचंदजी चंपालालजी भोरावत चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	1100/-
19. श्रीमती मधु बोहरा, कोटा	1100/-
20. श्रीमती सुनीता-महेश जैन, अहमदाबाद	1100/-
21. एक बहिन, बालोतरा	1100/-
22. गुप्तदान, उदयपुर	1100/-
23. श्रीमती पदमा जैन, डबरा	1100/-
24. श्री अमित 'अरिहंत', मडावरा	250/-

प्रकाशकीय

अभी तक **'समर्पण'** द्वारा प्रकाशित साहित्य पाठकों के बीच भरपूर पसन्द किया गया। एतदर्थ लेखकों/पाठकों/अर्थ सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

'समर्पण' के 32वें पुष्प के रूप में राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित **'मध्यान्तर के बाद'** प्रस्तुत है। आशा है पाठक इस कृति के विषयों पर विचार करते हुए अपने सामाजिक/पारिवारिक/व्यक्तिगत जीवन में योग्य परिमार्जन करेंगे।

'समर्पण' द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रकाशन सहयोग हेतु पाठकों द्वारा अधिकांश अर्थ सहयोग पहले ही प्राप्त हो जाता है, अतः अधिकतर साहित्य **'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ'** के आधार पर जाता है। अनेक साधर्मी अधिक संख्या में साहित्य लेते हैं तो सहयोग राशि भी प्रदान करते हैं, वह राशि जिन प्रकाशनों में सहयोग कम आता है, उनके प्रकाशन में व्यय हो जाता है।

पाँच वर्ष की अल्पावधि में 31 पुष्प प्रकाशित होना एवं उनका समाप्त होना हमारे लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन्होंने अर्थ सहयोग प्रदान किया है, उन्हें धन्यवाद। पुस्तक के आकर्षक मुद्रण हेतु श्री दिनेश शास्त्री–देशना कम्प्यूटर्स जयपुर को भी साधुवाद देते हैं, जो कम समय में हमारी इच्छानुसार प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते हैं।

आप पुस्तक पढ़कर जो भी आपके भाव हों, वह 9414103492 पर अवश्य ही सूचित करें। धन्यवाद।

निवेदक : **'समर्पण' चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर**

अन्तर्मन

मेरे द्वारा लिखित '**मध्यान्तर**' पुस्तक को पढ़कर आदरणीय अशोकजी लुहाड़िया भाईसाहब ने मुझसे कहा कि तुमने मध्यान्तर तक का जीवन तो लिखा; परन्तु मैं समझता हूँ कि '**मध्यान्तर के बाद**' अर्थात् लगभग 45-50 वर्ष की आयु के बाद प्रत्येक परिवार में आपसी द्वन्द्व चलते हैं, जिनमें बच्चों की पढ़ाई, विवाह, प्रेम विवाह, विधर्मी विवाह, आधुनिक परिवेश की बहू, बेटा-बेटी या पोता-पोती का पहिनावा आदि विषयों में मतभेद विवाद का कारण बनते हैं, जब दो या तीन पीढ़ियाँ एक साथ रहतीं हैं, तब बीच वाले सदस्य को, अपने आगे-पीछे की पीढ़ी से अथवा मात्र अपनी अगली पीढ़ी से तालमेल बैठाना बहुत ही मुश्किल होता जा रहा है; अतः इस विषय पर भी कुछ लिखो।

लगभग 3 वर्ष से इस विषय के बारे में सोचते हुये करीब 1 वर्ष पूर्व से इस विषय पर लिखना प्रारंभ किया, जिसे आपने '**संस्कार सुधा**' के अंकों में पढ़ा होगा। कोरोना के कारण हुये लॉकडाउन के कारण यह कार्य अत्यन्त तीव्र गति से पूर्ण हुआ।

मैं '**मध्यान्तर**' पुस्तक के प्रारंभ में लिख चुका हूँ कि 'मैं समाज, संस्था, परिवार या व्यक्ति के जीवन में जो विकृति देखता हूँ, उसके संबंध में ही लिखना चाहता हूँ। कथानक तो एकमात्र माध्यम है, पर जो कहना है, वह कहता हूँ।'' साहित्य की कसौटी पर यह सफल होगा या नहीं मैं इस विचार से भी निर्भार हूँ; फिर भी यदि यह पुस्तक किसी एक भी व्यक्ति की सोच बदलने में कारगर रही तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूँगा।

प्रकाशन से पूर्व आदरणीय ब्र. कल्पना बहिनजी, भाई अजित शास्त्री अलवर व भाई पीयूष शास्त्री जयपुर ने इस कृति का अवलोकन कर आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान किया; एतदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

'**मध्यान्तर**' कथानक से नाम के साम्य के अतिरिक्त '**मध्यान्तर के बाद**' का कोई संबंध नहीं है। पुस्तक पढ़कर पाठक अपने अभिमत से हमें अवगत करायेंगे तो हम कृतार्थ होंगे।

23.06.2020 – **राजकुमार,** द्रोणगिरि (मो.9414103492)

मध्यान्तर के बाद...

1

आज अचानक हँसमुख भाईसाहब का पत्र आया। उन्होंने लिखा था तुम्हारे द्वारा लिखित 'मध्यान्तर' पुस्तक पढ़ी। पुस्तक में अपने जीवन की घटनाओं को तो बहुत ही अच्छी तरह शब्दों में पिरोया है। साथ ही जीवनोपयोगी सन्देशों को भी सरल शब्दों में व्यक्त किया है। जिससे निश्चित ही पाठकों को लाभ मिल रहा होगा।

समाज और संस्थाओं में होने वाली विसंगतियों के बारे में तुमने जो लिखा है, उन परिस्थितियों को मैंने भी नजदीक से देखा और भोगा है। लगता है **'कौये हर जगह ही काले होते हैं'** कि कहावत चरितार्थ हो रही है। निर्दोष/निरन्तराय धर्म की साधना व प्रभावना इस पंचम काल में विरले जीव ही कर पाते हैं।

तुम भाग्यशाली हो कि तुमको अजेय एवं आदि जैसे सन्मित्र मिले हैं, जो सदा तुम्हारे विचारों से सहमत रहते हैं, मार्गदर्शन देते हैं व सहयोग करते हैं। सच में **सन्मित्र की प्राप्ति बड़े भाग्यवान को ही होती है।**

यह सब सच्चाई होते हुये भी मुझे यह सोचकर आश्चर्य होता है कि **''स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ फल निश्चय ही वे देते''** वाले कर्मसिद्धान्त को एवं **''जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे''** जैसे महान क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त को समझने व समझानेवाला युवराज किंचित् अपयश या पापोदय आ जाने से विचलित क्यों हो गया? क्या क्षेत्र का क्षेत्रान्तर होना पाप का उदय है?

पुण्य-पाप का उदय तो हमारे अनुभव करने पर है; अतः तुम्हारे जैसा

विचारक, किराये का मकान बदलने में दु:खी होने लगे – यह शोभास्पद नहीं है।

और सच्चाई तो यह है कि तुम्हारे स्थान बदलने के निमित्त से एक और संस्थान खड़ा हो गया है, बालिकायें जो कि समाज व परिवार का भविष्य हैं, उनका भविष्य सम्हालने का महाभाग्य स्नेहा को और तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसे प्रसन्नतापूर्वक वहन करना।

तुम्हारे जीवन में इतनी उपलब्धियाँ हैं, जिन्हें देखकर अनेक जन ईर्ष्या करते होंगे/करेंगे; क्योंकि लोग घर बैठे, हाथ पर हाथ रखे और कुछ करें न करें, परन्तु आलोचना तो करेंगे ही; क्योंकि उन्हें ऐसा करने में बहुत आनन्द आता है। मुझसे भी कुछ समय पूर्व किसी ने कहा था कि 'युवराज आत्महित में न लग कर केवल प्रचार–प्रसार में आपना समय खराब कर रहा है, हम तो जितना समय होता है, स्वाध्याय करते हैं, नहीं तो परिवार में शान्ति से रहते हैं। हम युवराज जैसे फालतू के प्रपंचों में नहीं पड़ते।' तब मैंने एक गीत लिखा था, जिसे अभी भेज रहा हूँ –

योजनाओं अरु संस्थाओं में, उलझ रहा युवराजकुमार।
जीवन की है यह बरबादी, घर बैठे सब करें विचार।।

तन पोषते, धन हैं कमाते, समय व्यर्थ ही खोते हैं।
अखबार पढ़ें अरु टीवी देखें, समय–असमय सोते हैं।।

निज बच्चों संग खेल कबड्डी, उछल–कूद जो करते हैं।
रविवार को देर तक सोते, और घूमते–फिरते हैं।।

रिश्तेदारी सभी निभाते, और मनाते सालगिरह।
ऐसी चिन्ता रहे सदा ही, परिजन का न रहे विरह।।

धन–समाज को पहले चाहें, धर्म बाद में करें विचार।
फिर भी घर बैठे सोच रहे हैं, उलझ रहा युवराज कुमार।।

पर भाई मानव तन पाया, जैनधर्म-सा पाया धर्म।
जीवन की तो वह बरबादी, जिसमें बँधते रहते कर्म।।

निज हित हेतु दर्शन-पूजन, नित्य करो तुम यदि स्वाध्याय।
साधन हुआ जीविका का तो अब मत फैलाओ व्यवसाय।।

विषय-कषायों के पोषण में, जीवन कई बिताये हैं।
चतुर्गति में भटक-भटक कर, पुण्योदय यहाँ आये हैं।।

स्वाध्याय-सामायिक, चिंतन में, यदि जीवन जीते हो।
रिश्तेदारी, विषय-कषायों से, यदि थोड़े रीते हो।।

बहुत ही सुन्दर जीवन है यह, और बढ़ाओ तुम पुरुषार्थ।
संस्थाओं के भी प्रपंच में, फँसना और उलझना व्यर्थ।।

पर यदि ऐसा नहीं है भैया, तो फिर तुम कुछ करो विचार।
साधर्मी अरु निज हित हेतु, तत्त्व समझ कर करो प्रचार।।

शुद्धभाव ही है अति उत्तम, पर जब तक नहीं वह आता।
अशुभभाव से बचकर बंधु, शुभ में लगो मिले साता।।

वात्सल्य यदि होय हृदय में, तब होती है प्रभावना।
छोड़ प्रमाद-स्वच्छंद भाव को, भाओ सम्यक् भावना।।

देखो युवराज! उपलब्धियाँ बढ़ने पर आलोचनायें तो बढ़ेंगीं ही; परन्तु ध्यान रखना आलोचकों को अपना शत्रु नहीं मानना। जिस कार्य की आलोचना की जा रही है, उस पर भलीभाँति दृष्टिपात करना। यदि उसमें सुधार की आवश्यकता है तो उन्हें धन्यवाद देते हुये सुधार करना और यदि तुम्हारा कार्य आगम-सम्मत/न्यायनीति-सम्मत है तो बेझिझक करना। आलोचकों से घबराना नहीं, ध्यान रखना आलोचकों के स्मारक नहीं बनते।

मुझे तुम्हारी क्षमताओं व स्नेहा की ममता पर पूरा विश्वास है; तुमको सफलता मिलेगी ही। स्नेहा से इतना कहना कि वह अपने विचारों का अवलोकन करती रहे। कार्य की अधिकता से अन्य किसी की अवहेलना न हो जाये, इस बात का ध्यान अवश्य रखे; क्योंकि सभी को अवसर/बुद्धि/भावना समान नहीं होती। कई लोग करना चाहते हुये भी कुछ कर नहीं सकते; अतः जो भी तन-मन-धन, कृत-कारित-अनुमोदना से सहयोग करें; उन्हें धन्यवाद देते हुये कार्य स्वयं करना, पर श्रेय सभी सहयोगियों को देना।

अपने घर, पति, बच्चों के बारे में सोचने वाली महिलायें तो लाखों हैं; पर ऐसे पारिमार्थिक कार्य करने वालीं 1-2 ही होती हैं। **अपने बच्चों पर वात्सल्य लुटाने, उनका ही ध्यान रखने वाली तो मनुष्य की माता क्या, पशुओं की मातायें भी होती ही हैं;** पर अन्य बच्चों पर अपना स्नेह लुटाने का अवसर स्नेहा को मिला है; जिसके परिश्रम/त्याग को अन्य महिलायें व समाज नहीं समझ सकती। मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि तुम अपनी रुचि के प्रतिकूल उसका ध्यान रखना व प्रोत्साहित करना।

एक बात और कहना चाहूँगा कि तुम युवराज ही रहना, कहीं के राजा बनने की भावना नहीं रखना। जिस तरह एक स्थान छोड़कर आये हो, उसी तरह यहाँ पर पहले से ही हटे हुये रहना।

और हाँ तुमने लिखा है कि अब मौका मिलेगा तो प्रौढ़ वर्ग के लिए संस्थान खोलोगे; मुझे तुम्हारी भावना का पता है, तुम जितना जल्दी हो सके अपनी भावना/कल्पना/स्वप्न को साकार करो। प्रौढ़ वर्ग के लिए सच में ही ऐसे स्थान कम हैं, जहाँ पर वे पारिवारिक/धार्मिक वातावरण में जीवन-यापन कर सकें।

एक बात और! 'शांतिधाम' का निर्माण तो होगा ही, क्योंकि तुमने

सोचा है; पर सावधान रहना 'शांतिधाम' बाहर बनाने की भावना भले रहे, प्रयास भी करना पर सच में 'शांतिधाम' बाहर नहीं अन्दर है। बाहर के 'शांतिधाम' को बनाने व चमकाने के चक्कर में परमार्थ 'शांतिधाम' पर चढ़ी हुई धूल और न बढ़ जाये। इस जीवन में और कुछ हो या न हो पर परमार्थ 'शांतिधाम' को चमकाने का उद्यम अवश्य करना।

स्नेहा, सहज, मुक्ति को ढेर सारा प्यार। 'शांतिधाम' में सुखपूर्वक कुछ दिन बिताने का हमें भी शीघ्र अवसर प्राप्त हो इसी भावना के साथ – हँसमुख जैन।

"प्रौढ़ वर्ग हित हो शांतिधाम" – यह युवराज का एक चिर संचित स्वप्न है।

वह स्वयं सोचता है कि मैंने अभी तक तो दूसरों के स्वप्न को अपना स्वप्न बनाकर पूरा किया है, पर अब अपने स्वप्न को पूरा करने का उत्साह व प्रयास है।

युवराज की यह धारणा रही है कि यदि कार्य की योग्यता होगी तो ही कार्य होगा, सोचने या करने से नहीं होगा, तब भी यदि कुछ सोचना ही है तो अच्छा ही सोचो।

प्रौढ़ वर्ग के लिए 'शांतिधाम' खोलने का विचार युवराज को अनायास ही नहीं आया है; अपितु इसके अनेक कारण हैं – जिनमें एक प्रमुख कारण यह है कि चाहे/अनचाहे परिवारों में बिखराव हो रहा है, बेटा-बेटी-बहू-पोते-पोती अपने व्यवसाय/शिक्षा या वैचारिक मतभेद के कारण माता-पिता, दादा-दादी से दूर हो रहे हैं, साथ में रहते भी हैं तो बात-बात में कलह होती रहती है या जहाँ वे रह रहे हैं, वहाँ स्वाध्याय के अवसर नहीं हैं, साधर्मियों की संगति नहीं है; इस अवस्था में वे अपने

सुख-दु:ख एक-दूसरे को सुना सकें, समस्त दु:खों के अभाव हेतु जिनवाणी सुन सकें एवं सामान्य जीवन जी सकें - ऐसे स्थान की कमी (मकान बड़ा होते हुए भी) उन्हें लगती है।

इन सब परिस्थितियों को देखते हुए 'शांतिधाम' की कल्पना मन में आती है, क्योंकि जीवन के '**मध्यान्तर**' तक तो सबको ऐसा लगता है कि सब कुछ मेरे ही हाथ में है; परन्तु '**मध्यान्तर के बाद**' ऐसा लगने लगता है कि परिजन-पुरजन तो क्या अपनी छाया भी मानो साथ छोड़ रही है, ऐसे में यदि जिनवाणी का अवलंबन मिल जाये तो समझो मरुस्थल में शीतल छाया व भोजन ही मिल गया है।

हँसमुखजी के पत्र से युवराज को यह कार्य संपादित करने की प्रेरणा प्राप्त हुई, जिससे भावना सुदृढ़ हुई, स्नेहा तो उसके हर विचार को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध ही है। जिन सामाजिक/पारिवारिक समस्याओं को लेकर 'शांतिधाम' की कल्पना मन में आई है, वे पारिवारिक परिस्थितियों/मतभेदों के दृश्य युवराज के मस्तिष्क में एक के बाद एक उमड़-घुमड़ कर आने लगे।

ooo

भावना

विविध शुभाशुभ भाव जीव यह, करता रहता है हर बार।
पाता है आकुलता निशदिन, दु:खमय चतुर्गति संसार।।
शान्ति मानता परद्रव्यों से, विषयों की रहती आशा।
जैसे ही आतम रुचि लगती, मोह शत्रु सत्वर नाशा।।
नहीं विषय सुख रुचिकर लगते, जन्म जगत में लगे कलंक।
दश वृष धरकर मिले विपाशा, नष्ट होंय सब विधि के पंक।।

2

मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध नगर सागर के प्रतिष्ठित श्रेष्ठी लालचन्द जैन, अपनी धर्मपत्नी श्रीमती विमला जैन, दो पुत्र-पुत्रवधु, दो पौत्र व एक पौत्री के साथ आनंदमय जीवन जी रहे थे। पुण्योदय से व्यवसाय तो अच्छा चल ही रहा था, साथ ही वे सामाजिक/धार्मिक कार्यों में भी सदैव अग्रणी रहते, जिसके कारण व्यापार मण्डल व समाज में उनका अच्छा स्थान था। इस पुण्योदय के साथ 'महान पुण्योदय' यह था कि श्रावक के षट् आवश्यकों के प्रति भी उनकी पूर्ण आस्था व प्रवृत्ति थी।

सेठ लालचन्दजी जिनमंदिर में चलने वाली पंडित ज्ञानचन्दजी की स्वाध्याय सभा के भी कुछ समय से नियमित श्रोता हो गये थे। श्रीमती विमला भी विमलबुद्धि की थीं, शुद्ध भोजन के साथ शुद्धात्मा की चर्चा सुनना व आनंद लेना - यह उनकी दिनचर्या थी।

एक बार पंडित ज्ञानचंदजी, अपने प्रवचन में जीवन में स्वाध्याय करने की आवश्यकता बतला कर नियमित स्वाध्याय करने की प्रेरणा देते हुए कहने लगे कि "यदि आजीविका का साधन हो गया है, तो भाई अब स्वाध्याय/आत्महित के मार्ग में लग जाना चाहिये। जगत के जंजाल में उलझ कर दु:खी नहीं होना चाहिए। कहा भी है - **जिंदगी छोटी है जंजाल लंबा है, इसलिए जंजाल छोटा कर तो सुखरूप जिंदगी लंबी लगने लगेगी।**"

लालचन्दजी ने पंडितजी से पूछा कि 'पण्डितजी जंजाल कम करने से हमारी जिंदगी बढ़ जायेगी?'

"नहीं भाई! जिंदगी बढ़ नहीं जायेगी; परन्तु वर्तमान में हमारी जिंदगी (आयु) जितनी है, उसमें से हम अभी प्रयोजनभूत अर्थात् आत्महित के कार्यों के लिए तो कम समय देते हैं और अप्रयोजनभूत

अर्थात् संसार के विषय-भोगों के कार्यों के लिए अधिक समय देकर अपने प्रयोजनभूत अर्थात् लाभ के काम समय पर कर नहीं पाते, जिससे लंबी जिंदगी भी प्रयोजनभूत काम के लिए छोटी लगने लगती है।

जैसे हम रोजाना घंटों टी.वी. देखने, अखबार पढ़ने, मोबाइल पर बातें करने, राजनीति की बातें करने, पार्टियों में जाने, जन्मदिन मनाने में व्यतीत कर देते हैं; जिसके कारण प्रतिदिन के आवश्यक कार्य पूजन/स्वाध्याय भी छूट जाते हैं और लौकिक धन प्राप्ति के कार्य भी दौड़ते-भागते, सोते-जागते - जैसे बने वैसे कर ही लेते हैं।

इसलिये यह बात तो बड़े हों या बच्चे - सभी के लिये है कि यदि आत्महित करना है और आकुलता रहित होकर लौकिक कार्य भी करना है, शांति से जीवन जीना है, तो व्यर्थ के जंजाल कम करना चाहिये। यदि हम ऐसा करें तो बिना व्यापार आदि काम छोड़े, बच्चे बिना पढ़ाई छोड़े, मंदिर आ सकते हैं, स्वाध्याय सुन सकते हैं, शांतिपूर्वक अपने सभी काम कर सकते हैं।

और आप जैसे लोगों से तो यही कहना है कि आपके बच्चों ने तो व्यापार सम्हाल लिया है या अपनी आजीविका का कोई दूसरा काम करने लगे हैं तो आपको तो व्यापार/नेतागिरि जैसे कार्य छोड़कर आगम के अभ्यास में लगना ही चाहिये। **बिना आगम-बल के आतम-बल नहीं आता।** आखिर क्यों 65-70 वर्ष की आयु में भी अपने आपको जवान मानकर कमाने व परिवार की जिम्मेदारियों को सम्हालने में लगे हो? इस उम्र में तो सरकार भी रिटायर्ड कर देती है कि भइया आपने बहुत सेवा कर ली, अब धर्म साधन करो; परन्तु व्यापारी वर्ग 80 वर्ष में भी रिटायर्ड नहीं होना चाहता; उसका बस चले तो दुकान पर ही प्राण छोड़े; परन्तु भाई इस अति तृष्णा का फल नरक गति है; अतः सावधान होकर शान्तिपूर्वक आत्महित के लक्ष्यपूर्वक स्वाध्याय में लगना चाहिए।"

सेठ लालचन्द ने कहा कि "पण्डितजी हम सभी स्वाध्याय में तो आते ही हैं, तो फिर व्यापारादि कार्य बन्द क्यों करना?"

पण्डितजी ने कहा "यह बात सही है कि आप सभी स्वाध्याय में आते हो; परन्तु आपका मन/दिमाग/मस्तिष्क तो व्यापार/परिवार/समाज की जिम्मेदारियों से इतना भरा हुआ है कि हम कुछ भी बात समझाते हैं, तो दिमाग में 'हाउसफुल' का बोर्ड लगा मिलता है, जिससे जिनवाणी दिमाग में प्रवेश ही नहीं कर पाती है।"

इस बात को सुनकर सभी श्रोता हँस पड़े।

एक अन्य श्रोता सिंघई बालचन्दजी बोले "हाँ पण्डितजी यह बात आपने सही कही। आपके प्रवचन हम जब सुनते हैं, तब तो ऐसा लगता है कि सब समझ में आ गया; परन्तु कुछ समय बाद कोई पूछे या स्वयं भी हम याद करने की कोशिश करें कि आज स्वाध्याय में क्या आया तो कुछ याद ही नहीं आ पाता है।"

"हाँ यही तो मुझे कहना है कि सबसे पहले अपने दिमाग में जो पहले से लिखा हुआ है, वह मिटाओ। दुनियादारी-व्यापार-रिश्तेदारी-कर्तृत्व की बातें भरी हुई हैं, उनको बाहर निकालो, तब ही वीतराग भगवान द्वारा कही अकर्तृत्व की बात कुछ समझ में आयेगी। **जिनवाणी के स्वाध्याय बिना सच्चा वस्तुस्वरूप समझ में नहीं आ सकता और वस्तु का सही स्वरूप जाने बिना जीवन में शान्ति नहीं आ सकती।** 'नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्' अर्थात् सम्यग्ज्ञान से श्रेष्ठ कोई सुख नहीं है। जीवन का तो कोई भरोसा है नहीं, किस समय यह जीवन समाप्त हो जाये। कहा भी है -

'जीवन का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा।
जैसे चमत्कार बिजली का, अरु इन्द्रधनुष आकाशा।।'

यह जीवन पानी के बुलबुले के समान या आकाश में चमकने वाली

बिजली के समान या आकाश में दिखने वाले इन्द्रधनुष के समान क्षणिक है, जो देखते-देखते ही समाप्त हो जायेगा; इसलिए इसका विश्वास नहीं करना चाहिए। अब तो वैसे भी हम सब 'मध्यान्तर के बाद' वाली आयु भोग रहे हैं, इसलिए आप भलीभाँति, सोच-विचार कर आत्महित की भावना से स्वाध्याय में लगें - यही कामना है।"

इसी के साथ पण्डितजी ने स्वाध्याय पूरा किया।

आज पण्डितजी की बात सेठ लालचन्दजी के हृदय को छू गई; अतः घर आते ही सहधर्मिणी विमला से इस विषय पर चर्चा करने लगे कि "सच में अभी तक हमने कितना समय व्यर्थ के जंजाल को फैलाने में ही गँवा दिया है, यदि मुझे भी पिताजी ने किसी संस्थान में पढ़ने भेजा होता तो मैं भी प्रवचन कर रहा होता या जवानी में ही स्वाध्याय करने का मौका मिल गया होता तो बात कुछ और ही होती।" लालचन्दजी लंबी साँस लेते हुये बोले "पर अब क्या हो सकता है ? जो समय बीत गया, वह तो वापिस नहीं आ सकता; अब तो हम कुछ भी नहीं कर सकते; सारा जीवन ही बेकार चला गया।"

"अरे भाई ! आपने क्या यह बात नहीं सुनी है कि जो रात गई, वह रात गई; वह रात न वापिस आती है। जो बात गई, वह बात गई; वह बात न वापिस आती है। दुल्हन को ले बारात गई; बारात न वापिस आती है।" हँसते हुये विमला ने कहा।

लालचन्दजी भी चुहलबाजी करते हुये बोले कि "हाँ दुल्हनजी ! सही कह रही हो, तुमको लेकर मेरी बारात भी कहाँ वापिस गई, मुझे यह पता है; परन्तु मुक्तिरूपी दुल्हन को लाने के लिए तो हमने न तो बारात और न बाराती - दोनों ही अभी तक तैयार नहीं किये और आयु का तो भरोसा नहीं कब/कैसे/कहाँ पूरी हो जाये; दाँत नकली आ गये,

बाल सफेद हो गये, गाल पिचकने लगे हैं। यदि ऐसा ही चला तो मुक्ति दुल्हन से विवाह होने की तो बात दूर, सगाई भी नहीं हो पायेगी।'' लालचन्दजी ठंडी साँस लेते हुये बोले।

''इसीलिये – 'बीति ताहि बिसारि दे, आगे की सुध लेय' की शिक्षा काम में लेना चाहिये। जो समय बीत गया, उसकी बात न करके जो समय शेष है, उसका सदुपयोग कैसे हो ? यह विचार करना चाहिए। हाँ एक बात! और पण्डितजी ने आत्महित की भावना से स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी है, प्रवचनकार बनने की भावना से नहीं। अब हमें अपने बच्चों को व्यापार/परिवार सम्हलाकर अपना अधिकांश समय आगम और आतम साधना में लगाना चाहिए।' विमलादेवी ने कहा।

''हाँ! यह बात तो तुम सही कह रही हो। अपने सचिन और राजीव – दोनों ही बेटे योग्य हैं, अपना व्यापार अच्छी तरह सम्हालने लगे हैं; अत: अब मुझे व्यापार की चिंता करना छोड़ ही देना चाहिये।''

''व्यापार और उसकी चिंता छोड़कर फिर आप क्या करोगे ?'' विमलादेवी ने पूछा।

''फिर करेंगे क्या ? जो करना था वह कर लिया, अब तो बस आराम से रहेंगे।''

''देखो सेठजी! भोजन करके आराम से पड़े रहने के लिए व्यापार नहीं छोड़ना है। और जो आप कह रहे हैं कि जो कुछ करना था, वह कर लिया; पर सच तो यह है कि अभी तक तो करने योग्य कुछ किया ही नहीं है, अपना कार्य करना तो प्रारंभ ही नहीं हुआ है। शरीर/व्यापार/परिवार/समाज का मैंने कुछ किया है, यह तो भ्रम है, व्यर्थ का अहंकार है।''

''अच्छा तो व्यापार मैंने नहीं किया, मैंने बच्चों को पढ़ाया–लिखाया नहीं, समाज में कुछ योगदान नहीं किया तो यह सब आपने किया होगा ?'' मुस्कराते हुये लालचन्दजी ने कहा।

"मैंने तो नहीं किया, पर आपने भी सच में यह सब नहीं किया है ?"

"तो फिर क्या ये सब काम पड़ौस वाले करके गये हैं ?"

"नहीं; पड़ौस वाले भी नहीं करके गये।"

"तो फिर क्या अपने आप हो गये ? या कह दो बच्चे हुये ही नहीं हैं, मकान बनाया ही नहीं है।"

"सेठजी इन सब होते हुये काम का असली करने वाला कौन है ? यही समझने के लिए तो पण्डितजी ने कहा है कि व्यापार से निवृत्ति ले लो और......."

"अरे भाई! हम जो कह देते हैं करके ही रहते हैं, यह तो मैंने कह ही दिया है कि व्यापार कल से ही छोड़ देंगे और आराम से रहेंगे।"

"यह तो ठीक है कि आप व्यापार से निवृत्ति ले लेंगे, परन्तु **प्रवृत्ति बिना निवृत्ति निरर्थक है;** इसलिए स्वाध्याय/तत्त्वाभ्यास की प्रवृत्ति में लगे बिना व्यापार की निवृत्ति, निरर्थक है और सत्य समझे बिना, जीवन में आराम/सुख प्राप्त नहीं हो सकता।"

"यह बात तो तुम सही कह रही हो। तो अब तुम्हीं बताओ मुझे क्या करना चाहिए।"

"भूतकाल में हमने अनंतभव ऐसे ही विषय-कषायों में खो दिये, तत्त्वविचार के योग्य बुद्धि और संयोग ही नहीं मिले, कभी मिले भी तो उन्हें भी व्यापार/समाज/राजनीति में लगाकर पाप में ही लगाया और संसार में ही परिभ्रमण किया। अब हमें मनुष्यभव और जैनधर्म तत्त्व-विचार करने को मिला है, हमारा महान पुण्योदय है कि तत्त्व-विचार के योग्य सभी संयोग मिल गये हैं, अब यदि हमने प्रमाद में आराम करते/सोते/अखबार पढ़ते समय बिताया या मन्दकषाय पूर्वक जो भी खाने-पीने आदि के विषय प्राप्त हैं, उन्हें बिना विशेष तृष्णा/आसक्ति के भोगते

हुये समय बिताया या फिर मात्र मन्दिर जाने/पूजन करने/प्रवचन सुनने/यात्रा–दान आदि करने में ही बिताया और धर्म मान लिया तो अवसर तो चला जायेगा और संसार में ही भ्रमण होगा; इसलिए अब हमें अपना पूरा समय तत्त्वनिर्णय और तत्त्वाभ्यास में ही लगाना चाहिए।''

''हे विमलमति ! आपने पूर्णतया सत्य बात कही है। अब हमें तत्त्व–प्राप्ति के व्यापार में ही लगना चाहिए।''

''चलो ठीक है सेठजी, आपके बेटे व्यापार सम्हालने लगे हैं, इसलिए आप व्यापार आज नहीं पर कल छोड़कर तत्त्वाभ्यास के व्यापार में लग जाना और मैं तो घर के कार्यों से पहले से ही निवृत्त हूँ; क्योंकि मेरी प्यारी दोनों बहूरानियाँ भी रसोई सम्हालने लगी हैं। अभी भी उन्होंने भोजन तैयार कर लिया होगा और अब भोजन का समय भी हो गया है, चलो भोजन कर लेते हैं, फिर आज से ही स्वाध्याय करना प्रारंभ करेंगे।'' विमलादेवी हँसते हुए बोलीं।

''हाँ–हाँ चलो चलते हैं, बड़ी बहूरानी दो बार देखकर गई है, शायद भोजन तैयार हो गया है इसलिए बुलाने आई होगी; पर आपका प्रवचन चल रहा था, इसलिए वह बिना कुछ कहे वापिस चली गई।'' हँसते हुये सेठजी ने कहा।

''हमारा सौभाग्य है कि इस भौतिकता/आधुनिकता के युग में भी हमारे बेटे–बहू धर्म की रुचि वाले व आज्ञाकारी हैं, जिसके कारण हम निश्चिंत रहकर स्वाध्याय, सामायिक में समय दे सकते हैं, शिविरों में जा सकते हैं; इसलिये समय व स्वास्थ्य का लाभ लेते हुये आत्महित का ही उपाय करना चाहिये।'' इस तरह बातें करते हुये सेठ लालचन्द व श्रीमती विमलाजी भोजन करने चले गये।

OOO

3

सेठ लालचन्द के दो सुपुत्र थे – सचिन और राजीव। दोनों ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पिताजी के ही व्यवसाय में हाथ बँटाने लगे थे। पिताजी से प्राप्त संस्कारों और अपने मृदु व्यवहार के कारण सभी व्यापारियों में ही नहीं, सामाजिक व धार्मिक कार्यों में भी उन दोनों की छवि, पिताजी जैसी ही बन रही थी।

लालचन्दजी ने भी अपने पुत्रों से कह रखा था कि घर–गृहस्थी के कार्य भले ही मेरे बिना पूछे न करना; परन्तु सामाजिक/धार्मिक कार्यों में यदि मुझसे पूछने का अवसर न हो, तो भी तन–मन–धन से उत्साहपूर्वक स्वेच्छा से सहयोग करना। तुम्हारे भावों का फल तुम्हें ही मिलेगा।

माता–पिता से प्राप्त शिक्षाओं के कारण दोनों ही पुत्र अधिकांशत: तो माता–पिता से अनुमति लेकर ही काम करते; परन्तु यदि लालचन्दजी दुकान पर न हों और कोई दान लेने या अन्य किसी सामाजिक/धार्मिक काम से आ जा जाये तो कभी किसी को निराश नहीं लौटना पड़ता था। इस तरह किसी को यह नहीं लगता था कि लालचन्दजी नहीं हैं तो काम नहीं होगा।

सच ही कहा 'पुत्र वही है, जो पिता की याद भुला दे।' अर्थात् इतने अच्छे काम करे कि किसी को ऐसा न लगे कि इसके पिताजी होते तो वे ऐसा या इतना सहयोग करते।

यह कार्य तभी संभव है जब पुत्र, सुपुत्र होकर पिता के आदर्शों का अनुगामी बनकर सक्रिय रहे।

सचिन का विवाह उज्जैन नगर के श्रेष्ठी सतीश जैन की पुत्री सरिता से हुआ था। सरिता गृहकार्य में दक्ष व धर्मप्रेमी महिला थी, इनके चिरंतन व सुयशा पुत्र–पुत्री थे।

छोटे पुत्र राजीव का विवाह नागपुर निवासी श्री सुभाष जैन की पुत्री अनीशा से हुआ था। अनीशा के पिता सुभाष का स्वर्गवास उसके बचपन में ही हो गया था। अनीशा की माँ सरलादेवी ने ही बड़े परिश्रम पूर्वक अपने बच्चों का लालन-पालन किया, इनके अन्वया व अन्वय पुत्री-पुत्र थे।

सरिता और अनीशा दोनों ही बहिनों के समान स्नेहपूर्वक रहतीं। पिछले सात वर्षों से दोनों साथ में ही रह रहीं थीं। एक ही घर में लालचन्दजी का भरा-पूरा परिवार - जिसमें दो पुत्र-पुत्रवधुयें एवं दो पौत्र व दो पौत्री हैं, सभी बहुत ही स्नेहपूर्वक रह रहे थे। एक पुत्री सुरक्षा थी, जिसका विवाह पाँच वर्ष पूर्व जबलपुर के शाह विनोदकुमार जैन के सुपुत्र डॉ. सुलभ जैन के साथ हुआ था। साढ़े तीन वर्ष का अनघ नाम का दौहित्र भी था। सुरक्षा आनन्दपूर्वक ससुराल में रह रही थी।

सरिता व अनीशा के व्यवहार से यह पता ही नहीं चलता था कि कौन किसका पुत्र या पुत्री है। रसोईघर में भी मिलकर काम करतीं। अनीशा सरिता की तरफ से पूरी अनुमति होने पर भी प्रतिदिन पूछकर ही कोई काम करती या कहीं जाना हो तो जाती।

बहुओं के पारस्परिक स्नेह को देखकर लालचन्दजी व विमलाजी को अपार प्रसन्नता होती। आज एक ओर विवाह होते ही दूसरे दिन बेटा-बहू अलग रहना चाहते हैं, स्वतंत्र जीवन जीना चाहते हैं, वहाँ पर इस तरह का वातावरण होना आश्चर्यकारी ही था।

खाने-पीने, पहिनने-ओढ़ने, आने-जाने आदि में दोनों में एकरूपता होते हुये भी दोनों में वह थी धार्मिक विचारधारा की असमानता थी।

एक ओर सरिता जहाँ स्वाध्यायप्रेमी सतीश व सुशीलादेवी की पुत्री थी, जिसके कारण वह बचपन से ही पाठशाला में गई हुई थी, जहाँ उसने देव-शास्त्र-गुरु का सच्चा स्वरूप, कर्मव्यवस्था व क्रमबद्धपर्याय जैसे

सिद्धान्तों को भलीभाँति जाना था, अपने माँ के शीलस्वभाव को धारण कर स्वयं भी सुशीला थी।

वहीं दूसरी ओर अनीशा का परिवार पारिवारिक संस्कारों से तो ओतप्रोत था; परन्तु धार्मिक संस्कार नहीं थे। उसका कारण संभवतः पिता का बचपन में निधन हो जाना, माता का कठोर परिश्रम पूर्वक धनार्जन करना व अनीशा तथा उसके छोटे भाई अनिकेत का पालन करना रहा होगा। पर इस धार्मिक वैचारिक भिन्नता के कारण उनमें कभी कलह हुई हो, किसी को नीचा दिखाना चाहा हो, बड़ी ने छोटी के प्रति स्नेह कम किया हो या छोटी ने बड़ी का आदर न किया हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। वे भलीभाँति जानती–मानती थीं कि धर्म आस्था का विषय है, जो अपनी–अपनी होती है; पर एक दूसरे के कारण नहीं, अपनी सही समझ के कारण ही बदल सकती है। उनका विश्वास था कि मतभेद को मनभेद का कारण नहीं बनाना चाहिये। यह उनके उच्च शिक्षित होने का प्रमाण था।

उच्च शिक्षा का अर्थ ऊँची डिग्री नहीं, मार्कशीट में लिखे अंकों का प्रतिशत भी नहीं; वरन् उच्च शिक्षा का अर्थ यह है कि हम कितने संस्कारित हुये हैं। समता–समन्वय–समानता–उदारता–सेवाभाव जाग्रत हुये या नहीं ? यदि ये सब नहीं हैं तो उच्च शिक्षा भी मात्र कागजी शिक्षा है। शिक्षा तो चारित्र का निर्माण करती है।

इतना सब होते हुये भी मतभेद के कारण कभी–कभी दोनों में मीठी बहस अवश्य हो जाती थी।

एक दिन सरिता और अनीशा प्रातःकालीन भोजनोपरान्त बैठक में बैठी हुई थीं। विमलादेवी बगल के ही कमरे में बैठी हुईं स्वाध्याय कर रही थीं एवं सेठ लालचन्दजी विश्राम कर रहे थे।

अनीशा अखबार के पेज पलटते हुये बोली ''दीदी आज मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन करके आनंद आ गया।''

''अच्छा! आज मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन की? रोजाना एक -एक तीर्थंकर की पूजन करती होगी या आज मुनिसुव्रतनाथ भगवान का कोई कल्याणक था?''

''नहीं दीदी, रोजाना तो अलग-अलग पूजन करती हूँ; परन्तु पिछले तीन शनिवार से मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन कर रही हूँ। मन को बड़ी शांति मिलती है और आशा भी बँधती है।''

''शनिवार को मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन? क्यों?''

''अरे दीदी आपको पता नहीं है कि बड़े-बड़े विद्वानों ने बताया है कि शनिवार को मुनिसुव्रतनाथ भगवान की अभिषेक-पूजन करने से शनिग्रह का प्रकोप दूर हो जाता है। मैं अभिषेक तो कर नहीं सकती तो अभिषेक के समय पहुँच जाती हूँ; क्योंकि शनिवार को मुनिसुव्रतनाथ भगवान की शांतिधारा होती है न और बाद में मैं उनकी पूजन भी कर लेती हूँ।''

सरिता अनीशा के भोलेपन से कही जा रही बातों को ध्यान से सुन रही थी।

''अच्छा। तो बहिनजी को मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन से शांति मिलती है और आशा बँध जाती है। मेरी बहिन को किस बात की आशा बँध जाती है?'' अपनी हँसी छुपाते हुये सरिता ने गंभीरता से कहा।

''अरे दीदी जब शांतिधारा होती है न, तो पण्डितजी जिनकी तरफ से शांतिधारा होती है, उन सबके नाम लेकर शांतिधारा कराते हैं। आज मैंने भी आपको बताये बिना भाईसाहब और इनके नाम से 2500 रुपये में शांतिधारा करवाई है।''

''अच्छा! इससे तुम्हें शांति मिलती है।''

''हाँ दीदी मुझे तो शांति मिलती ही है और घर में भी शांति रहेगी।''

''बहुत बढ़िया! और आशा क्या बँध जाती है?''

''दीदी आपको तो पता ही है कि मेरा भइया अनिकेत 24 वर्ष का हो गया, उसका कहीं से रिश्ता ही नहीं आ रहा। पंडितजी ने बताया कि शनीचर का प्रकोप है, तुम मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन करो तो कार्यसिद्धि हो जायेगी; इसलिए आज मैने भइया के नाम की शांतिधारा भी करवा दी और पूजन भी कर ली। अब आशा बँध रही है कि कोई न कोई रिश्ता अवश्य आयेगा। एक खुशखबरी सुनाऊँ दीदी! कल ही माँ का फोन आया था कि रायपुर से किसी ने 4 दिन पहले ही भइया की कुंडली माँगी है।''

''चलो बहिना यह तो खुशी की बात है कि भइया की बात चल रही है, उम्र भी हो ही गई है, जरूर कहीं न कहीं इस साल रिश्ता हो ही जायेगा।''

''हाँ दीदी! विश्वास तो पूरा है; आखिर मुनिसुव्रतनाथ भगवान की दया से हमारी माँ को बहू मिल ही जायेगी।''

बहिन जैसी देवरानी के अंधविश्वास को देखकर सरिता मन ही मन दु:खी हो रही थी। उसने अनीशा को सही बात समझाने के लक्ष्य से बात प्रारंभ की।

''क्यों अनीशा! तुम मुझसे प्रेम करती हो न?''

''दीदी आप यह बात क्यों पूँछ रही हो? क्या आपको मेरे व्यवहार में कोई कमी नजर आई? क्या मुझसे कोई गलती हो गई, आप तो मेरी बड़ी बहिन जैसी हो, फिर आपने ऐसा क्यों पूँछा?'' रुँआसी होते हुये अनीशा बोली।

"अरे नहीं अनीशा! ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने तो ऐसे ही पूँछा कि तुम मुझसे बेहद प्यार करती हो तो मेरे लिए कुछ भी कर सकती हो?"

"हाँ दीदी! आप आज्ञा तो दो मैं अपनी दीदी के लिए कुछ भी कर सकती हूँ।"

"अच्छा तो यह बताओ कि यदि मुझे बुखार आ जाये और डॉक्टर इंजेक्शन लगाने को कहे। मुझे तो इंजेक्शन लगवाने में बड़ा डर लगता है, तो क्या तुम मेरे लिए इंजेक्शन लगवा लोगी? देखो मना नहीं करना, तुमने कह दिया है कि मेरे लिए कुछ भी कर सकती हो।"

"दीदी! मेरा वचन याद दिलाने की जरूरत नहीं है, मैं इंजेक्शन हँसते-हँसते लगवा लूँगी; परन्तु...."

"देखो परन्तु कहकर बात टालो मत।"

"नहीं दीदी! मैं बात टाल नहीं रही। मैं तो यह कह रही हूँ कि मेरे इंजेक्शन लगवाने से आपका बुखार कैसे उतर सकता है? आपकी बीमारी में तो आपको ही दवाई लेनी पड़ेगी न।"

"अरे! ऐसा क्यों नहीं हो सकता?"

"मेरी प्यारी दीदी! आप भी बच्चों जैसी बात कर रही हो। मैं खाना खाऊँगी तो मेरा पेट भरेगा, आपका नहीं; मैं दवाई लूँगी या इंजेक्शन लगवाऊँगी तो मेरी ही बीमारी दूर होगी, आपकी नहीं।"

"क्यों? जब शांतिधारा कराने से, मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन करने से भइया की शादी हो सकती है, अपने घर में शांति हो सकती है तो तुम्हारे इंजेक्शन लगवाने से मेरी बीमारी दूर क्यों नहीं हो सकती?"

"दीदी! वो तो मुझे ज्यादा कुछ नहीं पता, पर इतना तो पक्का है कि मैं इंजेक्शन लगवाऊँ तो आपका बुखार तो नहीं उतर सकता।"

''तो मेरी प्यारी बहिना! यह भी समझ लो कि तुम्हारे पूजन करने से दूसरों को भी शांति नहीं मिल सकती, न ही किसी की शादी हो सकती है।''

''पर दीदी! सभी लोग तो रोग मिटाने, व्यापार बढ़ाने, शत्रुओं का नाश करने शांतिधारा करवाते हैं; इसलिए मैंने भी करवा दी।'' अनीशा ने भोलेपन से कहा।

''मेरी भोली बहिना! पहिले यह तो समझो कि जब मुनिराज भी स्नान नहीं करते तब फिर भगवान के ऊपर आधा घंटा जल डालकर हम उनके व्रत का पालन कर रहे हैं या उनका व्रत भंग कर रहे हैं। जलधारा से भगवान को शांति मिल रही है कि भक्तों को? इतना सारा गंधोदक कहाँ डालेंगे? क्या भगवान को राग है, जो राग के कारण हमारी रक्षा करेंगे, रोग दूर करेंगे? क्या वे द्वेष करते हैं, जो शत्रुओं का नाश करेंगे?

जिस व्यापार/परिग्रह को पाप समझकर उन्होंने छोड़ा है; क्या वे किसी और को वह परिग्रह बढ़ाने का आशीर्वाद देंगे?

अपने घर में ही देखो! कोई रात्रि भोजन नहीं करता, जमींकंद नहीं खाता तो कोई रिश्तेदार या मेहमान आ जाये तो क्या तुम उनको रात्रि भोजन कराओगी, जमींकंद खिलाओगी?''

''नहीं दीदी! मैं किसी को भी रात में भोजन कराकर पाप क्यों कमाऊँगी?''

''तो फिर भगवान कैसे त्याग किये हुये पापों के लिए आशीर्वाद देंगे? उन्होंने स्वयं आत्मसाधना में परिवार को बाधक मानकर छोड़ दिया तो फिर वे क्यों किसी की शादी कराने में कारण बनेंगे?''

''दीदी! आप बात तो सही कह रही हो; पर...''

''पर क्या?''

"पर दीदी मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन से मेरे भइया की शादी की बात तो चली न।"

"अरे पगली, तेरा भइया शादी के योग्य है, सुन्दर है तो उसके रिश्ते तो आयेंगे ही; जब जहाँ संयोग होगा, वहाँ चर्चा भी होगी और शादी भी होगी।"

"पर यह पूजन करने के बाद ही हुआ न ? मैं तो 3 साल से इन्तजार कर रही थी, पर पहले तो कहीं से बात नहीं चली ?"

सरिता हँसते हुये बोली "तेरा भइया अभी 24 का हुआ है और तुम 3 साल से शादी का इन्तजार कर रहीं थीं, क्या तुम भइया की शादी आज के युग में 21 वर्ष की आयु में ही कराना चाह रहीं थीं ? इतनी छोटी उम्र में आपके घर रिश्ता लेकर कौन आता ? अब विवाह योग्य आयु हो गई तो रिश्ते आने लगे न ?

और दूसरी बात तुम कह रही हो कि आज भइया के नाम की शांतिधारा करवाई, जबकि 4 दिन पहले ही रायपुर वालों ने कुंडली माँग ली है। तब यह कैसे कह सकती हो कि मुनिसुव्रतनाथ भगवान की पूजन करने से यह हुआ है ?"

"पर दीदी ! आप कुछ भी कहो। शनिवार को मुनिसुव्रतनाथ भगवान के अभिषेक/पूजन का क्रेज तो बढ़ रहा है।"

"जिस तरह बिना प्रकाश के अँधेरे में कुछ भी हो सकता है, कीचड़ में या गड्ढे में पैर जा सकता है, किसी से भी टकरा सकते हैं, जो वस्तु उठाना है, उसकी जगह कुछ और उठा सकते हैं, डर सकते हैं, पर प्रकाश होते ही सब कुछ साफ-साफ दिखने लगता है, भय समाप्त हो जाता है; इसी प्रकार अज्ञान में यह जीव, और मिल जाये के लोभ और जो उपलब्ध है, वह चला न जाये के भय के कारण कुछ भी कर सकता है;

जब जिनवाणी के स्वाध्याय से प्रकाश होता है, तब यथार्थ स्वरूप समझ में आता है।''

''पर दीदी! कुछ लाभ होता होगा, तभी तो इतने लोग पूज रहे हैं।''

''अनीशा बहिन! जिसके पुण्य का उदय हो, वह किसी की भी पूजन करे या न करे उसे लाभ होता ही है और पाप का उदय हो तो उसे होने वाली हानि को भी कोई टाल नहीं सकता।

अच्छा अनीशा! एक बात बताओ!! क्या तुम बिना चिह्न देखे यह बता सकती हो कि यह कौन से भगवान की प्रतिमा है?''

''नहीं दीदी! सभी प्रतिमा के चेहरे एक जैसे ही हैं। हमें तो चिह्न देखकर ही पता चलता है कि यह कौन से भगवान हैं।''

''ऐसा क्यों?''

''यह तो मुझे नहीं पता।''

''देखो बहिना! हमारे सभी चौबीसों ही तीर्थंकर वीतरागी-सर्वज्ञ हैं, पूर्ण निर्दोष हैं, अनंत सुख-शान्तिमय हैं, एक जैसे ही गुणों के धारक हैं; अतः सभी की मूर्तियाँ भी एक जैसी ही हैं। उनमें भेद करना, हमारी अज्ञानता है। कहा भी है –

चौबीसों जिनवर सभी, हैं समान गुण युक्त।
घाति-अघाति नाशकर, सभी हुये हैं मुक्त।।

सभी तीर्थंकर एक समान गुण वाले ही हैं, वे पूर्ण वीतरागी अर्थात् निर्दोष और पूर्ण स्वाधीन सुख के धारक हैं; अतः हमें भी मात्र वीतरागी होने और आत्मिक शांति की भावना से ही उनकी पूजन करना चाहिए। अन्य लौकिक कामना से पूजन करना तो पाप का कारण है। उन्हें रागी-द्वेषी सिद्ध करना तो मिथ्यात्व नाम का बड़ा पाप है।''

यह सब चर्चा सुनकर अनीशा सोच में पड़ गई कि वह अभी तक क्या मान रही थी और कर रही थी? पास के ही कमरे में दोनों की सासूजी यह सब चर्चा सुन रहीं थीं और प्रसन्न भी हो रही थीं। कमरे से बाहर आते हुये उन्होंने मुस्कराते हुये कहा कि "आज तुम दोनों किस बात पर झगड़ रहे हो?"

सरिता बोली "माँजी! आपकी बहुओं में झगड़ा तो हो ही नहीं सकता। हम तो वीतराग कथा कर रहे थे?"

"अरे भई! यह वीतराग कथा क्या होती है?"

"माँजी! धर्मचर्चा को आचार्यों ने दो कथाओं के रूप में बताया है – 'जब हम आत्महित की भावना से तत्त्व समझने के लिए धर्मचर्चा करते हैं तो वह वीतराग कथा है' और 'जब जीत–हार की भावना से वाद–विवाद करते हैं तो वह विजिगीषु कथा कहलाती है।' हम दोनों बहिनें तो आत्महित की भावना से चर्चा कर रहे थे। हार–जीत की भावना है ही नहीं।"

अनीशा हँसते हुये बोली "हाँ, हाँ माँजी! हम तो वीतराग कथा कर रहे थे, वो–वो दूसरी वाली....कथा नहीं।"

सभी अनीशा के भोलेपन पर हँस पड़े।

विमला देवी बोली "बेटा! खुश रहो; इसी तरह वीतराग कथा करते रहो।"

सरिता और अनीशा सायंकालीन भोजन की तैयारी के लिए रसोईघर की ओर चल पड़ीं। अनीशा के दिमाग में सरिता की तर्कसंगत चर्चा उथल–पुथल मचा रही थी।

OOO

4

उज्जैन में सरिता के पिताजी सतीश जैन ख्यातिप्राप्त उद्योगपति, समाजसेवी व स्वाध्यायप्रेमी थे। माँ सपना भी स्वाध्याय आदि कार्यों में निरन्तर अग्रणी रहतीं थीं। अपनी पुत्री सरिता तथा पुत्रों मयंक-प्रसून को भी बचपन से नियमितरूप से पाठशाला में भेजते तथा ग्रीष्मकाल में लगने वाले बाल संस्कार शिविरों में भी वे, बच्चों की इच्छा हो या न हो; अवश्य भेजते थे। वे बच्चों से कहते 'बेटा हम आपको छुटियों में आपकी पसंद के स्थान पर घुमाने भी ले चलेंगे; पर आपको शिविर में भी जाना पड़ेगा।'

उनके ही पड़ौसी प्रोफेसर जयन्त जैन कुछ आधुनिक विचारों के व्यक्ति थे। उनको सतीशजी का प्रतिदिन स्वाध्याय में जाना और बच्चों को पाठशाला भेजना अच्छा नहीं लगता था। वे बोलते 'सतीशजी आप बच्चों पर अत्याचार करते हो। अरे! अभी से बच्चों को बाबा बना दोगे क्या? यह तो अभी उनकी खेलने-खाने की उम्र है। जिस समय बच्चों को कार्टून चैनल देखना चाहिये, गप्पें लगाना चाहिये, उस उम्र में आप बच्चों को पाठशाला भेजकर डरपोक बना रहे हो।''

''पाठशाला भेजकर बच्चों को डरपोक कैसे बना रहे हैं?'' सतीशजी ने पूछा।

''अरे! जब भी आपके बच्चे हमारे घर आते हैं, उन्हें कुछ खाने को दो तो वे कहते हैं - नहीं! हम ये आलू से बने समोसे नहीं खाते या हम रात में नहीं खाते, आलू-प्याज खाने और रात में खाने से पाप लगता है, नरक जाना पड़ता है।

यह सब डरपोक बनाना नहीं है तो और क्या है?''

''अरे भाई! यह तो हमारा जैनाचार है। इसमें डरपोक बनने की बात कहाँ से आ गई?''

''आपके बच्चे इतनी छोटी सी उम्र में जिस समय उन्हें वीर–बहादुर होना चाहिये, उस समय वे कहते हैं रात में भोजन करेंगे तो नरक जायेंगे, आलू खायेंगे तो पाप लगेगा; बिना छने पानी की एक बूँद में 36450 जीव होते हैं, इसलिये हम तो बिना छना पानी नहीं पीते, बिना छना पानी पीने से बहुत पाप लगता है। एक दिन हमारे घर में एक बच्चे से एक कॉक्रोच मर गया तो आपके बच्चे तो डर के मारे रोने ही लग गये – यह सब डरपोक बनना नहीं है तो और क्या है ?''

जयन्तजी की बात सुनकर सतीशजी को हँसी आ गई। उन्हें हँसते हुये देखकर जयन्तजी बोले ''अरे भाई मैं सही कह रहा हूँ और आप हँस रहे हैं, बच्चों को ऐसा डरपोक मत बनाओ।''

सतीशजी ने प्रोफेसर साहब से पूछा ''प्रोफेसर साहब आप घर में या महाविद्यालय में बच्चों को चोरी करने या लड़कियों से छेड़खानी करने की कला सिखाते हो या नहीं?''

''अरे आप क्या बात करते हो। मैं ये सब गंदे काम करने की कला क्यों सिखाऊँगा, मैं तो अपने लंबे–चौड़े भाषणों में इन सब कार्यों से दूर रहना ही सिखाता हूँ।''

''आप भी प्रोफेसर साहब क्या बात करते हो? अरे बच्चे तो छेड़खानी करते ही हैं और जेब खर्च बराबर न मिले तो कभी चोरी भी कर सकते हैं – इसमें खराबी क्या है?''

''अरे वाह पंडित सतीशकुमारजी आप तो छेड़खानी करने को कह रहे हो! क्या इस उम्र में तुम्हारा भी मन बहक रहा है? अरे भइया! यदि किसी लड़के पर झूठा भी आरोप लग गया न, तो जेल पहुँच जायेगा

और सारी इज्जत का फलूदा बन जायेगा; इसलिए मैं तो एक अच्छे अध्यापक की भूमिका निभाते हुये हमेशा ऐसे कार्यों से बचने की ही शिक्षा देता हूँ।''

''इसका मतलब है आप बच्चों को डरपोक बना रहे हो।'' सतीशजी ने मंद-मंद मुस्कराते हुये कहा।

''अरे वाह इसमें डरपोक बनाने की क्या बात है। जो काम गलत है, तो गलत है। कानून में जिसकी जो सजा बताई गई है, वह तो मिलेगी ही न। यदि सजा से बचना है तो गलत कार्यों से बचना ही होगा।''

''भाईसाहब आप सही कह रहे हो। हम अपने बच्चों को यही सीखने के लिए तो पाठशाला भेजते हैं। पाठशाला में हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील आदि पापों से बचने, अभक्ष्य सेवन से बचने की ही तो शिक्षा दी जाती है; इसमें कुछ भी गलत कहाँ है? पापों का फल नरक-तिर्यंच गति में जाकर अनंत दु:ख भोगना, हमारे जैन संविधान में लिखा है। सर्वज्ञ भगवान द्वारा बताये गये भाव व उनके फल को जानकर सत्य-अहिंसा-दया के मार्ग पर चलना, डरपोक बनना नहीं है; अपितु वीर बनना है। इसी मार्ग पर चलकर महावीर बना जा सकता है।

प्रोफेसर साहब! मैं तो यही मानता हूँ कि '**स्वाध्याय-पाठशाला की उपेक्षा जीवन में उपेक्षित होने का कारण है।**' इसलिये आप भी स्वाध्याय में चला कीजिये। आप तो अच्छे वक्ता हैं, ज्ञानवान हैं; आपको जैनदर्शन की बातें आसानी से समझ में आ जायेंगी।''

प्रोफेसर साहब ने अपना अहंकार छोड़ते हुये कहा – ''सतीशजी! आप बात तो सही कह रहे हैं; परन्तु अब इस उम्र में कहाँ से शुरुआत करें, समझ में नहीं आता। मैं प्रोफेसर होने के अहंकार में अन्य किसी को वक्ता मान ही नहीं पाया। जैनाचार का पालन करूँगा तो लोग मुझे

पिछड़ा समझेंगे, मेरी हँसी उड़ायेंगे के चक्कर में वैज्ञानिक जैनाचार का भी पालन नहीं कर सका।

सच में देखा जाये तो आपके बच्चे सही मार्ग पर जा रहे हैं, मैं तो मात्र आपके मन की परीक्षा लेना चाह रहा था। आप जैसा पड़ौसी पाकर मैं गौरवान्वित हूँ, साथ ही मैं जवानी के जोश में अपने आपको आधुनिक दिखाने के चक्कर में अपने बच्चों को इस सत्य मार्ग पर नहीं लगा सका, उसका दुष्परिणाम भी मेरे जीवन में आ रहा है, जो मैं आपको बता भी नहीं सकता। अब मैं भी प्रयास करूँगा कि सायंकालीन स्वाध्याय में आपके साथ चल सकूँ। बच्चों का तो जो होगा, वह भविष्य में देखा जायेगा; परन्तु मैं अपना भविष्य तो सँवार ही लूँ।''

''प्रोफेसर साहब! आप सही कह रहे हैं सबसे पहले हमें अपने भविष्य की चिंता करना चाहिये। पहले हम स्वयं सत्य को समझें व स्वीकार करें तो निश्चित ही हमारा जीवन शांतिमय होगा, जिसे देखकर परिजन भी यदि उनकी होनहार भली होगी तो सत्य समझकर वे भी सही मार्ग पर आ जायेंगे।'' ○○○

मैं नहीं चाहता

मैं नहीं चाहता तत्त्वज्ञान से रहे कोई अनजाना।
मैं नहीं चाहता कभी अंधविश्वासों में उलझाना।।
मैं नहीं चाहता गंडा-ताबीजों में कोई उलझे।
मैं नहीं चाहता धर्मी को कोई पिछड़ा समझे।।
मैं नहीं चाहता मात्र क्रिया में धर्म मान कोई बैठे।
मैं नहीं चाहता कोई प्राप्त ज्ञान पर ऐंठे।।
मैं नहीं चाहता धन-पद यश पाने को जीवन बीते।
मैं नहीं चाहता घट भरते भी रहें सदा ही रीते।।
मैं नहीं चाहता, जीव, जीव न जाने।
मैं नहीं चाहता ज्ञायक, ज्ञायक न माने।।

5

प्रोफेसर साहब का इकलौता सुपुत्र सौरभ बचपन से ही पढ़ने में होशियार था। पिताजी की इच्छानुसार सौरभ इंजीनियर हो गया था और मध्यप्रदेश के औद्योगिक नगर इन्दौर में एक ख्यातिप्राप्त निजी कंपनी में अच्छे पैकेज के साथ कार्यरत था।

प्रोफेसर साहब ने प्रारंभ से ही अपने आधुनिक विचारों के कारण मात्र लौकिक शिक्षा पर ही जोर दिया, उन्होंने प्रतिदिन जिनमंदिर जाना, रात्रिभोजन नहीं करना, पानी छानकर पीना, जमींकंद का प्रयोग नहीं करना, होटलों में भोजन नहीं करना जैसे सामान्य श्रावकाचार का न तो स्वयं पालन किया, न ही अपने बेटे को इसके संस्कार दिये। वे स्वयं इन सब कार्यों को ढ़कोसला समझते थे।

सतीशजी के साथ स्वाध्याय में जाने पर उनके जैनत्व के संस्कार जागृत हो गये। उनके माता-पिता तो श्रावकाचार के पालक थे ही; ये स्वयं ही जवानी/आधुनिकता/दिखावे के चक्कर में सत्कार्यों से दूर हुये थे। वास्तव में आग बुझी नहीं थी राख में दबी हुई थी, जो सतीशजी के निमित्त से स्वाध्यायरूपी हवा लगने से पुनः प्रज्वलित होने लगी थी। अब वे प्रतिदिन मंदिर जाने लगे थे, स्वाध्याय सभा के साथ-साथ निजी स्वाध्याय भी करने लगे थे, जिसके फलस्वरूप उनके विचार ही नहीं आहार में भी परिवर्तन होने लगा था।

जयन्तजी को अब लगने लगा था कि काश! बेटा भी यह सब स्वीकार कर ले तो कितना अच्छा होगा। रविवार को अवकाश होने से सौरभ उज्जैन आया हुआ था। सुबह-सुबह जयन्तजी ने सौरभ को जगाते हुये कहा। "बेटा जल्दी से उठकर नहा लो मंदिर चलेंगे, पूजन करके स्वाध्याय भी सुनेंगे।"

पिताजी की बात सुनकर सौरभ आश्चर्यचकित होते हुये बोला – 'पापाजी! मंदिर! वह भी इतनी सुबह। आज तो छुट्टी है; पापा प्लीज सोने दो न।''

''बेटा! सोते–सोते तो मेरा मध्यान्तर हो गया है, तुम्हारा भी बहुत समय निकल गया है; फिर भी अभी सही समय है, यदि समय पर जाग गये तो पछताना नहीं पड़ेगा।''

जयन्तजी की इस रहस्यमयी बात को सौरभ समझ नहीं सका। वह विस्मय से पूछने लगा ''पापाजी इसमें पछताने जैसी क्या बात हो गई; छुट्टी के दिन तो सभी सोते ही हैं, मैं भी इन्दौर से छुट्टी मनाने ही आया हूँ।''

''बेटा तुम अभी इस रहस्य को नहीं समझोगे, पर तैयार हो जाओ; हम एक साथ मंदिर चलेंगे।'' सौरभ की माँ श्रीमती ऋतु जैन ने तैयार होते हुये कहा।

सौरभ हमेशा ही माता–पिता की विनय करता था; अतः माँ के ऐसा कहने पर वह बिस्तर से उठकर नहाने तो चला गया; परन्तु घर के इस बदले हुये पर्यावरण का वह रहस्य नहीं समझ सका।

अनमने मन से सौरभ मंदिर चला तो गया पर मंदिर में जाकर करे क्या? देवदर्शन की विधि तो उसे आती ही नहीं थी। माता–पिता की नकल करते हुये छोटे बच्चे की तरह उसने प्रक्रिया पूर्ण की। घर पर भोजन करते हुये ऋतुजी ने सौरभ से कहा – ''बेटा! हम चाहते हैं कि तुम इन्दौर में व्यवस्थित तो हो ही चुके हो अब क्यों न तुम्हारा विवाह धूमधाम से करावें। इसके लिये हम लोगों ने यहीं उज्जैन में एक लड़की भी देख ली है। आज अवकाश का दिन है, तुम भी उस लड़की को देख लो तो हम आगे का कार्यक्रम तय कर सकें।''

सौरभ माँ की बात सुनकर बोला – "माँ! आपकी विवाह संबंधी बात तो सही है, पर लड़की तो मेरी पसंद की होना चाहिये; क्योंकि उसके साथ मुझे ही जीवन व्यतीत करना है।"

"हाँ बेटा! इसीलिये तो हम कह रहे हैं कि हमने जो लड़की देखी है, तुम भी देखकर पसंद कर लो। लड़की बहुत ही सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है, सम्पन्न परिवार से है और सबसे बड़ी बात धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत है। उसके आने से तो हमारा घर ही सुधर जायेगा।"

"अरे माँ! आप क्या बात कर रही हैं? शादी का धार्मिक संस्कारों से क्या लेना-देना है? बस अपने विचार मिलना चाहिये।"

"हाँ बेटा! यह बात सही है कि विचार मिलना चाहिये; पर खान-पान-पहिनावा-व्यवसाय के विचारों के साथ-साथ धार्मिक विचारों का मिलना भी तो आवश्यक है। हमने धार्मिक दृष्टि से देख लिया, अब तुम मिलकर अपने लौकिक विचारों का भी मिलान कर लो। वैसे वह बहुत ही खुले विचारों की व विनम्र लड़की है। तुम्हारे पापा की पैनी नजरों ने उसे भलीभाँति परखा है।"

"माँ! यह सब तो ठीक है; परन्तु सही बात तो यह है कि मैं अपने कार्यालय में कार्यरत महाराष्ट्रियन लड़की से शादी करना चाहता हूँ। मैं यही बताने के लिये ही आज यहाँ आया था।"

सौरभ ने लड़की स्वयं पसन्द कर ली, इस बात पर तो जयंतजी को आश्चर्य नहीं हुआ; परन्तु लड़की महाराष्ट्रियन है – यह सुनकर वे चौकन्ने जरूर हो गये।

"लड़की महाराष्ट्र की है तो कोई बात नहीं, पर वह जैन तो है या नहीं?" जयंतजी ने शान्त, गंभीर स्वर में नीचे मुँह किये हुये ही पूछा।

"पापाजी आप यह क्या जैन-जैन वाली बात कर रहे हैं। मैं जब से

आया हूँ, मैं देख रहा हूँ कि इस घर का माहौल ही बदल गया है। पापा आप तो पहले कभी ऐसी बात नहीं करते थे। आप ही कहते थे कि हमें 'ब्रॉड माइंडेड' बनना चाहिये, धर्म की दकियानूसी बातों में फँसकर दायरे में कैद नहीं होना चाहिये और आज आप ऐसी बात कर रहे हैं – यह सब मैं तो समझ नहीं पा रहा।'' सौरभ ने झुँझलाते हुये कहा।

''बेटा! मैं जो कहता था, वह जवानी के अहंकार के अलावा कुछ नहीं था। धर्म बंधन नहीं है। धर्माचरण दकियानूसीपना नहीं है। यह परम सत्य मैं अभी कुछ समय से ही समझा हूँ; इसीलिये मैं चाहता हूँ कि तुम अभी से ही समझ जाओ। अन्यथा मिथ्यात्व का पोषण करते हुये ही जीवन चला जायेगा।''

''पापा! आप लोग ये क्या भारी भरकम शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, धर्माचरण/मिथ्यात्व – यह सब क्या है?'' सौरभ ने झुँझलाते हुए कहा।

''बेटा! विपरीत मान्यता या अंधविश्वास को ही मिथ्यात्व कहते हैं। जैनधर्म मंत्र-तंत्र व कर्तावाद से दूर हटाकर वीतरागता की ओर लाता है, असंयम से संयम व अभक्ष्य सेवन को छुड़ाकर अहिंसक खान-पान की पद्धति सिखलाता है – यही धर्माचरण है।''

''पापाजी, आप जो कह रहे हैं वह सही हो सकता है; पर आप भी मेरी उम्र में इन सबसे बहुत दूर थे, आपने ईमानदारी से शिक्षा ग्रहण कर प्रोफेसर का सम्माननीय पद प्राप्त किया व मुझे परिश्रम पूर्वक पढ़ाकर इंजीनियर बनाया। मैं भी जब आपकी उम्र में आ जाऊँगा तब धर्म की बातें समझ लूँगा। अभी तो यह पक्का है कि मैं उसी लड़की से शादी करूँगा।'' सौरभ ने दृढ़तापूर्वक मानो अपना अंतिम निर्णय सुना दिया।

ऋतुजी एकदम उदास होकर बोलीं – ''बेटा! तूने तो सब तय ही कर लिया, पता नहीं वह लड़की कैसी होगी? हमने तो देखा ही नहीं।''

"अरे माँ! लड़की सुन्दर है, विनम्र है, आधुनिक विचारों की है। हम दोनों एक ही कार्यालय में काम करते हैं, जब से वह मिली है, मेरा बहुत ध्यान रखती है, आपकी भी सेवा करेगी। उसके साथ जिंदगी तो मुझे निकालनी है, मैंने देख लिया, पसंद भी कर लिया तो आपने देखा या नहीं, उससे क्या अन्तर पड़ता है? शादी तो आपकी उपस्थिति में ही करेंगे, अभी शादी थोड़े ही हो गई।"

"जब लड़की पसंद कर ली तो शादी भी कर लो, हम कौन-सा मना कर रहे हैं। हम तो यहीं रहकर अपना जीवन निकाल लेंगे। हमें नहीं करवानी सेवा।" ऋतुजी ने रोते हुये गुस्से में कहा।

"माँ यह रोने-धोने की बात नहीं है। आपने मुझे पढ़ाया-लिखाया; इसीलिये न कि मैं अपने निर्णय खुद कर सकूँ, पराधीन न रहूँ। माँ वह लड़की आप सबका भी आदर करती है, वह आपसे मिलना भी चाहती है। आप मेरे साथ आज ही इन्दौर चलें और उनके माता-पिता को हाँ कह दें; क्योंकि हमें इस माह ही शादी करना है। उसका भाई अगले माह विदेश जा रहा है।"

जयंतजी और ऋतुजी ने कल्पना भी नहीं की थी कि उनका बेटा इतना बड़ा और होशियार हो गया है। जयंतजी मुँह साफ करते हुये अपने कमरे में चले गये। ऋतुजी भी आँसू पोंछते हुये उनके पीछे-पीछे चलीं गईं।

सौरभ इस बात को भलीभाँति जानता था कि शादी की बात बताने पर यह सब होगा ही; अतः वह निश्चिंत बैठा रहा, साथ ही उसे विश्वास भी था कि माता-पिता दोनों ही उसे बहुत प्यार करते हैं; अतः उसकी बात टालेंगे भी नहीं।

कमरे में पहुँचते ही जयंतजी खिड़की से बाहर झाँकते हुये दु:खी मन से बोले कि "यह सब मेरी गलती की ही सजा है। यदि मैंने बचपन से

ही अपने माता-पिता की बात मानते हुये बेटे को भी धार्मिक संस्कार दिये होते तो हमें यह दिन न देखना पड़ता; परन्तु जब मैंने अपने माता-पिता की बात नहीं मानीं तो मेरी संतान भी तो मेरे ही कदमों पर चल रही है।''

''जिस जीव का जिस काल में जिस विधि से जो होना भगवान ने देखा है, उसे कोई भी नहीं टाल सकता। कल ही यह प्रवचन में आया था, यही सोचकर शान्ति रखना चाहिये। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। दोष तो मेरा है। माता को बच्चे की प्रथम पाठशाला कहा जाता है। सौरभ की पहली पाठशाला में ही सही शिक्षा नहीं मिली तो उसका क्या दोष ? आप तो कॉलेज में व्यस्त रहते थे, पर मैं तो व्यर्थ की किटीपार्टियों और टी.वी. के सीरियल में उलझकर कभी भी बेटे और आपको घर के शुद्ध भोजन का स्वाद नहीं चखा सकी। मैं भी आप सबके साथ ही होटल में भोजन करना, रात्रि भोजन करना, देर तक सोना, मंदिर नहीं जाना, स्वाध्याय नहीं करना, हिंसक प्रसाधनों का उपयोग कर सजना-सँवरना आदि प्रमाद पोषक कार्यों में ही लगी रही।'' ॠतुजी ने आँसू पोंछते हुये दु:खी मन से कहा।

''सही कह रही हो यदि हमने बेटे को वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप समझाकर, उनके माहात्म्य और उनके वैज्ञानिक, शान्ति प्रदायक सिद्धान्तों को उसके चित्त में स्थापित कर दिया होता, रात्रि भोजन व जमींकंद का त्याग कराया होता तो वह किसी अन्य धर्मी के साथ मित्रता को आगे ही नहीं बढ़ाता। अब तो पतंग की डोर अपने हाथ में नहीं है, उसे जिधर जाना होगा, उधर ही जायेगी। जाओ सौरभ से कह दो कि शाम की ट्रेन से इन्दौर चल रहे हैं और चलने की तैयारी भी कर लो।''

OOO

6

इंदौर आकर भी जयंतजी ने सौरभ को पुनः समझाने का प्रयास किया कि भाई विजातीय संबंध सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं है; परंतु सौरभ तो मानने के लिए तैयार ही नहीं था। बातों ही बातों में यह भी पता चला कि वह महाराष्ट्रियन परिवार अपने धर्म के प्रति बहुत आस्थावान है – यह सुनकर तो उन्हें और भी दुःख और चिंता हुई कि यदि कदाचित् विजातीय संबंध हो जाता और वह अपने धर्म के प्रति आस्थावान ना होती तब तो बहू को धीरे-धीरे स्वाध्याय के माध्यम से सत्य तत्त्वज्ञान की ओर मोड़ा भी जा सकता था; परंतु अब तो ऐसा हो पाना बहुत ही कठिन है।

ऋतुजी ने रो-रोकर अपने आँसुओं के अस्त्र चलाए कि पुत्र पराजित हो जाए; परंतु वह अपने दृढ़ संकल्प के कवच को इस प्रकार धारण किये था कि माँ के आँसू के अस्त्र उसके हृदय में प्रवेश नहीं कर सके।

पिताजी ने भी समझाने का प्रयास किया कि हमारी परंपरा रही है कि अपने सजातीय बंधुओं के साथ ही वैवाहिक संबंध होना चाहिए। हमें अपने साधर्मियों के साथ ही पारिवारिक संबंध बनाना चाहिए।

सौरभ ने कहा 'पिताजी! मैंने सामाजिक-विज्ञान में पढ़ा है कि जितने भी तीर्थंकर हुए हैं वे सभी क्षत्रिय थे, जैन नहीं थे; फिर आप यह जाति के बंधन की बात क्यों कर रहे हैं?'

प्रोफेसर साहब ने अपना तर्क प्रस्तुत किया "बेटा! हमें मात्र जाति का भेदभाव नहीं है; परंतु एक ओर भव-भय-नाशक वीतराग-अहिंसामयी जिनधर्म है और दूसरी ओर भववर्धक राग-द्वेष व कर्तृत्व का पोषण करनेवाला धर्म – ऐसी वैचारिक मत-भिन्नता के साथ परिवार में शांति कैसे रह सकेगी?"

सौरभ ने भी उड़ता हुआ तर्क प्रस्तुत कर दिया "पिताजी! मैं धर्म के छोटे-छोटे दायरे में नहीं बँधना चाहता। मैं तो मानवता को ही धर्म समझता हूँ-अपना काम हम समय पर करें, स्वयं करें व ईमानदारी से करें; बस इसको ही धर्म समझता हूँ। मुझे अन्य वीतरागी-सरागी या महावीर-गणेश की पूजन से कोई लेना-देना नहीं है। आपको जिनकी पूजा-अर्चना करना हो, आप करें; सुनाक्षी को जिसको पूजना हो, वह पूजे; मैं ना आपके लिए रोकूँगा, ना उसके लिए टोकूँगा।

दूसरी बात यह भी है कि गौतम गणधर ब्राह्मण होते हुए भी जैनधर्म स्वीकार कर सकते हैं तो यदि आप प्रयास करेंगे तो सुनाक्षी भी जिनधर्म को समझकर स्वीकार कर लेगी।"

प्रोफेसर साहब ने निराशा के साथ कहा "बेटा! जब हम जैन कुल में जन्म लेकर भी समय पर धर्म को अंगीकार नहीं कर सके और तुम्हें भी हम अभी नहीं समझा पा रहे हैं, उलटा तुम तो धर्म को जीवन में अपनाने योग्य ही नहीं समझ रहे हो; तब वह जो अन्य घर से आएगी, जो स्वयं कमाने वाली है, जो अपने धर्म पर दृढ़-प्रतिज्ञ है; उसको हम कब और कैसे समझा पाएंगे ? हमारी इतनी योग्यता भी कहाँ है ? जो हम उसे समझा सकें।"

सौरभ ने कहा "पिताजी! खैर जो भी हो, जो-जब होना होगा, वैसा हो जाएगा; परंतु विवाह के संबंध में तो मेरा अंतिम निर्णय है कि मैं सुनाक्षी के साथ ही विवाह करूँगा और विवाह भी इसी माह में संपन्न होगा। आप आ ही चुके हैं अब आप, सुनाक्षी और उनके परिवार से मिलने की औपचारिकता पूरी कर लीजिए। हम विवाह में किसी प्रकार का प्रदर्शन नहीं करना चाहते। हम तो बहुत सादगी पूर्वक ही यह कार्य संपन्न करना चाहते हैं।" यह कहते हुए सौरभ उठकर बाहर चला गया।

प्रोफेसर जयंतजी सैकड़ों विद्यार्थियों को अपनी बात समझा चुके थे; परंतु आज वे अपने पुत्र को समझाने में नाकाम रहे; तब उन्हें समझ में आया कि "समझाने से नहीं, समझने से समझ में आता है।"

मनुष्य जीवन एवं जिनधर्म की प्राप्ति बहुत ही दुर्लभता से हुई है और जिनधर्म पाकर भी यदि हम विपरीत विचारों के जीवनसाथी को चुनते हैं तो पुन: जिनधर्म का प्राप्त होना, वीतरागता-पोषक मार्ग का प्राप्त होना, निर्दोष महापुरुषों का सत्संग प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है; परंतु 'मियां-बीबी राजी तो क्या करेगा काजी?' की कहावत के अनुसार सौरभ ने सुनाक्षी को पसंद कर ही लिया था और जयंतजी-ऋतुजी भी अपने इकलौते पुत्र के मोह को त्यागने में असमर्थ हो रहे थे; अत: बेमन से ही सही, पर बेटे की हाँ में हाँ मिलानी पड़ रही थी। मोह और ज्ञान में द्वन्द्व चल रहा था, पर हमेशा की तरह ही मोह से जीवराज पराजित होता दिख रहा था और जीवराज का ज्ञान पुरुषार्थहीनता के कारण अभी भी कसमसा रहा था। प्रोफेसर साहब आँखों में आँसू भरे हुए खिड़की से बाहर बहुत दूर देख रहे थे, जहाँ मात्र नीला आसमान ही दिखाई दे रहा था।

सौरभ ने माता-पिता को सुनाक्षी व उनके परिवार वालों से मिलवाया। परिवार वाले एवं सुनाक्षी बहुत ही विनम्र व व्यवहार कुशल थे। सुनाक्षी गृहकार्य में भी दक्ष थी; परंतु जिस तरह सौरभ अपने सौभाग्य से प्राप्त कुल परंपरा से मिले हुए धर्म से दूर था; वहीं सुनाक्षी अपने माता-पिता से प्राप्त संस्कारों के कारण अपने धर्म के प्रति बहुत सजग थी। जयंतजी व ऋतुजी सुनाक्षी व उसके परिवारवालों से मिलकर बहुत प्रमुदित हुए; परंतु जब भी धार्मिक दृष्टि से विचार करते तो मन में बहुत खेद होता। सुनाक्षी की कुलदेवी के प्रति आस्था व विश्वास से तो वे चिन्तित भी

हो रहे थे; क्योंकि वह जानते व मानते थे कि विनम्रता-सरलता-व्यावहारिकता-सेवाभाव आदि गुण व्यक्ति व परिवार के लिए बहुत आवश्यक हैं, जो कि इसमें हैं, जिसके कारण से यह पारिवारिक व सामाजिक दायित्व को निभाने में सफल रहेगी, अपनी कुल परंपरा में भी ऐसे संस्कार देने में सफल होगी; परन्तु बात मात्र कुल की नहीं है, इस भव की है और इस भव में भविष्य के अनंत भवों का अभाव करने वाले भावों की है। मात्र सेवा भाव-विनम्रता से भवों का अभाव नहीं होता। सेवा-सरलता-समन्वय से पारिवारिक वर्तमानकालीन शांति हो सकती है, समाज में सम्मान हो सकता है; परंतु वीतराग जिनेन्द्र परमात्मा के मार्ग को पाए बिना, तत्त्वज्ञान को समझे बिना, वस्तुस्वरूप के वास्तविक परिज्ञान बिना परमार्थ शांति प्राप्त नहीं हो सकती। भविष्य के अनंत भवों का अभाव करने वाले भाव जिनेन्द्र परमात्मा के मार्ग के बिना कभी प्राप्त नहीं हो सकते।

राग-द्वेष कम करते हुए दूसरों का सहयोग करते व सहयोग लेते हुए तो अनंत भव बीत चुके हैं; परंतु राग-द्वेष रहित, कषाय भावों से रहित वीतरागता का मार्ग, वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के पथ पर चलकर ही प्राप्त हो सकता है, जो इन दोनों को प्राप्त होना अभी कठिन ही दिखाई दे रहा है यह सब विचार करते हुए ना चाहते हुए भी सौरभ की जिद के कारण उन्हें झुकना पड़ा और अन्ततः अपना सम्मान बनाये रखने के लिए चेहरे पर प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए विवाह हेतु स्वीकृति देनी ही पड़ी।

OOO

इधर घूमे - उधर घूमे, बहुत परद्रव्य को चूमे।
लखे निज आत्मा को जो, न फिर इस जग में वह घूमे।।
लगे कुछ क्षण को जग प्यारा, यहाँ जग घूमता सारा।
मिले भटकन ही इस जग में, जो घूमे बस वही हारा।।

7

प्रोफेसर जयन्त और ऋतुजी ने अपने बेटे सौरभ की पसंद सुनाक्षी को ही न चाहते हुये अपनी भी पसंद बनाकर विवाह के लिए स्वीकृति दे दी। सौरभ-सुनाक्षी की सहमति सादे व संक्षिप्त समारोह में विवाह आयोजित करने की थी जो प्रोफेसर साहब को भी अनुकूल थी; क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि इस प्रकार के प्रसंग में अधिक रिश्तेदार व साधर्मी एकत्र हों। वे जानते थे कि पीठ पीछे तो लोग इस संबंध में चर्चा करेंगे ही, पर वे नहीं चाहते थे कि सब यहीं आकर वातावरण बिगाड़ें व वे भी शर्मिन्दा होकर सबके सामने सिर झुकाकर खड़े रहें; अतः अति निकटवर्ती रिश्तेदारों व कुछ मित्रों की उपस्थिति में विवाह सम्पन्न हुआ।

सौरभ व सुनाक्षी के आग्रह से जयन्तजी व ऋतुजी विवाहोपरान्त इन्दौर ही रह गये थे। वे प्रातःकाल 6.30 बजे तक नहा-धोकर तैयार होकर मंदिर चले जाते एवं 9.30 तक पूजन-स्वाध्याय करके ही घर पर आते, तब तक बेटे-बहू दोनों ही नाश्ता करके टिफिन लेकर ऑफिस जाने के लिये तैयार हो जाते। जाते-जाते सुनाक्षी माँजी व पिताजी के लिये भोजन की तैयारी कर देती एवं बहुत ही प्रेम से बोलती कि "माँजी मैंने सभी सामग्री निकालकर रख दी है, आप भोजन बना लीजियेगा।"

जयन्तजी व ऋतुजी दोनों ही अपनी इच्छानुसार भोजन करके विश्राम कर दिन में स्वाध्याय करते और फिर सायंकालीन भोजन की तैयारी करते। बेटे-बहू दोनों ही आदरपूर्ण व्यवहार करते - इस तरह धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा।

जयन्तजी व ऋतुजी - दोनों ही बेटे-बहू के पारिवारिक व्यवहार से प्रसन्न थे; पर जब कभी अवकाश के दिन भी ऋतुजी का मन होता कि जिस तरह मंदिर व स्वाध्याय भवन में अन्य महिलायें अपनी नई-नवेली

बहू को लेकर आती हैं, उसी तरह वे भी अपनी बहू को लेकर जायें, साधर्मियों व तत्त्वज्ञान से परिचित करायें; परन्तु एक तो अवकाश के दिन सौरभ–सुनाक्षी देर से उठकर जब तक तैयार होते, तब तक पूजन–स्वाध्याय का समय ही निकल जाता और शाम के समय वे दोनों घूमने निकल जाते।

एक बार ऋतुजी ने हिम्मत करके सौरभ से मंदिर चलने के लिए कहा भी तो सौरभ ने हँसते हुए माँ से कहा "माँ! आप और पापाजी ही मंदिर जाओ; हम दोनों की ओर से भी प्रणाम कर लेना। वैसे भी माँ! आपके भगवान कुछ देते तो हैं नहीं, इसलिए उनके पास जाने से फायदा भी क्या है? सुनाक्षी के भगवान तो प्रसन्न होकर बहुत कुछ देते हैं; अतः यदि कभी फुरसत मिली तो आवश्यकता पड़ने पर सुनाक्षी के भगवान के पास चला जाऊँगा।"

हँसकर कही गई यह बात सुनकर ऋतु अंदर ही अंदर घुटकर रह गई। बचपन की भूल, आज शूल बनकर चुभ रही थी। वह सोचने लगी, जब अपनी कोख से पैदा हुआ बेटा ही ऐसा जवाब दे रहा है तो अन्य परिवार व धर्म में जन्म लेने वाली से तो क्या अपेक्षा की जा सकती है?

एक माह बाद ही दशलक्षण पर्व आने वाले थे; अतः प्रोफेसर साहब ने ऋतुजी से कहा कि "हमें पर्व मनाने के लिए उज्जैन चलना चाहिए; क्योंकि वहाँ पर सभी परिचित साधर्मियों के साथ पूजन–स्वाध्याय में मन लगेगा व पर्व के अनुकूल सात्त्विक भोजन आदि भी कर सकेंगे।"

जैसे ही ऋतु ने बेटे–बहू के सामने उज्जैन जाने की बात कही तो सुनाक्षी ने उनके पैरों पर हाथ रखते हुए बहुत ही आत्मीयता व विनम्रता से कहा "माँजी! हमसे कोई भूल हुई हो तो बताइये? या आपकी व्यवस्था में कोई कमी हो तो बताइयेगा, हम जरूर वह व्यवस्था करेंगे; पर कृपया आप यहाँ से जाने का मत कहिये। मैं अपने माता–पिता को

छोड़कर आई हूँ तो मुझे तो आप जैसे माता-पिता चाहिए ही हैं। हम तो बच्चे हैं अकेले कैसे रह सकेंगे ? आप और पापाजी रहते हैं तो हम दोनों निश्चिंत रहते हैं।'' सौरभ की ओर देखते हुए उसने कहा ''सौरभ! आप क्यों नहीं माँजी से रुकने को कहते हैं।''

''माँ! सुनाक्षी ने विवाह से पहले ही कहा था कि हम माँजी-पापाजी को सदैव साथ ही रखेंगे, अब उन्हें उज्जैन अकेला नहीं छोड़ेंगे। मुझसे जितना अधिक बन सकेगा, मैं उनकी इच्छा के अनुसार भोजन आदि की व्यवस्था करूँगी; इसलिये यह तो आपको मन से रोक ही रही है, मैं भी यही चाहता हूँ कि आपका वरद-हस्त हमारे सिर पर रहे। माँ! हम ऑफिस से सीधे ही घर आते हैं; क्योंकि सुनाक्षी कहती है कि जल्दी घर चलो दिन भर से माँजी-पापाजी अकेले हैं; इसलिए आप पर्व के दिनों में भी यहाँ ही रहिये, उज्जैन जाने का सोचिये भी नहीं। पर्व के बाद हम सभी उज्जैन चलेंगे और सबसे मिलकर वापिस आ जायेंगे। ठीक है न मेरी प्यारी माँ!!'' प्यार भरे शब्दों में जब बेटे-बहू ने इन्दौर ही रुकने का आग्रह किया तब ऋतुजी ने जयंतजी की ओर देखा और आँखों ही आँखों में उनकी स्वीकृति पाकर, आँखों में प्यार के आँसू व चेहरे पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुये उन्होंने रुकने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

भाद्र शुक्ल चतुर्थी की रात्रि 8.30 बजे जैसे ही जयंतजी व ऋतुजी स्वाध्याय सुनकर आये, वैसे ही घर में देखा कि सुनाक्षी सज-धज कर हॉल में एक सुसज्जित टेबल पर गणेशजी की स्थापना करके अगरबत्ती लगाये हुये भक्तिभाव पूर्वक आरती कर रही है। सौरभ एक तरफ मंत्र-मुग्ध होकर यह सब देखते हुए बैठा है। जयंतजी ने सौरभ की ओर देखते हुये आवेश में पर धीमी आवाज में कहा ''सौरभ यह सब क्या हो रहा है ?''

सौरभ ने मुस्कराते हुये कहा "पिताजी! आज गणेश चतुर्थी है न; अतः सुनाक्षी गणेशजी की स्थापना कर रही है। अब चतुर्दशी को विसर्जन तक वह अपने व्रत का पालन करेगी। मैंने आपको बताया था न कि सुनाक्षी अपने धर्म को बहुत ही श्रद्धा से मानती है।"

"पर बेटे! हम जैन हैं। जैन के घर में गणेशजी की स्थापना? कल से अपने दशलक्षण पर्व भी आ रहे हैं। अपने घर में यह सब कैसे हो सकता है?" ऋतुजी ने आश्चर्य से कहा।

"पिताजी! आप और माँ दशलक्षण पर्व प्रसन्नतापूर्वक मनाइये। आपको जिस सामग्री व सुविधा की आवश्यकता हो, वह हम पूरी करेंगे; पर सुनाक्षी यदि अपने ढ़ंग से अपने देव की पूजा कर रही है तो इसमें आपको क्या आपत्ति है?" सौरभ ने सहजता से कहा।

"अरे बेटा! ये जैन भगवान नहीं हैं, यह भगवान का सही स्वरूप नहीं है। भगवान वीतरागी होते हैं, ये तो रागी हैं.... ।"

"पिताजी! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मुझे रागी-वीतरागी, महावीर-गणेश से कोई लेना-देना नहीं है। जिसकी जो आस्था है, वह उसे माने मुझे कोई दिक्कत नहीं है। मैं आपके लिए आपकी पूजन-सामग्री ला दूँगा और सुनाक्षी को सुनाक्षी के योग्य। मैं पूरी कोशिश करूँगा कि पुत्रधर्म व पतिधर्म निभाने में मुझसे भूल न हो। बस इससे अधिक अभी मुझे कुछ नहीं कहना।" सौरभ ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में पिताजी की बात बीच में ही काटते हुए कहा।

इतने में ही सुनाक्षी आरती करके माँजी-पापाजी के पास आई। वह लाल साड़ी व आभूषणों को पहने हुये बहुत ही सुन्दर लग रही थी। साड़ी का पल्लू सिर पर रखे हुये विनम्रतापूर्वक जयन्तजी व ऋतुजी के चरण-स्पर्श करते हुये सुनाक्षी ने कहा "माँजी-पापाजी विवाह के पहले मैंने व्रत रखा था और मन्नत माँगी थी कि सौरभ के साथ ही मेरा

विवाह हो और गणपति बप्पा ने मेरी मनोकामना पूर्ण की। विवाह के बाद यह मेरा पहला व्रत है, आप आशीर्वाद दीजिये, जिससे कि मेरा व्रत सफल हो।''

''बेटा! इस व्रत में तुम क्या करोगी?'' ऋतुजी ने पूछा।

''मैं अब चतुर्दशी तक अनाज नहीं खाऊँगी, बस रात्रि को आरती के बाद साबूदाना, शकरकंद, दूध और कुछ मेवे खाकर अपने व्रत पूरे करूँगी।''

''साबूदाना-शकरकंद, वह भी रात में?'' ऋतुजी ने विस्मय से पूछा।

''हाँ माँजी! मैंने जब पहले व्रत किया था, तभी मेरी मम्मी ने सब बता दिया था और आज भी मेरी मम्मी ने समझा दिया है। इस व्रत में दिन भर उपवास रखा जाता है और बस साबूदाने जैसी सहगारी चीजें ही खाई जाती हैं। मम्मी कह रहीं थीं कि तुम्हारी सास तो जैनी हैं, वे तो इस व्रत के बारे में जानती नहीं होंगी; इसलिये मैं समझा रही हूँ, वैसा ही करना। व्रत में अश्रद्धा नहीं करना व व्रत की निंदा भी नहीं सुनना, नहीं तो बड़ा पाप लगता है और निंदा सुनने से मनोकामना तो पूरी होगी ही नहीं; पर जो मिला हुआ है, वह भी चला जाता है।'' सुनाक्षी ने विनम्रता व आस्थापूर्वक भोलेपन से सब बता दिया।

''अच्छा'' किंकर्तव्यविमूढ़ होकर ऋतुजी के मुँह से बस इतना ही निकला।

''हाँ माँजी! इसीलिए मैंने मम्मी से कह दिया है कि वे चिंता न करें, मैं व्रत में घर से बाहर ही नहीं जाऊँगी, जिससे किसी के द्वारा व्रत की निंदा सुनना पड़े। ठीक किया न माँजी!''

''हाँ-हाँ ठीक किया; पर बेटा तुमने तो पहले इस व्रत के बारे में हमें कुछ बताया नहीं।''

"माँजी! यह मनोकामना पूर्ण करने वाला व्रत है, इसे प्रारंभ करने से पहले किसी को बताया नहीं जाता; इसलिये माँजी मैंने आपको नहीं बताया, कृपया आप क्षमा कीजियेगा।" भोलेपन से सुनाक्षी ने कहा।

"सुनाक्षी! अपने घर में क्या कमी है? जो तुमने मनोकामना पूर्ण करने के लिए व्रत रखा है।" आश्चर्य से ऋतुजी ने पूछा।

"मैंने मनोकामना की है कि मेरे गणपति बप्पा इस वर्ष सौरभ का प्रमोशन करा दें और और.....।"

कहते-कहते सुनाक्षी शरमाते हुये रुक गई, तब ऋतुजी ने पूछा "और क्या?"

"और माँजी आपकी गोद में पोता खेले।" इतना कहते ही वह लजाते हुये बोली "माँजी आप आशीर्वाद दीजिये कि मेरी यह मनोकामना पूर्ण हो" - ऐसा कहकर चरण-स्पर्श करके वह अपने कमरे में चली गई।

जयंतजी-ऋतुजी सुनाक्षी की आस्था व मिथ्या विश्वास के सामने तुरन्त तो कुछ भी नहीं कह सके; बस "खुश रहो" का आशीर्वाद देते हुये अपने कमरे में आ गये।

कमरे में आकर जयंतजी गंभीरता से बोले "ऋतु यह क्या विधि का विधान है। एक ही घर में राग व वीतराग की आराधना एक साथ। सास पंचमी से संयम-सादगी-त्याग-योग के पर्व मनायेगी व बहू राग व भोग के पर्व मनायेगी। एक ओर अकर्तापन व निर्वांछकता है तो दूसरी ओर कर्तृत्व व वांछा। एक ओर ज्ञान-प्रकाश है, अध्यात्म है, अहिंसा है तो दूसरी ओर अंधविश्वास, और रागवर्धक हिंसक क्रियायें। हे प्रभो! ये क्या दृश्य देखने को मिल रहे हैं। पहले जब कुछ जानते नहीं थे, तब अज्ञान में समय बीता; संयोगवश कुछ समझ हुई तो घर में ही यह प्रसंग बन रहा है। क्या करें? क्या कहें?"

ऋतुजी भी बड़ी ही गंभीर मुद्रा में बैठी हुईं थीं। वे बोलीं – "यह सच है कि सुनाक्षी सुशील, विनम्र, सरल व भोली है। हमें किसी भी प्रकार की असुविधा हो, वह एक क्षण को भी नहीं चाहती; पर धर्म के संबंध में तो वह गृहीत मिथ्यात्व के जोर में अभी कुछ भी समझने की स्थिति में नहीं है। उसकी आस्था व विश्वास तथा अपने प्रति आदर देखकर मैं कुछ भी नहीं कह सकी।"

"हम कुछ नहीं कह सके – यह बात तो सही है और कहते भी तो वह मान जाती – ऐसा भी नहीं है; मुझे तो लगता है यदि हमने इस विषय में कुछ कहा भी तो सौरभ तो कुछ सुनने को तैयार है ही नहीं; पर कहीं इस बात से सुनाक्षी भी रुष्ट न हो जाये; क्योंकि भक्ति, अंधी होती है।" जयंतजी ने कहा।

"मुझे तो कुछ दिन पूर्व स्वाध्याय में आई हुई बात याद आ रही है कि विकृत स्वरूप में देव की कल्पना करने से किंचित् पुण्य का बंध तो कदाचित् होता है; परन्तु ऐसे पुण्य बंध से कुभोगभूमि में जन्म होता है, जहाँ विकृत शरीर की प्राप्ति होती है और वीतरागी निर्दोष परमात्मा के अवर्णवाद व मिथ्या मान्यता से मिथ्यात्व का तीव्र बंध होता है, जिससे अनंत संसार में दुःखद भ्रमण होता है।

सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का स्वरूप समझ में आना कितना दुर्लभ है। हे प्रभो! हमें और कोई अनुकूलता हो या न हो पर हमारे बेटे–बहू को वीतरागी जिनशासन की शरण प्राप्त हो जाये – बस इतना पुण्य फलित हो जावे।" ऋतुजी ने हाथ जोड़ते हुये कहा।

"यह सब तो ठीक है; परन्तु समाज के लोगों को जब पता चलेगा कि हमारे घर में क्या चल रहा है, तो उन्हें क्या मुँह दिखायेंगे?" जयंतजी पलंग पर लेटकर छत की ओर देखते हुये शान्त स्वर में बोले।

''मोह किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ता - यह प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा है। हमारे द्वारा बेटे के मोह में विधर्मी संग विवाह की अनुमति देना व मोह के वश साथ में रहने की ही यह सजा है कि आज सोचना पड़ रहा है कि समाज को क्या मुँह दिखायेंगे। अरे समाज को तो छोड़ो; पर परभव में हमें इस अनुमोदना के फल में कर्म ने यदि धर्म से च्युत कर दिया तो हमारा क्या होगा? और जिस बेटे को हम प्राणों से प्यारा समझ रहे हैं, जिस बहू की सेवा का लाभ ले रहे हैं वे भी धर्म विरुद्ध आचरण व वीतरागी देव को दोष लगाने के फल में कहाँ जायेंगे? यह विचार कर ही रोना आ रहा है।'' ऋतुजी आँखों में आँसू भरते हुए बोलीं।

''देखो, अधिक सोचने व रोने से कुछ नहीं होने वाला। जिस जीव की जो होनहार हो उसे कौन टाल सकता है। अपने परिणामों का फल हमें व उनके परिणामों का फल उन्हें प्राप्त होगा। हम अधिक संक्लेश करेंगे तो उससे कोई लाभ नहीं है। हमारे जीवन को देखकर यदि समझदार विजातीय वैवाहिक संबंधों का क्या फल मिलता है - यह देखना व सीखना चाहेंगे तो अवश्य सीखेंगे।'' जयंतजी ने लंबी साँस लेते हुए कहा।

''अरे यह लोभी जगत भी क्या सीखेगा। सभी को धन-पद-यश व सुन्दर शरीर की महिमा है। **भोगियों को धर्म की कीमत आती ही नहीं है।** बस परिवार व व्यापार के मोह में पागल होकर रात-दिन लगे रहते हैं; वे क्या समझें धर्म-अधर्म?'' जगत के प्रति वितृष्णा प्रकट करते हुए ऋतुजी ने कहा।

''यह बात तो तुम सही कह रही हो। अभी तक भी समाज के किसी सदस्य ने सौरभ के विजातीय विवाह के बारे में हमें नहीं टोका; क्योंकि पता चला है कि अनेक परिवारों में विजातीय व विधर्मी विवाह

हर्षोल्लासपूर्वक हो चुके हैं और कुछ होने की तैयारी में हैं।'' जयंतजी ने समाज की दशा प्रकट की।

''लोगों की तो वे जाने, पर यदि बेटे–बहू की होनहार अच्छी होगी तो हम अवश्य प्रयास करेंगे कि उन्हें सत्य समझ में आ जाये, अन्यथा उनकी होनहार का विचार करते हुये समता धारण करेंगे।'' करवट बदलते हुये ऋतुजी ने कहा।

''यह तो ठीक है; पर इस तरह एक साथ रहने पर तो हमें भी अनुमोदना का दोष लगेगा ही, यह सोचकर ही असमंजस हो रहा है।'' जयंतजी हाथ का सिरहाना लगाते हुये बोले।

''पर अभी तो हम कुछ कर नहीं सकते, कल से ही दशलक्षण पर्व प्रारंभ हो रहे हैं, इसलिये यहाँ ही रहना पड़ेगा। अनुकूलता में तो सभी धर्म साधन करते हैं, हमें प्रतिकूलता में धर्म साधन करने का अवसर मिल रहा है – यही विचार करना चाहिए।'' ऋतुजी ने आँख बंद करते हुये कहा। दोनों अन्यमनस्क होकर सोने का प्रयास करने लगे। ○○○

मैं तो बस इक ज्ञायक हूँ

कहें मित्रगण– 'तुमने काम किया है प्रियवर! स्वागत योग्य।
बड़ा काम अरु कठिन परिश्रम, करते रहते प्रशंसा योग्य।।
तुम जैसा कर्ता–धर्ता तो है समाज में कहीं नहीं।
तुम नायक, सबको सुखदायक, तुम जैसा है कोई नहीं।।'
निंदक जन कहते हैं 'तुमसे होता कुछ भी काम नहीं।
नाम कमाने अरु पद पाने, भागे फिरते यहीं वहीं।।
ना जाने क्यों तुम्हें पूंछते, क्यों समझें तुम लायक हो?
हो मति हीन, निरुद्यमी, लोभी तुम पक्के नालायक हो।।''
मित्रों की बातें सुन करके, अहंकार हो जाता है।
निंदक के वचनों को सुनकर, तोड़ूँ सबसे नाता है।।
जिन वचनों को सुना ध्यान से 'नालायक' ना 'लायक' हूँ।
सभी कार्य क्रमबद्ध हो रहे, मैं तो बस इक 'ज्ञायक' हूँ।

8

संयोगवश अनीशा के भाई अनिकेत के लिये जो रिश्ता रायपुर से आया था, वह सभी को पसंद आ गया और सही समय पर हर्षोल्लासपूर्वक विवाह भी सम्पन्न हो गया।

श्रीमती सरलादेवी तो बहू के आगमन पर फूली नहीं समा रही थीं; क्योंकि वर्षों के इंतजार के बाद घर में यह प्रसन्नता का अवसर आया था। अनिकेत की ससुराल वाले सम्पन्न परिवार के थे। उन्होंने अनिकेत को योग्य समझते हुये अपनी बेटी का धूमधाम के साथ अनेक मँहगे उपहार देते विवाह किया था।

पति सुभाष के देहवियोग के बाद सरलादेवी ने बहुत परिश्रम पूर्वक अपने बच्चों का लालन-पालन किया। पिताजी की कमी का अहसास बच्चों को न हो, इसका पूरा ध्यान उन्होंने रखा। कभी विपरीत परिस्थिति बनती भी, तो वह अकेले में भले ही रो लेती; परन्तु बच्चों को पता भी नहीं लगने देती।

अनीशा का विवाह तो 10 वर्ष पूर्व सागर हो ही चुका था। अब बेटे का संबंध करके वे निश्िंचत हो गई थीं कि अब मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं रही, अब तो बस बेटे-बहू के साथ, पोते-पोतियों को गोद में खिलाते और धर्म साधन करते हुये जीवन शांति से निकल जायेगा। 'दु:ख भरे दिन बीते रे भैया, अब सुख आयो रे।'

सरलादेवी, अनिकेत के सी.ए. का ऑफिस खुलते ही बेटी अनीशा के बार-बार आग्रह करने पर अनिकेत के विवाह के पहले से ही स्वाध्याय सभा में जाने लगी थीं। स्वाध्याय में उन्होंने सुना था कि "किसी एक भी विषय या वाक्य के बारे में सोचते-विचारते रहना ध्यान है। हम सब निरंतर आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करते रहते हैं। आर्त्त का अर्थ

है दु:खी होते रहना। अपने इष्ट पति, पुत्र, धन, पद के वियोग होने पर इष्टवियोगज; अपने विचारों के प्रतिकूल बेटे–बहू, नौकरी, मकान मिलने पर अनिष्टसंयोगज; रोग–पीड़ा होने पर या हो न जाये, इसका विचार करके दु:खी होना पीड़ाचिन्तन और धर्म कार्य करके भगवान से धन–पद, स्वर्गादि की प्राप्ति के लिए कामना करना निदान नाम का आर्त्तध्यान है। इसके फल में तिर्यंचगति की प्राप्ति होती है।

इसीप्रकार हिंसा करके आनंद मानना हिंसानन्दी; झूठ बोलकर आनन्द मानना मृषानन्दी; किसी की वस्तु या कर आदि की चोरी करके आनंद मानना चौर्यानन्दी और सोना–चाँदी, गाड़ी–बंगला आदि परिग्रह जोड़कर उसे देख–देखकर आनन्दित होना, प्रसन्न होते रहना परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान है। इसका फल नरकगति है। हमें जिनवाणी से तत्त्वज्ञान करके यह समझना चाहिए कि बाहर का कोई भी पदार्थ इष्ट–अनिष्ट, अनुकूल–प्रतिकूल नहीं है, उनका मिलना–बिछुड़ना सहज संयोग है। इस संयोग–वियोग में हम यदि दु:खी होते हैं, तो हमारा असाता कर्म का उदय और सुखी होते हैं तो साताकर्म का उदय कहलाता है। पर सच में तो इस सुख–दु:ख का कारण हमारा अज्ञान व राग–द्वेष ही है, जिसका फल वर्तमान में आकुलता और भविष्य में चार गतियों का परिभ्रमण है; अत: हमें इन आर्त्त–रौद्रध्यानों से बचकर धर्मध्यान में लगना चाहिए।''

प्रतिदिन के स्वाध्याय से प्राप्त तत्त्वज्ञान के अभ्यास से सरलादेवी पतिवियोग के इष्टवियोगज व भूतकाल की प्रतिकूलताओं के अनिष्ट–संयोगज आर्तध्यान व अचानक ही पुण्योदय से प्राप्त परिग्रह व अन्य अनुकूलताओं में होने वाले रौद्रध्यान से बचने लगीं थीं। वे समझ गई थीं कि वास्तव में जितना समय स्वाध्याय में लग रहा है, वही समय मेरा है; अन्य संयोग–वियोग कर्माधीन हैं; उनको हटाने–जुटाने–मिटाने के विकल्प सर्वथा निरर्थक ही हैं।

सरलादेवी की बहू सोनम भी सी.ए. थी और अनिकेत के कार्यालय में ही बैठने लगी थी। पुण्योदय और व्यवहार कुशलता से दोनों की ही सी.ए. की प्रैक्टिस अच्छी तरह से चल रही थी। अब पैसे व सामाजिक सम्मान की कमी नहीं थी, ऐसा लग रहा था मानो कृष्ण पक्ष के बाद शुक्ल पक्ष का उदय हुआ हो।

सोनम सम्पन्न परिवार की आधुनिक विचारों की महिला थी। उसके पितृपक्ष में सभी धन-पद को पाकर कर्तृत्व के अहंकार में फूले रहते व खाने-पीने में मस्त रहकर अपने व्यापारिक कार्यों में ही लगे रहते; इसीलिए उसकी भी भोगप्रधान सोच थी कि जीवन मिला है तो 'खाओ-पिओ मौज करो।' 'पल-पल जीवन बीता जाता है, बीता पल नहीं वापिस आता है, जो शान से पीता-खाता है, वो ही जीवन का आनंद पाता है।'

सोनम को पाश्चात्य शैली का पहनावा व रात्रि में पार्टियों में जाना अच्छा लगता। सरलादेवी बहू को जीन्स-टॉप में देखकर मन ही मन दु:खी होतीं। वे चाहतीं कि बहू साड़ी पहिनकर मंदिर जाये; परन्तु बहू तो प्रात: वॉकिंग शूट पहनकर घूमने चली जाती और दिन में ऑफिस में कभी शूट तो कभी जींस-टीशर्ट पहिनकर जाती; ऑफिस में दिनभर व्यस्त रहती। मंदिर के लिए तो उसके पास समय ही नहीं था।

नागपुर में युवा वर्ग के प्रिय विद्वान पण्डित विवेक शास्त्री का आगमन हुआ, उन्हें सुनने के लिए शहर के कोने-कोने से युवा-युवती आ रहे थे। सरलादेवी भी प्रवचन सुन रहीं थीं। युवाओं की भीड़ देखकर उनके मन में आया कि अनिकेत व सोनम भी प्रवचन में आयें तो उनकी भी सोच बदल जाये। यह सोचकर प्रात: उठते ही वॉकिंग के लिए निकल रहे अनिकेत व सोनम से सरलादेवी ने कहा "बेटा आज रविवार

है, तुम्हें ऑफिस भी नहीं जाना है, अतः घूमकर थोड़ा जल्दी आ जाना; फिर मंदिर चलेंगे।''

''मंदिर में आज नया क्या है माँ?'' अनिकेत ने पूछा।

''बेटा! मंदिर में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान पण्डित विवेकजी आये हुये हैं। उनके प्रवचन युवावर्ग के लिए बहुत ही प्रेरक हैं, तुम सुनोगे तो तुम्हें भी बहुत अच्छा लगेगा।''

''ठीक है माँ! हम घूमकर आते हैं, फिर मंदिर चलते हैं।'' अनिकेत ने सहजता से कहा।

''हम नहीं अनिकेत! आपको जाना हो तो मंदिर जाओ, पूजन करो, प्रवचन सुनो; जो करना है, वह करो; पर मुझे यह ढ़कोसलेबाजी पसंद नहीं है।'' सोनम ने चिढ़ते हुये कहा।

''माँ के सामने इस तरह नहीं बोलते। हम रोज तो मंदिर जा नहीं पाते। यदि माँ रविवार के दिन प्रेम से कह रही हैं, तो हमें कभी तो उनकी बात माननी ही चाहिए न।'' अनिकेत ने गुस्से में पर धीमी आवाज में कहा।

''मेरे मन में जो है, मैंने वही कहा है। मुझे लाग-लपेट पसंद नहीं है। 'साफ कहना, सुखी रहना' ही मुझे पसंद है। मैं अपनी जिंदगी अपने ढ़ँग से जीना चाहती हूँ।'' स्पष्ट और तेज आवाज में सोनम ने कहा।

सरलादेवी सोनम के तेज व अहंकारी स्वभाव को जानने लगीं थीं; अतः उन्होंने सहजता से कहा ''सोनम बेटा! कोई बात नहीं; तुम्हें धर्मचर्चा समझ में नहीं आती तो कोई बात नहीं, पर हम जैन हैं तो एक बार मंदिर जाने व प्रवचन सुनने में क्या दिक्कत है?''

''मुझे धर्मचर्चा समझ में नहीं आती, मतलब मैं नासमझ हूँ? मैंने सी.ए. पास किया है, वह डिग्री फर्जी है? इस घर में समझदार तो बस आप ही हैं।'' सोनम गुस्से में भोंह चढ़ाते हुए बोली।

''अरे बेटा! बात का बतंगड़ क्यों बना रही हो। मेरा कहने का मतलब तो इतना ही है कि एक दिन मंदिर चलने व प्रवचन सुनने में पाप तो नहीं लग जायेगा।'' सरलादेवी ने कहा।

''सोनम! माँ सच ही तो कह रही हैं। प्रवचन की बात मानना या नहीं मानना – यह तो हमारे ऊपर है। अगर माँ की इच्छा है तो मंदिर चलने में दिक्कत क्या है?'' अनिकेत ने समझाते हुये कहा।

''देखो अनिकेत! मुझे जिस नगर नहीं जाना, मैं वहाँ का रास्ता भी नहीं पूछती। जब मैं यह धर्म–वर्म मानती ही नहीं, स्वर्ग–नरक है ही नहीं तो फिर उसे समझने के लिए अपना समय खराब करना, मूर्ख लोगों का काम है।'' सोनम ने होशियारी दिखाते हुए कहा।

''सोनम! तुम मेरी माँ को मूर्ख कह रही हो।'' झल्लाते हुये अनिकेत ने कहा।

''मेरा ऐसा मतलब कतई नहीं है, फिर भी आपको जो मतलब निकालना हो, वह निकालो। आज तो माँ–बेटे ने सुबह–सुबह ही दिमाग खराब कर दिया, अब तो छुट्टी का पूरा दिन ही खराब समझो। सारा मूड खराब कर दिया। अब क्या घूमने जायेंगे।'' ऐसा कहकर पैर पटकते हुये सोनम अपने कमरे में चली गई।

सोनम की धर्म तथा अपने प्रति उपेक्षा देखकर सरलादेवी को रोना आ गया। माँ को रोता देखकर अनिकेत भी दु:खी होते हुये, माँ का हाथ पकड़कर वहीं बैठ गया। अनिकेत ने माँ को जन्म से दु:खी ही देखा है; अत: उसकी भावना यही थी कि वह कभी भी माँ को अब रोने नहीं देगा। घर में साधनों की कोई कमी नहीं थी; अत: माँ प्रसन्न भी रहतीं थीं; पर आज सोनम के व्यवहार ने माँ को रुला दिया – यह अनिकेत को अच्छा नहीं लगा। सोनम के ऊपर उसे गुस्सा भी बहुत आ रहा था; परन्तु ससुराल से प्राप्त दहेज, शिक्षित व कमाऊ पत्नी व सम्भ्रान्त समाज

में बने 'स्टेटस' के दबाव में वह गुस्सा करके झगड़ा करने को तैयार नहीं हो पा रहा था।

माँ के पास बैठते हुये अनिकेत ने कहा। "प्लीज, माँ आप रोइये मत। मैं आपके साथ मंदिर चलूँगा, प्रवचन भी सुनूँगा। सोनम भी मन से बुरी नहीं है; परन्तु परिवार से धर्म के संस्कार न मिलने से उसे धर्म की रुचि नहीं है, मैं उसे धीरे-धीरे समझाऊँगा।"

"बेटा! उसका दोष नहीं है। दोष मेरा ही है। वह छह दिन तो ऑफिस में दिनभर काम करती है। आज ही उसे कुछ घूमने-फिरने का समय मिलता है, सहेलियों के साथ बात करने व आराम करने का समय मिलता है और उसी मैं मैंने यह मंदिर जाने का कह दिया; इसलिए उसे बुरा लगा होगा। उसे कहना मेरी बात को दिल पर न ले। बेटा इस बात को लेकर झगड़ा नहीं करना, अपने घर की बात है; फालतू में घर के बाहर बात जायेगी तो बदनामी ही होगी। वह पढ़ी-लिखी व समझदार है, समय आने पर सब समझ जायेगी।" आँसू पोंछते हुए सरलादेवी मंदिर चली गईं।

माँ के मंदिर जाते ही अनिकेत, सोनम के व्यवहार से दुःखी होकर सोफे पर बैठकर सोचने लगा।

सोनम अन्य हर कार्य करने में प्रसन्न रहती है। ऑफिस का काम करते हुये भी घर व माँ का पूरा ध्यान भी रखती है; परन्तु उसके पहनावे व पार्टी के विरुद्ध कोई कुछ कहे या फिर मंदिर चलकर पूजन-स्वाध्याय की बात करे तो वह एकदम बिफर पड़ती है। परिवार में यदि जन्म से संस्कार न दिये जायें तो ऐसी ही समस्यायें आती हैं। सच ही कहा है **संस्कार बिना की सुविधायें पतन का कारण हैं।** स्वयं उसे भी कहाँ धर्म की समझ है। बचपन से पिता की छाया उठ गई, माँ ने बहुत

मेहनत करके लालन-पालन किया। आर्थिक स्थिति कमजोर होने व काम में व्यस्त रहने से माँ भी स्वाध्याय में नहीं जा पातीं थीं; केवल दर्शन व पूजन कर आतीं थीं; मैं भी पढ़ाई में मस्त रहता। रविवार या दशलक्षण पर्व में माँ को खुश रखने के लिए दर्शन करने चला जाता।

यह सब सच है, पर सोनम को माँ की बात माननी चाहिए थी। लगता है माँ ने सच ही कहा है कि समय आने पर सब समझ जायेगी।

इस विचारधारा के चलते-चलते कमरे में आते ही अनिकेत ने सोनम से कहा- "सोनम! आज आपने यह अच्छा नहीं किया।"

"क्या अच्छा है? क्या बुरा है? यह मैं भी जानती हूँ।" नहाने की तैयारी करते हुये सोनम ने कहा।

"माँ ने मंदिर चलने के लिए ही तो कहा था, दर्शन करके प्रवचन सुनने के लिए ही तो कहा था। यदि तुम हाँ कह देतीं तो, इसमें क्या बुरा हो जाता?"

"अनिकेत! मैं दूसरों की अंगुली के इशारे पर नाचने वाली कठपुतली नहीं हूँ। मुझे जो अच्छा लगता है, वही कहूँगी, वही करूँगी।"

"तुम जो चाहती हो, वही तो करती हो, वही पहनती हो तुम्हें कौन टोकता है? पर जब हम एक परिवार में साथ रहते हैं, तो हमें कभी दूसरों की इच्छाओं का भी ध्यान रखना चाहिये न? और वे मेरी माँ हैं। यदि उन्होंने हमारे भले के लिए प्रवचन में चलने का कहा तो इसमें क्या गलत कहा?"

"हमारे भले के लिए नहीं, उन्होंने अपने भले के लिए कहा है। वे सबको दिखाना चाहती हैं कि मैं उनकी बहू हूँ।"

"एक तो ऐसा है नहीं और यदि अपनी सुन्दर, सी.ए. बहू को वे सबको दिखाना भी चाहती हों तो इसमें क्या बुरा है?" अनिकेत ने मजाक के मूड में कहा।

''मैं कोई प्रदर्शन की चीज हूँ? जो मुझे सबको दिखाना चाहती हैं; हुँह! मुझे यह कतई पसन्द नहीं है।''

''ठीक है बाबा! तुमको जो पसन्द हो, वह करो। मुझे तो अपनी माँ को खुश देखना पसन्द है; इसलिए मैं तैयार होकर मंदिर जा रहा हूँ। तुम तैयार होकर चाय-नाश्ता कर लेना। फिर खाना खाकर इम्प्रेश सिटी चलेंगे।'' सोनम मानने वाली नहीं है, यह जानकर बात बदलते हुये अनिकेत ने कहा।

''इम्प्रेश सिटी क्यों?''

''अरे भाई! तुम्हारे भाई के साले की आज सालगिरह है न, उन्होंने पार्टी में अपने को बुलाया है न। आज यदि मूड खराब हो तो वहाँ भी नहीं चलते हैं।''

''अरे नहीं, वहाँ तो चलना ही है। नहीं तो वे बुरा मान जायेंगे। हाँ तुम्हारे इस मंदिर की झंझट में मैं इतनी जरूरी पार्टी भूल ही गई थी।''

''मुझे पता है पार्टी के नाम पर तो तुम सोते से भी जाग जाओगी। ठीक है तुम तैयार रहना; मैं मंदिर जाकर आता हूँ।''

''ठीक है; पर मंदिर में ही बैठकर नहीं रह जाना, नहीं तो माँ-बेटा मिलकर मेरी पार्टी ही बिगाड़ दो।''

''अरे नहीं बाबा! ऐसी गलती मैं कैसे कर सकता हूँ? मुझे अभी इस दुनिया में शान्ति से रहना है।'' हँसते हुये अनिकेत तैयार होने स्नानगृह में चला गया।

ooo

9

सेठ लालचन्द व विमलादेवी पारिवारिक दायित्वों से निवृत्त होकर अब आत्महित के कार्यों में प्रवृत्त हो रहे थे। प्रतिदिन पूजन व सामूहिक स्वाध्याय के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी स्वाध्याय करते, मनीषियों के प्रवचन सुनते और कोई यदि न मिलता तो परस्पर में चर्चा करते। सेठ लालचन्द को यदि कभी समय मिलता तो भी व्यापारिक कार्य में न उलझकर समाज में सदाचार-श्रावकाचार व तत्त्वज्ञान का प्रचार कैसे हो? इस विषय पर अपने मित्रों के साथ चिंतन करते और कुछ न कुछ करने का विचार करते।

एक दिन शाम के समय पण्डित ज्ञानचन्दजी व अपने मित्र सिंघई बालचन्दजी के साथ तालाब के किनारे घूमते हुये सामाजिक समस्याओं पर उनकी चर्चा होने लगी?

पण्डित ज्ञानचन्दजी ने कहा आज समाज में जगह-जगह सामूहिक रात्रिभोजन, विजातीय वैवाहिक सम्बन्ध, शादी से पहले वो क्या कहलाता है....हाँ! प्रीवैडिंग आदि का फैशन बहुत बढ़ता जा रहा है जो कि समाज व उस व्यक्ति के लिए बहुत ही घातक है।

विजातीय विवाह होने पर मात्र दो व्यक्ति ही नहीं; आगे की पूरी कुल परंपरा ही धर्म से दूर चली जाती है। इस संबंध में कोई कुछ सोचता ही नहीं है।''

''यह बात तो आप सही कह रहे हैं पण्डितजी! प्रतिवर्ष कहीं न कहीं से ऐसी खबरें आती ही रहती हैं। जिनको पढ़कर आश्चर्य होता है और विचार आता है कि समाज आखिर किस ओर जा रहा है।'' बालचन्दजी ने कहा।

"बात यह है कि आज सभी को लौकिक धन-पद की ही कीमत है; संस्कार, संस्कृति, धर्म ये सब किताबों के ही शब्द बनते जा रहे हैं। सब दिखावे के लिए पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहे हैं। माता-पिता अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाकर कैसे भी डॉक्टर-इंजीनियर बनने बाहर भेज देते हैं। माता-पिता भरपूर साधन उपलब्ध कराते हैं। हॉस्टल में रहकर व होटल में खाकर बच्चे जैन-अजैन, भक्ष्य-अभक्ष्य-पूज्य-अपूज्य के विवेक के बिना - सब धर्म समान हैं, दुनियाँ की हर चीज खाने के लिए है और दिन के 24 घंटे में जब जरूरत हो तब खाना-पीना चाहिए की मान्यता से सब रहते हैं; तब वहाँ जाति-पाँति का भेद ही नहीं रह जाता और फिर ऐसे प्रसंग बन जाते हैं, जिनके कारण परिवार व समाज का शर्म से सिर झुक जाता है।" पण्डित ज्ञानचन्दजी ने विस्तार से अपने विचार रखे।

"जब संतान, माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध ऐसा करते हैं, तब उन माता-पिता की मानसिक दशा क्या होती होगी ? समाज में वे कैसे सिर उठाकर रहते होंगे ?" लालचन्दजी ने कहा।

"जिन बच्चों के लिए पूरा जीवन लगाया हो, अपनी इच्छाओं का गला घोंटा हो, भविष्य के सुखद स्वप्न देखें हों; वे बच्चे सभी आशाओं पर पानी फेरते हुये जब यह कहते आ जायें कि पापा बारात में चलने की तैयारी कर लो बाकी सब मैंने तय कर लिया है, तब उन पर क्या गुजरती होगी ? यह सोचकर ही मन काँप जाता है।"

"आजकल के बच्चे, बड़ों को कुछ समझते ही नहीं हैं। पता नहीं ! यह शिक्षा जीवन सुधारने के लिए है या बिगाड़ने के लिए; **अर्थकरी विद्या, अनर्थकरी ही होती है।**" बालचन्दजी ने कहा।

"पर ऐसी परिस्थिति के पीछे बच्चे ही नहीं, माता-पिता भी कम दोषी नहीं हैं।" पण्डितजी ने कहा।

"इसमें माता-पिता का क्या दोष है? बच्चों को उच्च शिक्षा देने बाहर भेजा; क्या यह दोष है? बच्चों की सुख-सुविधा के लिए कैसे भी साधन उपलब्ध कराये; क्या यह दोष है?" बालचन्दजी ने पूछा।

"बालचन्दजी यह दोष नहीं हैं, यह तो माता-पिता का कर्तव्य है, जो उन्होंने पूरा किया; पर इतना ही कर्तव्य तो नहीं था।" पण्डितजी ने कहा।

"अच्छे से अच्छे स्कूल-कॉलेज में सामर्थ्य न होते हुये भी पढ़ने भेजा, अच्छे कपड़े दिलाये, मोबाइल दिलाया, जेब खर्च दिया; अब और क्या कर्तव्य शेष रह गया।" लालचन्दजी ने पूछा।

"लालचन्दजी आपको आपके माता-पिता से शिक्षा, पैसा, व्यापार मिला। उसे आप बढ़ाकर बेटों को देना, अपना कर्तव्य समझते हो; पर अपने ही माता-पिता से जो आपको धार्मिक संस्कार मिले; वे भी कुछ बढ़ाकर अपनी संतान को देना; क्या यह हमारा ही कर्तव्य नहीं है?"

"क्यों नहीं है, अवश्य है।"

"बस तो यही कर्तव्य निभाने में चूक गये। यदि माता-पिता ने वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु, भक्ष्य-अभक्ष्य, पुण्य-पाप, तत्त्व-अतत्त्व का ज्ञान कराया होता, श्रावकाचार का महत्त्व समझाया होता तो आज यह नौबत उनके जीवन में नहीं आती।"

"यह बात तो आप सही कह रहे हैं। धार्मिक संस्कारों की कमी तो बहुत दिख रही है। अपने नगर में ही हर वर्ष 1-2 पंचकल्याणक हो जाते हैं, लाखों करोड़ों रुपये जुड़ते हैं व खर्च हो जाते हैं; परन्तु जो इन्द्र-इन्द्राणी बनते हैं, जो भगवान विराजमान करते हैं; वे भी पंचकल्याणक के बाद रोजाना पूजन-प्रक्षाल की तो छोड़ो, दर्शन करने भी नहीं आते। पार्टियों में जाकर रात को नौ-नौ बजे तक खड़े-खड़े खाते हैं। अब ऐसे लोग अपने बच्चों को क्या संस्कार दे पायेंगे? पण्डितजी! बच्चों को तो

छोड़ो, सच में तो आज के माता-पिता ही धर्म से दूर हो रहे हैं; इसलिये उनके मन में ही नहीं आता कि बच्चे धर्म से जुड़ें, उनके जीवन में श्रावकाचार हो।'' लालचन्दजी ने कहा।

''लालचन्दजी! वे तो धर्म से दूर हो ही रहे हैं!! और वे अपने बच्चों को संस्कार नहीं दे पायेंगे - यह काला सच भी दिख रहा है; तो क्या हमारी आगामी पीढ़ी इस शाश्वत सत्य से दूर, मात्र विषय-भोगों में लगकर, पाप कमा कर नरक जाने के लिए ही पैदा हो रही है?''

''अरे नहीं पण्डितजी! शुभ-शुभ बोलो।'' बालचन्दजी ने कहा।

''अगर बोलने मात्र से ही शुभ हो जाता हो तो मैं तो शुभ ही शुभ बोलूँ; मैं किसी का अशुभ क्यों चाहूँगा? सच तो यह है कि उनके शुभ की चिंता में ही ये अशुभ शब्द निकल रहे हैं। शब्द भले ही अशुभ हों, पर भाव तो शुभ ही हैं।'' पण्डितजी ने बहुत ही गंभीरता से कहा।

''परन्तु इसके लिए हम कर भी क्या सकते हैं? जिसकी जैसी होनहार होगी, वही तो होगा।'' लालचन्दजी ने कहा।

''हम कुछ भी नहीं कर सकते - ऐसा सोचकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना; सही नहीं है। अरे! हम चाहें तो सब कुछ तो नहीं; पर बहुत कुछ कर सकते हैं। कहा भी है - मुश्किल नहीं है कुछ भी, गर ठान लीजिये।''

''अच्छा! तो बताइये न पण्डितजी! इस नई पीढ़ी को धर्म मार्ग में लगाने के लिए क्या करें? मेरे घर में भी तो पोते-पोतियाँ हैं। उनके प्रति हमारा भी तो कर्तव्य है।'' सिंघई बालचन्दजी ने कहा।

''समाज के सभी बच्चे अपने ही बेटा-बेटी, पोता-पोती तो हैं। सबके प्रति अपना कर्तव्य है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस वर्ष गर्मियों की छुट्टियों में युवाओं व बालकों को नैतिक/धार्मिक संस्कार देने के

लिए 8 दिन का आवासीय जैनत्व जागरण शिविर आयोजित किया जाये। अभी छुट्टियाँ होने में 2 माह का समय है। यदि आप दोनों की सहमति हो तो हम आज ही रात में स्वाध्याय के बाद सबके सामने शिविर की योजना रखते हैं। यदि सभी की सहमति – सहयोग होगा तो शिविर आयोजित करेंगे।''

''हमारी तो सहमति ही है। इतने अच्छे काम में असहमति की तो बात ही नहीं है।'' बालचन्दजी ने कहा।

''मेरी भी सहमति है, शिविर में जो भी व्यय होगा – उसकी व्यवस्था हमारे परिवार की ओर से रहेगी। स्वयं मेरा पूरा परिवार शिविर का लाभ भी लेगा। आप आज सभी के बीच अवश्य ही चर्चा कीजिये। सभी की सहमति व सहयोग हो तो बहुत अच्छा!! यदि न भी हो तो भी आप चिंता न करें; मेरा व बालचन्दजी का पूरा परिवार लगकर सभी व्यवस्थायें जुटा देगा। बस विद्वानों की व्यवस्था आप करवा दीजियेगा।''

पण्डितजी भावुक होते हुये बोले ''लालचन्दजी आपने अपनी सहमति व अर्थ सहयोग की स्वीकृति देकर तो हमारा काम बहुत हल्का कर दिया है। अब तो काम होकर ही रहेगा। धर्म–प्रचार की आपकी यह भावना, आपको अवश्य ही जिनवाणी समझने व समताभाव पूर्वक देह छोड़ने में सहायक होगी।''

''पण्डितजी! मुझे जबसे आपके प्रवचन सुनकर आत्महित की लगन लगी है, तब से यही चिंता सता रही थी कि मेरे बच्चों और पोतों को भी यह आत्महितकर तत्त्वज्ञान समझ में आने लगे यह कैसे संभव होगा? यह प्रश्न सदा ही बना रहता था; जिसका समाधान आपने दे दिया; मानो आपने, मेरे परिवार के लिए ही यह योजना सोची हो। विमला तो इस बात को सुनकर बहुत ही खुश होगी।'' लालचन्दजी ने प्रमुदित होते हुये अपने विचार रखे।

सभी आगामी शिविर की चर्चा करते हुये प्रमुदित मन से स्वाध्याय में आने के लिए अपने–अपने घर की ओर चल दिये।

रात्रि में प्रवचन के बाद पण्डितजी ने सभी के बीच सुझाव रखा –

"बंधुओ! आज हम देख रहे हैं कि समाज में बच्चे और युवा–युवती धर्म से दूर होते जा रहे हैं। मंदिर आने वालों की संख्या कम हो रही है। रात्रि भोजन का प्रचलन बढ़ रहा है। विजातीय विवाह हो रहे हैं, लड़के–लड़कियों का पहनावा, शील–विरुद्ध हो रहा है। युवा पीढ़ी होटलों और बोतलों की ओर बढ़ रही है। हमारा अहिंसामयी जिनशासन, वस्तुस्वरूप व आचार पद्धति की दृष्टि से पूर्णतः वैज्ञानिक है; परन्तु उसे हम आधुनिक शैली में उन तक पहुँचा नहीं पा रहे हैं।

इसके कई कारण हैं; पर मैं उन कारणों की चर्चा न करके 'अंधकार को क्यों धिक्कारें, आओ अब इक दीप जलायें' की भावना के अनुसार बस इतना ही कहना चाहूँगा कि हम 25 मई से 1 जून तक जैनत्व जागरण शिविर का आयोजन करें। जिसमें बालकों के लिए आवासीय शिविर हो अर्थात् एक ही स्थान पर सभी बच्चे रहें; जिससे उनमें परस्पर में परिचय व स्नेह बढ़ेगा। अपने बच्चे 8 दिन युवा विद्वानों के पास रहेंगे तो उनको देखकर भी बहुत कुछ सीखेंगे; साथ ही युवा वर्ग के लिए भी सुबह–शाम विशेष कक्षायें संचालित की जायेंगी।"

"पण्डितजी! आप जो सुझाव दे रहे हैं, वह तो अच्छा है; परन्तु बच्चे 10 महिने तो स्कूल में पढ़ते रहते हैं; जैसे–तैसे तो यह छुट्टी मिली, उसमें भी आप शिविर लगा दोगे तो बच्चे मामा के घर कब जायेंगे? या इसी समय तो तैराकी, नृत्य, कम्प्यूटर आदि की कक्षा चलती हैं तो फिर ये सब कब सीखेंगे? और उस समय गर्मी भी कितनी अधिक रहती है।

किसी को लू लग गई तो लेने के देने पड़ जायेंगे।'' एक अनियमित युवा श्रोता ने कहा।

''देखो भैया! जिन्हें केवल लौकिक शिक्षा व नाच–गान ही पसंद हैं; उनके लिये तो हम क्या कहें? पर जिन्हें केवल 25–50 वर्ष का नहीं; अगले भवों तक का भविष्य सुरक्षित रखना है, उन्हें तो धर्म की शिक्षा लेना ही होगी। हम साल भर बच्चों को स्कूल भेजते हैं, कोचिंग कराते हैं और अवकाश के दिनों में जो काम साल भर नहीं कर पाते ऐसे तैराकी, कम्प्यूटर, नाच–गान सिखाते हैं; पर भैया! मंदिर भी तो हमेशा नहीं जाते, पाठशाला भी तो नहीं जाते? अपने बच्चों के तन स्वस्थ रखने के लिए तैराकी, व्यायाम सिखाते हो; पर मन अच्छा नहीं हुआ, सोच सही नहीं हुई, नैतिक/धार्मिक संस्कार नहीं हुये तो सब कुछ होते हुये भी बच्चे तनाव का जीवन जियेंगे; इसलिये कैसे भी करके बच्चों को शिविर में जरूर भेजना चाहिये। **बच्चों को कार दो तो संस्कार भी दो, सम्पत्ति दो और सन्मति भी दो।**

और दूसरी बात साल भर ही गर्मी–सर्दी या बारिश तो होगी ही। जैसे व्यापारी यह सब होते हुये भी सावधानी रखकर काम करता है, काम करना बंद नहीं कर देता; उसी तरह हम भी पूरा ध्यान रखेंगे कि बच्चों को कोई परेशानी न हो, उनकी सुविधाओं का पूरा ध्यान रखा जायेगा। इसके बाद भी यदि किसी को कुछ हो जायेगा तो भैया! क्या घर में रहते या मामा के घर जाते लू नहीं लग सकती? इसलिये व्यर्थ की चिंता छोड़ो और अपने बच्चों को शिविर में अवश्य भेजने की भावना रखो।

इस शिविर का पूरा व्यय सेठ लालचन्दजी परिवार की ओर से रहेगा। बालचन्दजी ने भी तन–मन–धन से सहयोग करने का आश्वासन दिया है। आप सभी शिविर का लाभ लें और आवश्यक सहयोग भी

करें। यह व्यक्तिगत कार्य नहीं है; यह पूरी समाज का, समाज के द्वारा, समाज के लिए महान ज्ञानयज्ञ है।''

पण्डितजी द्वारा की गई इस घोषणा का सभी ने करतल ध्वनि से स्वागत करते हुये सहयोग करने व लाभ लेने का आश्वासन दिया।

इतने में ही शाह स्वरूपचन्द ने हँसते हुये कहा ''शिविर में बालक लाभ लेंगे - यह तो ठीक है; पर हम शिविर में क्या करेंगे? अब इस उमर में हम बड़े-बड़े लोग क्या पढ़ पायेंगे?''

''स्वरूपचन्दजी! जिनवाणी में बालक तीन तरह के बताये हैं। शरीर से बालक अर्थात् जो छोटे कद का है, आयु से बालक अर्थात् आपके पोते-पोतियाँ जो 10-15 वर्ष के हैं और तीसरे बुद्धि से बालक अर्थात् जो जो भी विषय नहीं जानते, उसे समझने के लिए बालक ही हैं। हमें इस उम्र तक धर्म का ज्ञान नहीं है तो हम धर्म समझने के लिए बालक ही हैं; भले ही हम व्यापार, राजनीति, समाजनीति में बड़े हो गये हों; इसलिए अपने को बालक समझकर ही हम शिविर में आएँ तो बहुत लाभ मिलेगा।'' पण्डितजी ने मुस्कराते हुये जवाब दिया। ○○○

चलो किनारा करते हैं

जग दिखलाता अपनापन है, बिन आतम के केवल तन है।
स्वारथ के सब सगे यहाँ पर, सब अपने में ही रहते हैं।।
चलो किनारा करते हैं।।1।
धन पद यश पाने के खातिर, लोग न जीते जीवन जी भर।
और और की ही चिंता में, नृप अरु रंक सभी रहते हैं।।
चलो किनारा करते हैं।।2।
पर हित हेतु जीवन बीता, नहीं भरा वह, मैं भी रीता।
तुम अपने में, मैं अपने में, आओ अब हम रहते हैं।।
चलो किनारा करते हैं।।3।।

10

जैनत्व जागरण शिविर अभूतपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न हुआ इतना ही नहीं जो स्वरूपचन्दजी शिविर में आने को तैयार नहीं थे; वे ही अगले वर्ष के शिविर के लिए आयोजक बन गये।

शिविर में 300 बालक–बालिकाओं ने और 50 दंपतियों ने भाग लिया। सभी ने अगले वर्ष शिविर में उपस्थित होने एवं सदस्य संख्या बढ़ाने के लिए आश्वासन दिया। मंदिर में दर्शन/प्रक्षाल/पूजन/स्वाध्याय करने वालों की संख्या में वृद्धि हुई।

इस तरह पण्डित ज्ञानचन्दजी व सेठ लालचन्दजी की भावना सफल ही नहीं, सार्थक भी हुई थी। सेठ लालचन्दजी के बेटे–बहुओं ने तो पूरा लाभ लिया ही था; साथ ही उनके पोते चिरंतन व अन्वय तथा पोती सुयशा व अन्वया ने भी सभी कक्षाओं में रुचिपूर्वक भाग लिया था।

विद्यालय में अभी अवकाश चल रहे थे। चिरंतन, सुयशा, अन्वया व अन्वय छुपाछुपी का खेल खेल रहे थे। दौड़ भाग करते हुये सुयशा गिर गई व उसके कोहनी और घुटना छिल जाने से खून बहने लगा; जिसे देखकर वह जोर से रोने लगी। दादा–दादी उसे उठाने आते कि इतने में ही उसे रोते देखकर सबसे छोटा अन्वय बोला "दीदी ! आप क्यों रो रही हो ?"

रोते हुये सुयशा गुस्से में बोली "रो क्यों रही हो ? अंधा कहीं का ? तुझे दिख नहीं रहा कि मुझे कितनी चोट लग गई ? जिससे खून निकल रहा है तो रोऊँगी नहीं तो क्या हँसूँगी ?"

सेठ लालचन्दजी व विमलादेवी बच्चों की बातें गौर से सुनने लगे।

"दीदी आत्मा का तो खून होता ही नहीं। शिविर में भैयाजी ने मुझे

पढ़ाया था – हम जीव हैं, हममें ज्ञान तो है; पर हड्डी, खून नहीं हैं, वे तो पुद्गल हैं, अजीव हैं।'' अन्वय ने भोलेपन से कहा।

यह सुनकर अन्वया ने कहा – ''हाँ! मुझे भी दीदी ने पढ़ाया था कि – शुद्धातम है मेरा नाम, मात्र जानना मेरा काम।''

अन्वय और अन्वया की बात सुनकर और शिविर की चर्चा याद आते ही सुयशा हँसते हुये दर्द भूलकर फिर से खेलने के लिए तैयार हुई, पर खड़े होते ही घुटने में दर्द होने से 'उइ माँ' चिल्लाती हुई रोते हुये बैठ गई और चिरंतन से बोली ''भैया! जब चोट शरीर को लगी है और खून भी शरीर से निकल रहा है; आत्मा में खून है ही नहीं तो फिर मुझे दर्द क्यों हो रहा है?''

''देखो सुयशा! शिविर में तो जितना तुम्हें पढ़ाया, मुझे भी उतना ही पढ़ाया है – इससे आगे का पता नहीं! चलो दादी के पास चलते हैं, उनसे ही पूँछते हैं।''

चिरन्तन, सुयशा का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे दादा-दादी के पास पहुँचा, उनके साथ ही अन्वया और अन्वय भी गंभीर मुद्रा में वहीं जाकर बैठ गये।

''देखिए दादी! सुयशा को खेलते में चोट लग गई, इसे खून निकल रहा है; अब आप ही सम्हालिये।'' चिरन्तन ने कहा।

विमला देवी सुयशा को अपने पास बैठाते हुये बोली ''ओहो! मेरी गुड़िया रानी को कितनी चोट लग गई, खून भी निकल रहा है। चिरंतन जाओ हॉल में सीढ़ी के नीचे अलमारी में से रुई और डिटॉल ले आओ।''

''दादी! आप गलत बोल रही हैं कि दीदी को चोट लग गई है। दीदी तो जीव हैं। जीव को तो कोई छू भी नहीं सकता। खून तो शरीर में से निकल रहा है और शरीर तो अजीव है।'' अन्वय ने कहा।

विमलादेवी हँसते हुये बोलीं ''हाँ मेरे राजा बेटे! आप सही कह रहे

हो। लगी तो शरीर को है, खून भी अजीव है और हम तो आत्मा हैं। कितनी अच्छी बातें मेरे राजा बेटा ने शिविर में सीख ली हैं।''

''पर दादी मुझे दर्द हो रहा है। यदि शरीर को चोट लगी है तो मुझे दर्द क्यों हो रहा है?'' रोते हुये सुयशा ने पूँछा।

इतने में चिरन्तन रुई और डिटॉल लेकर आ गया। लालचन्द जी रुई में डिटॉल लेकर धीरे-धीरे फूँक मारते हुये सुयशा को लगाने लगे और विमलादेवी कहने लगीं'' अच्छा सुयशा! यह बताओ कि तुम्हारी शर्ट और तुम अलग-अलग हो या एक?''

''शर्ट और सुयशा दीदी तो अलग-अलग ही हैं, दीदी यहाँ है और शर्ट तो दीदी के कमरे में है।'' अन्वय बीच में ही बोल पड़ा।

''अच्छा अन्वय! तो तुम्हीं बताओ कि यदि तुम्हारी शर्ट बंदर फाड़े तो तुम्हें कैसा लगेगा?''

''नहीं दादी; बंदर मेरी नहीं, सुयशा दीदी की शर्ट फाड़ेगा, मैंने तो अपनी अलमारी में रख दी है।'' अन्वय ने भोलेपन से कहा जिसे सुनकर सभी हँसने लगे।

''हाँ बाबा! यदि बंदर सुयशा दीदी की शर्ट फाड़े तो तुम्हें कैसा लगेगा?''

''सुयशा की शर्ट फाड़े तो मुझे तो मजा आयेगा।'' हँसते हुये अन्वय ने कहा। ''पर दादी! दीदी तो रोने लग जायेंगी न! इसलिये उनकी शर्ट भी बंदर न फाड़े।'' अन्वय ने सुयशा दीदी के प्रति अपनापन दिखाते हुये कहा।

''हाँ हाँ! किसी की शर्ट बंदर नहीं फाड़ेगा; पर चिरंतन तुम बताओ कि अन्वय ने ऐसा क्यों कहा कि सुयशा की शर्ट बंदर फाड़ेगा तो उसे बुरा नहीं लगेगा; पर सुयशा रोयेगी; जबकि शर्ट और अन्वय हो या सुयशा - दोनों ही अलग-अलग हैं।''

चिरन्तन ने सोचते हुये जवाब दिया ''दादी! अन्वय, सुयशा की शर्ट को अपनी नहीं मानता, इसलिये उसे बुरा नहीं लगेगा; पर सुयशा उस शर्ट को अपना मानती है; इसलिए उसे बुरा लगेगा।''

''बिल्कुल सही जवाब है। बस बेटा! इसी तरह हम और शरीर अलग-अलग हैं; पर जन्म से लेकर इस शरीर को हम अपना मानते हैं, यही मैं हूँ; ऐसा मानते हैं, इसलिए शरीर को चोट लगने पर भी यह चोट हमें लगी – ऐसा मानते हैं तो हमें दु:ख होता है। जब हम ऐसे ही शिविरों में जाते हैं, स्वाध्याय करते हैं तो ज्यों-ज्यों शरीर में अपनापन कम होता जाता है, त्यों-त्यों हमें दु:ख होना कम होने लगता है।'' लालचन्दजी ने समझाया।

''दादाजी! क्या ऐसा कभी हो सकता है कि शरीर से अपनापन कम हो जाये और हमें शरीर में रहते हुये शरीर में बीमारी आने या चोट लगने पर दु:ख न हो?'' अन्वया ने दादाजी से पूछा।

''हाँ बेटा! हो सकता है। याद करो शिविर में भैयाजी ने पार्श्वनाथ मुनिराज व गुरुदत्त मुनिराज की कहानी सुनाई थीं न!! उनके ऊपर कितने उपसर्ग हुये, पर वे दु:खी नहीं हुये; क्योंकि वे शरीर में रहते हुये भी शरीर से भिन्न अपने आपको आत्मा ही मानते थे। हम अभी शिविर में तो पढ़ चुके; पर अभी शरीर और आत्मा को एक मानते हैं; इसलिए हमें दु:ख होता है।''

''सुयशा! समझ में आ गया कि जीव व शरीर अलग होने पर भी हमें दु:ख क्यों हो रहा है।'' चिरंतन ने कहा।

''हाँ! समझ में आ गया। चलो अब खेलने चलते हैं।'' बच्चे हँसते हुये दौड़ पड़े और दादा-दादी इस बाल-सुलभ लीला को देख/सुनकर प्रमुदित हो गये।

○○○

11

सागर के साधर्मियों के घर-घर में इसी तरह का माहौल बना हुआ था। सचिन और राजीव भी शिविर के बाद से भले ही देर से पहुँचें पर दुकान बन्द करके सीधे स्वाध्याय में पहुँच जाते थे।

सेठ लालचन्दजी के घर पर रात को 9 बजे बच्चे टी.व्ही. पर तारक मेहता का उलटा चश्मा देख रहे थे। तभी स्वाध्याय सभा से लालचन्दजी, विमलादेवी के साथ ही सचिन, राजीव, सरिता व अनीशा घर में आये और सभी हॉल में साथ ही बैठ गये। बच्चे समझदारी दिखाते हुये सभी को जय जिनेन्द्र कहकर टी.व्ही. बंद करके दादा-दादी के पास बैठ गये।

परिवार में अन्वय सबसे छोटा और चंचल था; अतः सभी का लाड़ला भी था। लालचन्दजी ने अन्वय को छेड़ते हुये कहा "क्यों अन्वय! शिविर में जाकर भी तुमने टी.व्ही. देखना नहीं छोड़ा।"

"दादाजी! टी.व्ही. तो आप सब भी देख रहे हो।"

"हम कब टी.व्ही. देखते हैं? मुझे और तुम्हारी दादी को तो टी.व्ही. देखे हुये वर्षों हो गये। तुमने कब देखा हमें टी.व्ही. देखते हुये?" लालचन्दजी ने विस्मयपूर्वक पूछा।

"आप और दादी अभी भी ही तो टी.व्ही. देख रहे हैं और कह रहे हैं कि वर्षों से नहीं देखा।"

"आज, आज तुमने दादा-दादी को टी.व्ही. देखते हुये कब देख लिया।" सचिन ने गुस्से से पूछा।

"ताऊजी! आप गुस्सा न हों मैंने ही नहीं; आपने भी दादा-दादी को टी.व्ही. देखते देखा है। देखा क्या है हम सब देख रहे हैं कि यह टी.व्ही.

है और देखो दादा-दादी भी इसे देख रहे हैं कि नहीं?" अन्वय ताली बजाकर हँसने लगा; जिसे देखकर सभी हँसने लगे।

"अरे वाह! मैं तो समझ रहा था मैं ही होशियार हूँ; पर तू तो सच में मेरा ही पोता निकला। बेटा! मैं तो यह पूछ रहा था कि सीरियल देखना नहीं छोड़ा।" लालचन्दजी ने हँसी छुपाते हुये कहा।

"दादाजी! हम जो सीरियल देखते हैं न, उसमें हमें वह मिलता है, जो आप हमें देना चाहते हैं।"

"हम तुम्हें क्या देना चाहते हैं?"

"अरे वो कोई कार देना चाहते हैं न।"

"कार?"

"अरे दादाजी! अन्वय संस्कार की बात कर रहा है।" चिरंतन ने कहा।

"हाँ हाँ वही संस्कार।" अन्वय की बात सुनकर एक बार फिर सभी ठहाका लगाकर हँस पड़े।

विमलादेवी ने पूछा "बेटा! इस सीरियल में क्या संस्कार सीखने मिलते हैं।"

"दादी! इसमें जय जिनेन्द्र करना सिखाते हैं। माता-पिता और दादाजी का आदर करना सिखाते हैं।"

सरिता ने पूछा "बेटा आपने कहा दादाजी का आदर करना सिखाते हैं, तो क्या दादी का आदर करना नहीं सिखाते?"

"ओफ्हो ताईजी! इस सीरियल में तो दादी है ही नहीं, टप्पू की दादी तो मर गई तो दादी का आदर करना कैसे सिखा सकते हैं?" अन्वय के इस भोलेपन पर एक बार फिर हँसी का माहौल हो गया।

''बच्चो ! आपको जो भैयाजी और दीदी पढ़ाने आई थीं; वे आपको कैसे लगे ?'' लालचन्दजी ने अब विषय बदलते हुये जरा गंभीरता से पूछा।

''दादाजी ! हमें तो प्रज्ञा दीदी बहुत ही अच्छीं लगीं। वे बहुत अच्छी कहानी सुनाती थीं और अच्छी-अच्छी कवितायें भी सिखाती थीं, एक कविता तो मुझे अभी भी याद है, मैं कविता सुनाऊँ।'' अन्वया ने कहा।

''हाँ-हाँ सुनाओ।'' विमलादेवी उत्साहपूर्वक बोलीं।

''इक जंगल में इक मुनिराज, वहाँ पर आया इक वनराज।
वनराज ने मुनिराज पर, करना चाहा था उपसर्ग।
तभी सुअर आ गया वहाँ पर, बोला कौन करे उपसर्ग ?
दोनों में झगड़ा हो आया, मुनिराज ने ध्यान लगाया।
क्रिया एक सी सिंह सुअर की, परिणामों में किन्तु फेर।
सुअर गया है स्वर्ग में देखो, और नरक में पापी शेर।।
मुनिराज तो ध्यान लगाकर, सिद्धालय में चले गये।
निज परिणामों का फल मिलता, तीनों ही यह सिखा गये।।
हम भी निज परिणाम सुधारें, सब सिद्धालय में जाय पधारें।''

अन्वया ने उत्साहपूर्वक कविता सुनाई। सभी ने जोरदार तालियाँ बजाकर उसका उत्साह बढ़ाया और लालचन्दजी ने उसे गोद में उठा लिया।

''मुझे भी प्रज्ञा दीदी और शालिनी दीदी अच्छी लगीं। उन्होंने अपने भगवान के बारे में बहुत अच्छा समझाया था कि वे वीतरागी-सर्वज्ञ-अकर्ता हैं। वे किसी को कुछ देते नहीं हैं और किसी से कुछ लेते भी नहीं हैं। **वे हमें सुख की भीख नहीं, सुखी होने की सीख देते हैं।**'' सुयशा ने कहा।

''और चिरंतन तुम्हें कैसा लगा शिविर में ?''

"दादाजी ! मुझे तो तपिश भैया की कक्षा बहुत ही रोचक व ज्ञानवर्धक लगी। ऐसे शिविर हमेशा लगते रहें तो समझो हमारी किस्मत ही खुल गई।" चिरन्तन ने कहा।

"बच्चो ! मैं चाहता हूँ कि चिरन्तन इस वर्ष कक्षा 10वीं करके.... सुयशा कक्षा 7वीं पास करके....और अन्वया कक्षा 5 पास करके विद्यास्थली आगे पढ़ने के लिए जाओ। तुम्हें वहाँ लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी मिलेगी और तुम भी वहाँ पढ़कर तपिश भैया, प्रज्ञा दीदी, शालिनी दीदी जैसे होशियार बन जाओगे। सचिन-राजीव ! तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"बाबूजी ! आपने तो मानो मेरे मन की ही बात कह दी है। शिविर में जब मैंने भैयाओं को कक्षा-प्रवचन लेते देखा-सुना; तब से मेरे मन में बार-बार आता था कि काश ! चिरन्तन भी कभी इसी तरह जिनवाणी पढ़े-पढ़ाये तो हमारा कितना भाग्य होगा। हमारी तो इच्छा है कि चिरन्तन शास्त्री ही करे। बाबूजी-मम्मीजी ! आपके आशीर्वाद से घर में कोई कमी तो है ही नहीं और यदि दुर्भाग्य से कुछ कमी आ भी जाये तो धर्मज्ञान के सामने उसकी क्या कीमत है ?" सचिन ने राजीव की ओर देखते हुये अपनी बात पूरी की। राजीव की मुद्रा से लग रहा था कि शायद वह बाबूजी और सचिन की बात से पूरी तरह सहमत नहीं है।

"दादाजी ! वहाँ तो शास्त्री की पढ़ाई होती है; पर मैं तो सी.ए. बनना चाहता हूँ।" चिरन्तन ने अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुये कहा।

"देखो बेटा ! अपना भव सुधारने के लिए अपने भावों का लेखा-जोखा करना जरूरी है, जो कि शास्त्री करने से आसानी से किया जा सकता है। सागर कोई छोटा शहर नहीं है, अपना व्यवसाय भी अच्छा चल रहा है, तुम शास्त्री करके आना और पापा-चाचा के साथ बैठकर व्यवसाय में हाथ बँटाना और दादा-दादी का मरण समाधिपूर्वक हो;

इसलिए सुबह-शाम स्वाध्याय कराना। देखो बेटा! हमने तो अपने मन की बात कही है। फिर जैसी तुम सबकी इच्छा।''

''दादाजी! मैं और मेरे मित्र कॉमर्स विषय लेकर पढ़ना चाहते हैं। मुझे धर्म अच्छा लग रहा है; पर मैंने शास्त्री करने के बारे में कभी सोचा ही नहीं। मुझे कुछ सोचने व भैया लोगों से पूरी बात समझने का समय दीजिये।'' चिरन्तन ने विनम्रतापूर्वक कहा।

''हाँ! हाँ! क्यों नहीं? तुम तपिश भैया, सनत भैया या जिससे भी बात करना चाहो, करो; संस्थान देखने चलना हो तो भी हम साथ चल सकते हैं, जब तुम्हारा पूरा मन भर जाये तभी हाँ कहना।''

''ठीक है दादाजी।''

सभी जय जिनेन्द्र कहते हुये अपने-अपने कमरे में चले गये।

अनीशा कमरे में आते ही राजीव से कहने लगी, आज तो बाबूजी ने अच्छी दादागिरी की बात कही कि वे जहाँ कहेंगे वहीं पढ़ने जाना होगा। मेरी छोटी सी अन्वया घर के बाहर अकेले कैसे रह सकती है? आप बाबूजी को समझा देना; मैं तो अन्वया के बिना नहीं रह सकती। नहीं तो अच्छा नहीं होगा।''

''अच्छा नहीं होगा का क्या मतलब? तुम धमकी दे रही हो।''

''धमकी की बात नहीं है। मैं भी बाबूजी की इज्जत करती हूँ। हमें भी मंदिर जाना अच्छा लगता है, स्वाध्याय अच्छा लगता है, रोजाना प्रवचन में जाते ही हैं, सरिता दीदी के साथ भी हम चर्चा करते हैं; पर बच्चों को बाहर भेजने की बात तो मुझे पसन्द नहीं आ रही। लोग क्या कहेंगे कि क्या हमारे घर में कोई कमी थी या बच्चे पढ़ने में कमजोर हैं जो संस्थानों में भेज दिया।''

''देखो! लोग क्या कहेंगे? इसका जवाब मेरे पास नहीं है। वहाँ जाने से क्या लाभ है? यह भी मुझे अच्छे से नहीं पता; पर हमने भेजने से मना किया तो बाबूजी को कैसा लगेगा? इसका मुझे जरूर आभास है।''

''बाबूजी भी पहले स्वाध्याय में नहीं जाते थे; पर अब दुकान पर आना-जाना बंद कर दिया तो दिन भर ज्ञानचन्दजी व ज्ञान की ही बातें करने लगे हैं। उन्हें यही बातें करना हैं तो वे करें, हमें क्या दिक्कत है? उन्हें तो और ज्यादा यही काम करना हो और शान्ति से रहना हो तो सुखायतन चले जायें; पर मैं कहे दे रही हूँ कि मैं अन्वया को बाहर नहीं भेजूँगी। दूध पीती बच्ची को अपने से दूर नहीं करूँगी। बाबूजी को आप कैसे समझा सकते हो वह आप देख लो; नहीं तो कहे देती हूँ मेरे से बुरा कोई नहीं होगा।'' गुस्से में आँखों से आग बरसाते हुये अनीशा ने कहा।

''तुमसे बुरा कोई नहीं होगा - यह भविष्य काल की बात क्यों कर रही हो; तुमसे बुरा तो वर्तमान में ही कोई नहीं है।'' राजीव ने मजाक करते हुये कहा।

''आपको मजाक सूझ रही है; यहाँ मेरे दिल पर क्या बीत रही है? क्या-क्या विचार आने लगे हैं - यह मैं आपको बता नहीं सकती। 15 दिन बाद ही तो नये एडमीशन होने वाले हैं। यदि बाबूजी अपनी जिद पर अड़ गये तो क्या होगा?''

''और मैं सोच रहा हूँ कि यदि तुम और बाबूजी दोनों ही जिद पर अड़ गये तो मेरा क्या होगा?'' राजीव ने माहौल को हल्का बनाने के लिए हँसते हुये कहा।

''आपको फिर मजाक सूझ रही है। मेरी तो किस्मत ही खराब है। मेरी बात को आप समझ ही नहीं रहे हैं।''

''मैं सब समझ रहा हूँ। बाबूजी ने अपनी बात कही है; यह तो नहीं

कि जाना ही है। यदि कुछ कहना है तो उनसे ही कहो न। मुझसे कहने से क्या फायदा?''

''मैंने तो आपको अपना निर्णय बता दिया, अब आप अपने बाबूजी को समझा लेना बस।''

''अब बाबूजी भी मेरे हो गये, तुम्हारे नहीं हैं। अपने बच्चों के मोह में पड़कर तुम क्या बोलने लगी हो?'' नाराजगी व्यक्त करते हुये राजीव ने कहा।

''मेरी इच्छा के अनुसार बाबूजी निर्णय करेंगे तो मेरे बाबूजी होंगे, मैं उनकी सेवा करूँगी, मैं उन्हें जिनवाणी सुनाऊँगी। नहीं तो बस...'' मुँह बिगाड़ते हुये, कपड़े बदलकर गुस्से में ही अनीशा सोने चली गई।

''हे भगवान! इन औरतों को कौन समझाये। प्रभो सद्बुद्धि देना'' राजीव हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा।

तेजी से करवट बदलते हुये अनीशा बोली – ''अच्छा तो मैं दुर्बुद्धि हूँ, मुझे सद्बुद्धि देने की भगवान से प्रार्थना की जा रही है।''

''अरे नहीं डार्लिंग! तुम तो सद्बुद्धि का भण्डार हो। मैं तो अपने लिए माँग रहा था, जिससे सुबह बाबूजी के साथ सही ढ़ंग से बात कर सकूँ। तुम टेन्शन मत लो चुपचाप सो जाओ।'' चादर से मुँह ढ़ँककर मुस्कराते हुये राजीव लेट गया।

उधर दूसरे कमरे में सरिता, सचिन के कमरे में आते ही बोली ''क्योंजी! आपको स्वाध्याय में आते हुये कितने दिन हो गये?''

''हे भागवान! मुझे कितने ही दिन हुये हों; पर मैं परीक्षा देने के लिए तैयार नहीं हूँ?''

''मैं परीक्षा नहीं ले रही हूँ।''

''फिर क्यों पूछ रही हो?''

''आप बताओ तो।'' सरिता ने कठोर लहजे में ही कहा।

आज तो बादल बरसने वाले हैं – ऐसा सोचकर सचिन ने सरलता से ही कहा ''मैं तो शिविर के बाद से 15 दिन से ही जा रहा हूँ; पर तुम तो वर्षों से जा रही हो, इसलिये पण्डिताइन तो तुम्हीं हो। देखो! मुझसे कोई प्रश्न मत पूँछना।''

''प्रश्न तो नहीं पूँछूँगी पर इतना जरूर पूँछूँगी कि 15 दिन के ही प्रवचन में आपको अपने बेटे को प्रवचनकार बनाने का मन में आने लग गया। आप ध्यान रखना मेरा बेटा सी.ए. ही बनेगा। उसे नहीं बनना शास्त्री-वास्त्री। बाबूजी को कुछ ज्यादा प्रवचन सुनना हों तो मैं सुना दूँगी या फिर एक पण्डित को घर पर ही रख लेवें, वह दिन भर प्रवचन सुनाता रहेगा।'' सरिता ने गुस्से में कहा।

''सरिता! मैंने कभी पढ़ा था कि मोह अधोगामी होता है, वह नीचे की ओर बहता है। तुम्हारा मोह भी तुम्हारे बेटे की ओर जा रहा है; ऊर्ध्वगामी अर्थात् बाबूजी की ओर नहीं। तुम्हें क्या लगता है बाबूजी! बच्चों के बारे में सही नहीं सोच रहे हैं? उन्होंने बिना समझदारी के ही इतना व्यापार बढ़ाया, हमें पढ़ाया-लिखाया; अब वे समझदार नहीं हैं?''

''मैं यह कुछ नहीं जानती; पर मेरे बेटे का निर्णय मैं करूँगी। हर कोई मेरे बेटे के बारे में निर्णय नहीं करेगा।''

''मेरा बेटा! हर कोई। यह क्या बोल रही हो सरिता। जवान सम्हाल कर बात करो, नहीं तो ठीक नहीं होगा। बेटा तुम्हारा ही है, मेरा व बाबूजी का कुछ नहीं। बाबूजी अब, हर कोई हो गये।'' सचिन ने गुस्से में कहा।

''हाँ-हाँ अब डाँटने लग जाओ, मन करे तो हाथ उठा लो; पर एक

माँ की भावना को, आप क्या समझो? आप सब तो निष्ठुर हो गये हैं। बस कह रही हूँ कि मुझे नहीं भेजना अपने बेटे को।" सरिता करवट बदलकर रोते हुये चुपचाप लेट गई।

सचिन समझ नहीं पा रहा था कि सरिता को कैसे समझाया जाये? साथ ही यह भी नहीं समझ पा रहा था कि रोजाना स्वाध्याय करने वाले भी जब अपने बच्चों के मोह में उनको जैनदर्शन पढ़ने नहीं भेजना चाहते तो अन्य की सोच तो कैसी होती होगी? यह तो ऐसी ही बात हो गई कि हर घर में भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद पैदा होना चाहिये; बस मेरा घर छोड़कर।

जिन्होंने अपने बच्चे वहाँ भेजे हैं, जो आज पढ़कर शिविर में पढ़ाने आये हैं, कुछ युवा विद्वान गाँव में स्वाध्याय करा रहे हैं; वे और उनके माता-पिता सच में ही कितने भाग्यशाली हैं। उनके प्रति तो हमें आभारी होना ही चाहिये; पर आभार मात्र से तो काम नहीं चलेगा, हमें भी तो इस क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहिये। **वास्तव में ही ममता का विष कितना जहरीला है। इस विष के प्रभाव से ही सुकमाल और सुकौशल मुनिराज पर उपसर्ग हुये थे।** तब हम तो साधारण माता-पिता हैं।

ग्रीष्मकाल की गर्मी तो थी ही; पर आज दोनों ही कमरों में टेम्प्रेचर कुछ ज्यादा ही हो गर्म हो गया था। रात बीतने पर बात भी बीत जायेगी - यही सोचकर सचिन भी चुपचाप सोने की कोशिश करने लगा।

प्रातः 3.30 बजे सरिता घबराहट में उठकर सचिन को झकझोर कर उठाते हुये जगाने लगी - "अजी सुनते हो, उठो न, क्या घोड़े बेंचकर सो रहे हो।"

"अरे भई क्या हुआ जो इतनी सुबह-सुबह जगा रही हो, चैन से सोने भी नहीं देती हो, तुम्हें तो दिन भर घर पर ही रहना है, कभी भी

आराम कर लोगी; पर हमें तो दिन भर दुकान पर रहना है। तुम्हें जो भी बात करना हो, बाबूजी से करना, मुझे परेशान मत करो।''

''अरे वह बात नहीं है।'' सरिता ने नीची गर्दन किये हुये ही कहा।

''फिर क्या बात है ? जो इतनी सुबह जगाकर ही बताना जरूरी है।''

''मैं अभी-अभी एक स्वप्न देख रही थी, जिससे में डर गई।''

''क्यों क्या देख लिया स्वप्न में ? क्या बाबूजी ने जबरदस्ती चिरंतन का प्रवेश संस्थान में करा दिया, जिसे देखकर तुम डर गई। सो जाओ, अभी रात को एडमीशन नहीं होता। सुबह मैं बाबूजी को कह दूँगा कि चिरंतन को हमें नहीं कराना शास्त्री। बस राजी! अब मुझे सोने दो।''

''अरे यह बात नहीं है। चिरंतन का एडमीशन तो जहाँ होना होगा, वहाँ हो जायेगा। मैं रात को पता नहीं क्या-क्या बोल गई। मोह की महिमा ही विचित्र है। हे जिनवाणी! माँ मुझे माफ करना। बाबूजी के इतने पवित्र भावों को मैंने गलत समझा और ऊल-जलूल कह गई।''

''अच्छा तो क्या जिनवाणी के प्रति अपमान के भाव से तुम स्वप्न में नरक पहुँच गई व वहाँ डंडे पड़े तो जाग गईं; इसलिए माफी माँगने लग गईं।''

''आप तो मेरी मजाक उड़ा लो। पर मेरी बात जरा ध्यान से तो सुन लो।''

''चलो सुना ही दो। अब नींद तो आ नहीं रही।''

''मैंने स्वप्न में देखा कि मेरी जिद के कारण चिरंतन जैनदर्शन न पढ़कर कॉमर्स लेकर ही पढ़ने लगा और 6 साल बाद सी.ए. बनकर आ गया। अब वह अपने काम में इतना व्यस्त और मस्त हो गया कि उसे मंदिर जाने का समय ही मुश्किल से मिल पा रहा है। स्वाध्याय में जाने की तो बात ही दूर रही। चिरंतन भी प्रतिदिन दूसरों के लाभ-हानि के

चिंतन में ही लगा रहता; कैसे दूसरों की दो नंबर की कमाई को एक नंबर में दिखाया जा सकता है; इसी उलटफेर में लगा रहता।

अपने भावों की ओर तो देखने का मौका ही नहीं मिलता। एक दिन बाबूजी ने कहा कि बेटा चिरंतन! आज मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। मुझे यहीं स्वाध्याय सुना दे तो मालूम चिरंतन ने क्या कहा?''

''क्या कहा?''

उसने कहा ''दादाजी मेरे पास आज समय नहीं है और मैंने जिनवाणी पढ़ी भी नहीं है, जो मैं आपको कुछ सुना सकूँ? आप मम्मी को स्वाध्याय सुनाने का कह दीजियेगा।''

''चिरंतन की सहजता से कही गई पर दुःखद बात सुनकर बाबूजी की आँखों में आँसू आ गये। मुझे भी यह सुनकर अच्छा नहीं लगा। थोड़े ही देर में बाबूजी ने मम्मीजी से कहा ''विमला! अब मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता। यदि तुम्हारी सहमति हो तो चलो सुखायतन चलते हैं; वहाँ साधर्मियों के साथ रहकर आनंदमय जीवन जियेंगे। जब घर की याद आ जायेगी तब आ जाया करेंगे।''

बाबूजी की यह बात सुनकर मुझे जोर से रोना आ गया। अरे मैंने यह क्या कर डाला? मैंने अपने परम हितैषी पितृतुल्य बाबूजी की बात न मानकर अपने मोह के खातिर बेटे को उनकी इच्छा के अनुसार अध्ययन नहीं कराया, जिसके कारण वे दुःखी हो गये और घर छोड़ने का सोचने लगे। धिक्कार है मेरी मति को। इतना विचार आते ही मेरी नींद खुल गई।''

''आपकी नींद खुल गई और मेरी जबरदस्ती खोल दी।''

''मेरी नींद! लगता है सच में ही खुल रही है। मैं मोह की नींद से जागना चाह रही हूँ। मैं तो बाबूजी की इच्छा के अनुसार अपने दोनों

बच्चों को तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार की मुख्यता से जहाँ शिक्षण होता हो, वहीं भेजूँगी। मैंने बाबूजी की भावना के विरुद्ध सोचा; इसके लिए सुबह मैं उनसे क्षमायाचना कर लूँगी। मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण किसी का श्रद्धान–ज्ञान–आचरण जिनवाणी के विरुद्ध हो। इस बेशकीमती मानव जीवन का उपयोग जिनवाणी की आराधनापूर्वक अपने जीवत्व को जानने में ही है।''

''सरिता की भावपूर्ण बातों को सुनकर सचिन ने उसे गले लगाते हुये कहा कि मेरी पण्डिताइन का पाण्डित्य कल कहाँ चला गया था?''

''कल अमावस्या थी न इसलिए ज्ञानप्रकाश छुप गया था, अब आज एकम्–तिथि है तो ज्ञान की प्रथम किरण जागृत हुई है।''

''यह ज्ञान किरण पूर्ण चन्द्र में प्रकट हो जाये – मेरी यही कामना है। मुझे विश्वास था कि तुम्हारा निर्णय अवश्य बदलेगा। अब अपने तो दोनों बच्चे बाबूजी की इच्छा के अनुसार संस्थान में प्रवेश लेंगे; पर अन्वया के लिए अनीशा राजी होगी कि नहीं?''

''यदि उसने मना किया तो मैं उसे भी समझाऊँगी। वह भी सरल है, मेरी बात नहीं टालेगी।''

''यदि ऐसा ही हुआ तो बाबूजी बहुत खुश हो जायेंगे।''

''अब आप थोड़ा आराम कर लीजिये, मैं तैयार होती हूँ। मैंने आपकी रात खराब कर दी।''

''सच में तो कल रात की बातों से रात तो खराब हो ही गई थी; पर तुम्हारे विचार न बदलते तो फिर दिन ही नहीं; जीवन भी खराब हो सकता था। अब तो वह सुबह आ रही है जो मंगलमय संदेशा लेकर आयेगी। फिर भी थोड़ा सो लेता हूँ, जिससे नींद में भविष्य के सुखद स्वप्न देख सकूँ।''

"हाँ हाँ आप सुखद स्वप्न देखो। मैं आपकी जीवन-संगिनी होने के नाते उन्हें साकार करने में सहयोग करूँगी।" इतना कहकर सरिता पंचपरमेष्ठी का स्मरण करने लगी, सचिन मुँह ढँककर सो गया।

सुबह होते ही सरिता व अनीशा का मिलन हुआ। अनीशा को देखते ही सरिता ने कहा – "अनीशा क्या तुम रातभर सोई नहीं? आँखें लाल हो रही हैं, मुँह पर सूजन भी है, तबियत तो सही है न?"

"दीदी! आँखें तो आपकी भी भारी-भारी लग रहीं हैं, क्या आप भी रात को नहीं सोई थीं?"

"अरे मेरी छोड़! तू तो अपनी बता।" सरिता ने बात टालते हुए कहा।

"दीदी! बात ही कल बाबूजी ने ऐसी छेड़ दी, जिससे मुझे लगता है मेरी ही नहीं; पूरे घर की ही नींद उड़ गई है।"

"अरे नहीं अनीशा! बाबूजी ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा; वे तो अपने हितैषी हैं। वे तो हमसे बेटी-समान व्यवहार करते हैं।"

"वह सब तो ठीक है दीदी! पर रात को आपके कमरे से भी आवाजें आ रहीं थीं और सुबह भी जल्दी ही लाइट जल गई थी; इसलिये आपमें व भाईसाहब में भी कुछ बातचीत तो हुई है?" अनीशा ने सरिता की आँखों में झाँकते हुये रहस्य जानने के लिए पूँछा।

"अरे नहीं री। कुछ भी बात नहीं हुई। रात गई तो बात गई। अँधेरे में कोई वस्तु साफ दिखाई नहीं देती; जब प्रकाश हो तो सब साफ दिख जाता है। मैं भी रात को अँधेरे में थी; अत: सही बात नहीं समझ पा रहा थी; पर सुबह होने से पहले ही ज्ञान किरण प्राप्त हो गई तो सही बात समझ में आ गई।"

"सही बात समझ में आ गई का क्या मतलब ? क्या आप चिरंतन व सुयशा को संस्थान में अध्ययन करने भेज देंगी।"

"यदि उन दोनों का वहाँ प्रवेश हो जाता है तो मैं तो अपना और बच्चों का सौभाग्य समझूँगी।"

"दीदी! आप भी पागलों जैसी बातें कर रही हो। अपने चिरंतन का कितना तेज दिमाग है; वह कॉमर्स पढ़ना चाहता है तो वही पढ़ने दो न। वह सी.ए. बन जायेगा। यहीं सागर में अपना ऑफिस खोल लेगा। अपने पास रहेगा। बाद में आपको शास्त्र पढ़ाना है तो स्वाध्याय में चला जायेगा। दीदी! मैं तो आपके इस निर्णय से सहमत नहीं हूँ।"

"तुम सहमत नहीं हो तो क्या तुम अन्वया को संस्थान में नहीं भेजना चाहती ?"

"नहीं दीदी! मुझे कोई पागल कुत्ते ने काटा है जो मैं उस दुधमुँही बच्ची को अपने से दूर भेजूँगी। मैं तो चिरंतन व सुयशा को भी मना कर रही हूँ। देखो दीदी! बाबूजी वर्तमान की परिस्थितियों व विषयों को, आज की पढ़ाई को नहीं जानते; उनकी बातों में आकर हमें अपने बच्चों का भविष्य दाव पर नहीं लगाना चाहिये। मेरा तो पक्का निर्णय है कि मैं अन्वया को बाहर नहीं भेजूँगी। मैंने इनको भी साफ कह दिया है कि वे इस संबंध में बाबूजी को समझा दें नहीं तो वह हो सकता है, जिसकी कल्पना हमने नहीं की है।"

इतना कहकर अनीशा अपने कमरे में चली गई। सरिता अनीशा की बात सुनकर सोच में पड़ गई कि अरे यह क्या हो रहा है ? क्या संयोग है कि मोहवश हम दोनों ने रात को एक जैसा ही सोचा; परन्तु मुझे तो मेरे स्वप्न में ही सही दिशा प्राप्त हो गई; पर यह तो जागते में भी तैयार नहीं है। यह तो अभी बहुत आवेश में है। अभी उससे अधिक कुछ कहा

नहीं जा सकता। बाद में समझाने का प्रयास करेंगे। यही सोचते हुये सरिता भी तैयार होने स्नानगृह में चली गई।

संयोगवश विमलादेवी ने सरिता और अनीशा के वार्तालाप के कुछ अंश सुन लिये; जिससे उन्होंने अनुमान लगा लिया कि कल रात में बच्चों को संस्थान में प्रवेश दिलाने संबंधी विषय पर बहुओं में द्वन्द्व मच गया है। उन्होंने संक्षेप में इस चर्चा का भाव लालचन्दजी को बताया। जिसे सुनकर लालचन्दजी किंचित् विचारमग्न हुये फिर बोले –

''कोई बात नहीं! जिसकी जैसी होनहार होगी, वही होगा। अपने कहने–करने से जब कुछ होता ही नहीं तब हम क्यों आकुलता करें ? चलो मंदिर चलते हैं।'' इतना कहकर दोनों मंदिर चले गये।

स्वाध्याय के बाद लालचन्दजी व विमलादेवी जब घर पर आये तब तक सचिन व राजीव भी दर्शन करके आ गये थे। ये दोनों सुबह के स्वाध्याय में नहीं जा पाते थे। सभी साथ में नाश्ता करने बैठे तभी चिरंतन ने विनम्रतापूर्वक लालचन्दजी से कहा – ''दादाजी! आपने रात में संस्थान में जाकर पढ़ने के लिए कहा था। मैंने अपने दोस्तों से बात की और मैंने भी रात को बहुत सोचा; पर दादाजी! मेरा मन संस्थान में जाने का नहीं है, मैं तो कॉमर्स ही पढ़ना चाहता हूँ।''

लालचन्दजी दूध पीते हुये चिरंतन की ओर देखते रहे; कहा कुछ भी नहीं; पर सरिता चिरंतन की बात सुन रही थीं तो वह गुस्से में बोली ''चिरंतन तुम ऐसा कैसे कह सकते हो कि तुम क्या करोगे ? जो दादाजी कहेंगे, वही होगा।''

''नहीं माँ! मेरी जिंदगी का फैसला मैं लूँगा।''

''तो दादाजी! क्या तुम्हारी जिंदगी के बारे में गलत फैसला ले रहे हैं ?'' सरिता ने झल्लाते हुए कहा।

''मैंने यह कब कहा? पर मेरी पसंद के अनुसार यदि मैं विषय पढ़ूँगा तो ही मैं सही ढ़ँग से पढ़ सकूँगा। मम्मी आप जबरदस्ती मत कीजिये।''

''चिरंतन सही तो कह रहा है, उसे जो पढ़ना हो, वही पढ़ने देना चाहिये। क्या सारे घर को ही प्रवचनकार बनना है। दीदीजी आप स्वाध्याय करती हैं, बाबूजी-मम्मीजी करते हैं; बस इतना ही काफी है, आप बच्चों को जबरदस्ती अठारहवीं सदी में मत ले जाइये।'' अनीशा ने चिंरतन का पक्ष लेते हुये कहा।

''अनीशा! तुम यह क्या कह रही हो? तुम गलत बात का पक्ष लेकर बच्चों को बहका रही हो।'' सरिता ने कहा।

''अरे बेटा! इसमें बहकाने वाली बात क्या है? आपस में इतनी-सी बात पर झगड़ा करोगे? चिरंतन सही ही तो कह रहा है। उसे जो पढ़ना होगा, वही पढ़ेगा। हम बच्चों के भविष्य के बारे में क्या जानें? बच्चे बड़े हो गये हैं, वे अपना निर्णय स्वयं ले सकते हैं। आप भी पढ़े-लिखे हो, समझदार हो और मेरी तरफ से सभी स्वतंत्र भी; जिसकी जो इच्छा हो वही अध्ययन करना, आपका भी जो मन हो, वही कहो, वही करो; मुझे कोई आपत्ति नहीं है; बस मेरा मन था, इसलिए कह दिया था।

मैं समाज के बच्चों को संस्थान में जाकर पढ़ने के लिए प्रेरित कर रहा था तो सोचा शुरुआत तो घर से ही करना चाहिये; बस इसलिये कहा था। अब उनसे भी नहीं कहूँगा और तुमसे भी नहीं कहूँगा।'' इतना कहकर लालचन्दजी मुँह पोंछते हुये उठकर चुपचाप अपने कमरे में चले गये।

यह सब इतना अप्रत्याशित हुआ कि सचिन व राजीव तो कुछ बात भी नहीं कर सके। वे तो नीची गर्दन किये नाश्ता करके दुकान पर चले गये। सब अपने-अपने काम पर लग गये।

सचिन व राजीव के मन में बड़ा द्वन्द चल रहा कि किसके पक्ष में अपना मतदान करें। यदि बाबूजी का पक्ष लेते हैं तो बच्चे दु:खी होते हैं और यदि बच्चों का पक्ष लेते हैं तो बाबूजी का मन दु:खी होता है। आज की दृष्टि से देखें तो बच्चे भी सही कह रहे हैं और बाबूजी की दृष्टि से सोचते हैं तो वे भी सही कह रहे हैं। यही सोचते हुये दुकान पर पहुँच गये।

लालचन्दजी कमरे में आराम कुर्सी पर पैर फैलाये हुये बोले "विमला! सही में अपने बच्चे कितने होशियार हो गये। बहू भी कितनी होशियार हैं। मुझे अभी तक लग रहा था कि मैं जो कुछ कहूँगा, इस घर में वही होगा; पर यह ख्याल नहीं आया कि मध्यान्तर के बाद कौन किसको पूँछता है?"

"अरे आप ऐसा मत सोचिये। पहले तो यह पक्का निर्णय बनाकर रखिये कि यदि बच्चे-बहू मान भी जाते या अभी भी समझाने से समझ भी जायें तो आपने कहा इसलिये वे समझ गये - ऐसा नहीं है। नहीं समझे तो आपकी नहीं चलती है - ऐसा नहीं है। अपने अनुसार तो शरीर का परिणमन भी नहीं होता तो बेटे-बहू तो बिल्कुल भिन्न हैं। दूसरे में तो कभी भी किसी की नहीं चलती। बस! राग के अनुसार संयोगवश दूसरे का परिणमन हो गया तो हम मान लेते हैं कि मैंने कहा तो किसी ने मान लिया और नहीं माना तो मेरी नहीं चलती। मेरी नहीं चलती - कहकर भी हमारे मन में कर्तृत्वबुद्धि तो बनी ही रहती है।"

"अरे पण्डितानीजी! क्या मैं अपनी सेवा करने के लिए कुछ मनवाना चाहता हूँ? बस मुझे इतना ही विकल्प है कि जो शाश्वत सत्य मुझे इस उम्र में सुनने को मिला है; यदि इन बच्चों को इनके पुण्योदय से अभी से मिल जाये तो इनका जीवन ही महक जाये मेरी इच्छा तो बस इनका और समाज के बच्चों का चरित्र सुधारने की ही है।"

"आपकी इच्छा सही है। ऐसी इच्छा न हो – यह मैं नहीं कह रही हूँ; पर जिस तरह से आप खेदखिन्न हो रहे हैं, वह सही नहीं है। आप सोच रहे हैं कि अब अपनी नहीं चलती। इसका मतलब पहले अपनी चलती थी – यही मान्यता तो अज्ञान है। दूसरों के ऊपर कभी किसी की नहीं चलती।

आपने कहा कि बच्चों को चरित्र सुधारना है तो कल ही मैंने पढ़ा था कि 'सबसे पहले यह निर्णय करो कि हमारी मर्यादा कहाँ तक है?' सच में एक द्रव्य की दूसरे द्रव्य में कुछ चल सके, कोई किसी का कुछ कर सके – ऐसा वस्तुस्वरूप ही नहीं है। दूसरों के चरित्र सुधारने के चक्कर में अपना परमार्थ चरित्र/आचरण/मान्यता बिगड़ रही है; दूसरों की कषाय मिटाने के लिए स्वयं कषाय करने लगना, उचित नहीं है।

हमारी मर्यादा, मात्र जानने तक ही है; राग आया तो उस विकल्प के अनुसार कह दिया। बस! अब काम होना या नहीं होना अपने विकल्प के आधीन नहीं है। आपकी भावना अच्छी है उसके फल में आपको पुण्य का बंध व स्वयं ही सम्यग्ज्ञान प्राप्ति के अवसर के योग्य कर्मों का आस्रव-बंध हो रहा है। जगत का परिणमन स्वतंत्र है – ऐसा सत्य स्वरूप मानकर किसी भी परिस्थिति में खेद-खिन्न नहीं होना चाहिए।"

"जो आज्ञा पण्डितानीजी!" मुस्कराते हुए लालचन्दजी आँख बन्द करके पर-चिंता नहीं, चिंतन-मग्न हो गये।

ooo

जो जग में जगते हैं बंधु, सच में तो वे सोते हैं।
भान ना होता है निज-पर का, अतः जगत में रोते हैं।।
जग में सोकर निज में जागे, मोहितिमिर भग जाता है।
ज्ञान सूर्य के ही प्रकाश में, निज वैभव प्रगटाता है।।

12

स्वरूपचन्दजी की सागर के कटरा बाजार में किराने की बड़ी दुकान है। उनका इकलौता बेटा अमित ही अधिकांश समय दुकान पर बैठता है। स्वरूपचन्दजी तो पूजन-स्वाध्याय व भोजन करने के बाद लगभग 12 बजे दुकान पहुँचते और 4.30 तक शाम को वापिस आ जाते। सायंकालीन भोजन वे जल्दी कर लेते; फिर वापिस दुकान पर जाकर अमित को भोजन के लिए भेज देते। उनका यह सौभाग्य था कि आज के समय में भी उनका बेटा रात्रि-भोजन नहीं करता था; अतः उसका यह नियम पलता रहे, इसके लिए वे दुकान पर वापिस जाते थे। अमित तो कहा करता था पिताजी! आप वापिस दुकान पर न आया करें; मैं दुकान नौकर को सौंपकर भोजन के लिए आ जाऊँगा; पर स्वरूपचन्दजी का मन नहीं मानता अतः वे आ जाते थे।

एक दिन दोपहर में पण्डित ज्ञानचन्दजी स्वरूपचन्दजी की दुकान पर कुछ सामान लेने के लिए आये। उनको देखते ही स्वरूपचन्दजी व अमित ने योग्य अभिवादन किया। स्वरूपचन्दजी ने पूँछा "पण्डितजी! आज आप कैसे पधारे?"

"स्वरूपचन्दजी! हमें जब भी किराने के सामान की जरूरत पड़ती है; तब आपकी ही दुकान से लेकर जाता हूँ। मैं ज्यादातर स्वाध्याय करके घर जाते समय सामान भी सुबह ही ले जाता हूँ, तब आप दुकान पर रहते नहीं; अतः आपसे मिलना नहीं होता। आपका बेटा अमित बहुत ही सुशील व व्यवहारकुशल है। यह समय निकालकर स्वाध्याय में और आने लग जाये तो कितना अच्छा होगा?"

अमित पण्डितजी की सामान की सूची के अनुसार सामान निकालते हुये बोला "पण्डितजी आपका आशीर्वाद बना रहा तो मैं भी जल्दी ही

स्वाध्याय में आना चालू करूँगा। अभी तो मुझे इस बात की खुशी है कि पिताजी पहले कभी-कभी ही स्वाध्याय में जाते थे, पर वे अब शिविर के बाद तो एक भी समय का स्वाध्याय नहीं छोड़ना चाहते और जो भी विषय सुनकर आते हैं; घर पर आकर हमें रात को उसके बारे में अवश्य बतलाते हैं। घर और दुकान पर जब भी उन्हें समय मिलता है, ग्रन्थ का अध्ययन ही करते हैं। माताजी के स्वर्गवास के बाद पिताजी का जीवन नीरस हो रहा था। हम समझ भी नहीं पा रहे थे कि क्या करें जिससे पिताजी प्रसन्न रहें? परन्तु आपके आशीर्वाद से तो मानो उनको जिनवाणी रूपी संजीवनी ही मिल गई है।''

''अरे बेटा! मेरा तो क्या आशीर्वाद? आशीर्वाद तो पंचपरमेष्ठियों व जिनवाणी माँ का है। जिनवाणी में अपना ही तो सच्चा स्वरूप बताया गया है। स्वरूपचन्दजी को अपना स्वरूप भा गया; बस इतनी सी ही बात है।'' हँसते हुये ज्ञानचन्दजी ने कहा।

सामान निकल चुका था। स्वरूपचन्दजी बोले ''पण्डितजी! आप घर पहुँचिये यह सामान हमारा आदमी रखकर आ जायेगा। हमारा एक निवेदन और है – आपको जो भी सामान चाहिये हो, आप फोन कर देना या सूची भेज देना; आपको दुकान तक सामान लेने आने की आवश्यकता नहीं है। अमित बेटा ध्यान रखना! पण्डितजी को कभी भी सामान लेने के लिए यहाँ तक न आना पड़े; सूचना मिलते ही अपने आदमी से सामान भिजवा देना।''

''जी पिताजी! मैंने तो पहले भी पण्डितजी से निवेदन किया है; अब मैं और ध्यान रखूँगा।''

''क्यों भाई! बाप-बेटा अपनी दुकान पर नहीं आने देना चाहते क्या?'' मुस्कराते हुए ज्ञानचन्दजी ने कहा।

''अरे नहीं पण्डितजी! यह दुकान आपकी ही है। आप कभी भी

पधारें, पर आपको सामान लेकर जाना पड़े – यह हमें शोभा नहीं देता, बस इसलिए कहा है। आपकी हम किसी भी रूप में सेवा कर सकें – यह तो हमारा सौभाग्य होगा। आपके द्वारा जो हम सबको जिनवाणी का अमृतपान कराया जा रहा है, उसका उपकार हम कभी भी नहीं चुका सकते।'' स्वरूपचन्दजी ने कहा।

''अरे भाई! मंदिर की बात मंदिर में ही रहने दो। कौन किसका उपकार कर सकता है? मैं तो परोपकार के लिए नहीं; अपने हित के लिए ही स्वाध्याय करता हूँ।''

''मुझे पता है पण्डितजी! अभी तक मैंने जो आपसे सुना, आपको देखा और आपके बारे में जो पुराने श्रोताओं से सुना उससे मैं बहुत प्रभावित हूँ; पर हमारा भी दायित्व बनता है कि हम प्रत्येक साधर्मी के साथ अपने परिवार के सदस्य से अधिक वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करें; फिर आप तो हमारे प्रेरक हैं।''

''हाँ यह तो आप सही कह रहे हैं कि साधर्मियों में परस्पर वात्सल्य होना ही चाहिए। **वात्सल्यपूर्वक ही प्रभावना होती है। यदि साधर्मियों में स्वयं की अज्ञानता व कषाय से कहीं वात्सल्य नहीं दिखता तो धर्म की अप्रभावना ही होती है।**''

''हाँ पण्डितजी! मैं जवानी से ही एक सामाजिक संगठन से जुड़ा रहा हूँ; जहाँ पर हमें सबसे पहले अनुशासन व पारस्परिक सहयोग ही सिखाया गया। यदि किसी एक साथी के घर पर वैवाहिक कार्यक्रम होता या दु:खद प्रसंग होता; वहाँ हम 50 साथी एक साथ पहुँच जाते; बड़े-बड़े काम भी हम सहजता से पूरे करा देते और इस काम के बदले उसके यहाँ पर चाय पीने की भी अपेक्षा नहीं रखते थे। इस सहयोग-धर्म के कारण सागर में ही नहीं; देश के विभिन्न नगरों व गाँवों में उस संगठन के लाखों सदस्य हैं; जो एक आवाज पर खड़े हो जाते हैं। जब

मैंने स्वाध्याय में आना प्रारंभ किया और यहाँ पर भी साधर्मी वात्सल्य के बारे में सुना तो बहुत अच्छा लगा।

पण्डितजी! मेरा स्पष्ट मत है कि मंदिर की बात मंदिर में ही या हमारे रिश्ते मंदिर तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। हम सबको परस्पर लौकिक जीवन में भी एक परिवार के समान रहना चाहिए। बस इसीलिए निवेदन किया कि आप हमारी टीम के कैप्टन हैं तो आप की सेवा करना हमारा कर्तव्य है।'' स्वरूपचन्दजी ने हाथ जोड़कर मुस्कराते हुये कहा।

''अच्छा चलो भाई! आपकी बात ही स्वीकार कर लेते हैं। अमित बेटा सामान आराम से भेज देना; हमें जल्दी नहीं है, अभी और ग्राहक हैं, उनको सम्हालो। ठीक है स्वरूपचन्दजी! शाम को मिलते हैं।''

''जी पण्डितजी।''

शाम को प्रतिदिन भोजनोपरान्त 6.30 बजे पण्डित ज्ञानचन्दजी, सेठ लालचन्दजी, स्वरूपचन्दजी व अन्य साधर्मियों के साथ तालाब की ओर घूमने के लिए जाते।

सागर में बहुत ही विशाल तालाब है, जिससे नगर की पेयजल व्यवस्था तो होती ही है पर साथ ही नगर का सौन्दर्य भी दर्शनीय हो जाता है। तालाब के किनारे ही बस स्टैण्ड होने से प्रदेश के सभी बस यात्री उस शोभा को भी निहारा करते हैं। नगर निगम की ओर से तालाब के चारों ओर सुन्दर बगीचे भी बनवा दिये गये थे; जहाँ घूमने वाले आकर बैंचों पर बैठकर सुबह-शाम खुली हवा का आनंद लिया करते थे।

स्वाध्याय मंदिर का यह समूह भी यहाँ आकर धार्मिक/सामाजिक विषयों पर चर्चा करते हुये हँसी-मजाक के साथ अपने तन-मन को

स्वस्थ रखता था। यहाँ पर बैठकर ही ग्रीष्मकालीन शिविर की योजना बनाई गई थी।

आज उपवन चर्चा में पण्डितजी ने प्रात: स्वरूपचन्दजी की दुकान पर साधर्मी वात्सल्य की आवश्यकता पर हुई चर्चा को सबके बीच रखा। चर्चा के मध्य सेठ लालचन्दजी शान्त मन से बैठे हुये थे इस ओर पण्डितजी का ध्यान गया तो उन्होंने कहा "भाई लालचन्दजी! आज क्या बात है, आप कहाँ खोये हुये हैं?"

"कहीं नहीं पण्डितजी! आपकी बात ही सुन रहा हूँ।"

"नहीं लालचन्दजी! कोई बात तो जरूर है जो आप हमसे छुपा रहे हैं। अरे भाई! हम सभी साधर्मी भाई हैं। हमसे ही बात छुपा रहे हैं! बताइये न! क्या बात है जिससे आप उदास दिखाई दे रहे हैं?"

"अरे पण्डितजी! कोई खास बात नहीं है, बस छोटी-सी बात है।"

"अरे यार! छोटी हो या बड़ी, बताओ न, छुपा क्यों रहे हो? कैसी भी बात हो, अपने समूह से बाहर नहीं जायेगी; चिन्ता मत करो।" स्वरूपचन्दजी ने दोस्ती के अंदाज में कहा।

"हाँ भाई! अन्य किसी को तो बताने की जरूरत ही नहीं है, जहाँ परस्पर वात्सल्य आवश्यक है; वहीं साधर्मियों में दूसरों के दोष या कमियों को ढ़ँकने का उपगूहन नाम का गुण भी आवश्यक है। आप बताइये क्या समस्या है?"

"पण्डितजी! ग्रीष्मकाल के शिविर का लाभ मेरे पूरे परिवार ने उत्साहपूर्वक लिया, जिससे उत्साहित होकर मेरे मन में आया कि मैं समाज द्वारा जो संस्थान चल रहे हैं; उनमें अपने पोते-पोतियों को पढ़ने भेजूँ। चिरन्तन तो शास्त्री करने के लिए चला जाये और दोनों पोतियाँ भी संस्थान में पढ़ने जावें।"

"यह तो बहुत अच्छा सोचा! यदि हम अपने परिवार व समाज को धार्मिक वातावरण देना चाहते हैं, अपनी संस्कृति सुरक्षित रखना चाहते हैं, बच्चों का जीवन व अपना मरण सुधारना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि संतान को बचपन से ही धार्मिक संस्कार दिये जायें।"

"यही सब सोचकर मैंने कल रात में अपने घर पर बात की। मुझे विश्वास था कि मेरी बात कोई नहीं टालेगा पर.... ।"

"पर क्या लालचन्दजी?" स्वरूपचन्दजी ने पूछा।

"पर पोते ने तो कह दिया कि मुझे तो सी.ए. करना है। मुझे शास्त्री का कोर्स नहीं करना और मेरी छोटी बहू तो साफ अड़ गई कि मैं तो अपनी बेटी को संस्थान में नहीं भेजूँगी। जो बहू मेरे सामने कभी नहीं बोलती थी; उसने आज सबके सामने घर में मेरी इज्जत उतार दी।" लालचन्दजी दु:खी होते हुए बोले।

"अच्छा! तो यह बात है।" ज्ञानचन्दजी ने गंभीरतापूर्वक बात प्रारंभ करते हुये कहा। "लालचन्दजी! आपने जो सोचा, वह बहुत अच्छा सोचा; पर हम जो सोचें, वैसा ही कार्य हो – यह जरूरी नहीं है। आपको तो आपके भावों का फल मिलेगा ही।"

"अरे पण्डितजी! मैंने कोई स्वर्ग के लोभ से थोड़ी यह सोचा या कहा था। मैं तो उन बच्चों का भविष्य सुधरे, उनका चरित्र निर्माण हो – इसके लिए सोचा और कहा; पर उम्र के मध्यान्तर के बाद ऐसा भी दिन देखना पड़ेगा कि जिसकी आवाज पर बेटे–बहू खड़े हो जाते थे, वे उसके ही सामने जवाब देने लग जायेंगे।"

"लालचन्दजी! आप बात को जितनी बड़ी मानकर दु:खी हो रहे हैं, वास्तव में उतनी है नहीं। सबसे पहले तो आप यह विचार करें कि **'प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, सबका परिणमन स्वतंत्र है, हमारी सोच या**

कहे अनुसार न पहले कुछ होता था और न आज कुछ होगा। बेटे-बहू या पोता-पोती – सब स्वतंत्र द्रव्य हैं। उनके कर्म अलग हैं, उनके उदय अलग हैं, उनकी होनहार अलग है। उनकी भी अपनी सोच है। जैसे आपने अपने बच्चों के बारे में निर्णय किया, वैसे ही बहुओं को भी अपने बेटे-बेटियों के बारे में सोचने का अधिकार है। सभी के अधिकार आपके ही पास हों – यह आवश्यक नहीं है। बहू के मन में जो था उसने वह कहा; इसमें आपकी इज्जत खराब कर दी – ऐसा आपको नहीं सोचना चाहिए। आखिर वे आपके ही बेटे-बहू हैं। आप उनके सामने अपनी बात रखते हैं, तो उन्होंने भी अपनी बात रखी।''

''परन्तु लालचन्दजी जब बात सही कह रहे थे, तब तो बहू को मानना चाहिये थी।'' स्वरूपचन्दजी ने कहा।

''स्वरूपचन्दजी! पण्डित टोडरमलजी ने कहा है – **अनादिनिधन वस्तुयें भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के अधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होतीं।** बेटे-बहू भी स्वतंत्र द्रव्य हैं, उनका परिणमन उनसे ही होगा, उनके लिए ही होगा; इसलिए लालचन्दजी अपने मन से यह बात तो निकाल ही दीजिये कि आपकी बात नहीं मानी।

अब रही बात आपकी भावना की, यदि उन बच्चों की भली होनहार है और उनका जीवन तत्त्वज्ञान से सुरभित होना है तो वे आपकी भावना के अनुसार अध्ययन करने जायेंगे। उपादान उनका होगा और आपकी भावना निमित्त बनेगी। आपकी भावना को सफल कराने वाला योग्य निमित्त उपस्थित होने का योग मुझे दिखाई दे रहा है। लालचन्दजी आप प्रसन्न हो जाओ मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि आपकी भावना सफल होगी ही। यदि कदाचित् न भी हो तो वस्तु का स्वतंत्र परिणमन समझकर निर्भार हो जाओ।''

पण्डितजी की बात सुनकर लालचन्दजी के माथे की सलवटें कुछ कम हुईं, मन हल्का हुआ तो चेहरे पर प्रसन्नता भी आई। "मेरी भावना को सफल कराने वाला निमित्त कौन उपस्थित हो रहा है ?" लालचन्दजी ने उत्सुकता से पूँछा।

"वह मैं अभी नहीं बताऊँगा, उसे तो मैं रात के प्रवचन में बताऊँगा, जब सचिन-राजीव भी होंगे। स्वरूपचन्दजी यदि हो सके तो आप अमित को भी रात के प्रवचन में बुलाओ, भले ही वह देर से आ जाये। मैं प्रवचन के बाद एक सुखद सूचना दूँगा, यदि युवा वर्ग सहमत हो गया तो उसे क्रियान्वित करेंगे।"

"ठीक है पण्डितजी ! हम तो आपकी हर योजना को पूरा करने के लिए तैयार हैं।"

"ठीक है-ठीक है ! चलो अब समय हो गया।" यह कहते हुये सभी घर की ओर चल दिये।

रात में प्रवचन के बाद पण्डितजी ने कहा कि "भाइयो- बहिनो ! 15 दिन पूर्व हमने बालकों के लिए शिविर लगाया; जिसका फल आप देख रहे हैं कि मंदिर में दर्शन-पूजन करने वाले बालकों की संख्या कितनी बढी है; साथ ही सचिन-राजीव जैसे युवा श्रोता स्वाध्याय सभा में भी जुड़े हैं। आप सबने युवा विद्वान पण्डित विवेककुमारजी का नाम तो सुना ही होगा ?"

"हाँ-हाँ ! हमने नाम भी सुना और उनके प्रवचन भी वाट्सएप व यूट्यूब पर आते हैं, कभी-कभी मैंने वे भी सुने हैं, बहुत अच्छा बोलते हैं।" अमित ने कहा।

"अरे वाह ! अमित तुमने तो प्रवचन भी सुने हैं; तो मैं चाहता हूँ कि

उनको तीन दिन के लिए यहाँ आमंत्रित किया जाये और रविवार को विशेष प्रचार–प्रसार करके बालकों व युवावर्ग को भी आमंत्रित किया जाये। रविवार को स्वाध्याय भवन से बाहर किसी बड़े हॉल में उनका व्याख्यान रखा जाये तो बहुत लाभ होगा।''

''आप आज ही उनसे स्वीकृति ले ले लीजिये, आज सोमवार है। हम शुक्रवार–शनिवार–रविवार इन तीन दिन का कार्यक्रम तय कर लेते हैं।'' सचिन ने कहा।

''ठीक है! परन्तु रविवार के कार्यक्रम की पूरी जिम्मेदारी सचिन–राजीव–अमित आपकी व आपकी मित्र मण्डली, साथ ही महिला मण्डल की रहेगी। सागर की जैन समाज व अन्य समाज के कम से कम 1000 लोग उपस्थित हों – ऐसा प्रचार करें।''

''हम आपके निर्देशन में कल से ही प्रचार–प्रसार में लग जाते हैं। पेम्पलेट/बैनर मंदिर मंदिर में लगा देंगे। समाचार–पत्र में सूचना देंगे व समाज के सभी वाट्सएप ग्रुप में सूचना दे देंगे, फोन भी कर लेंगे।''

''शाबास! आप सबसे ऐसी ही उम्मीद थी।''

''पण्डितजी की आवास व भोजन व्यवस्था हमारे घर पर हो जायेगी।'' अमित ने कहा।

''जैसा आप उचित समझें! कीजिये; हमें कोई दिक्कत नहीं है। मैं अभी रात को ही बात कर कार्यक्रम तय कर लेता हूँ।''

कार्यक्रम की रूपरेखा तय करने के लिए अगले दिन युवावर्ग की बैठक बुलाने के निर्णय के साथ सभा समाप्त हुई।

OOO

13

अब ग्रीष्मावकाश समापन की ओर थे। विद्यालय खुलने वाले हैं, इसलिए सभी बच्चे अपने बैग जमाने लग गये थे। नये प्रवेश होने वाले थे। आजकल तो ढ़ाई वर्ष के बच्चों को ही विद्यालय भेजने और इसके लिए भी अच्छे विद्यालय का चयन करने और उस चयनित विद्यालय में ही अपने बच्चे का प्रवेश दिलाने के लिए महिनों पहले से अभिभावक प्रयासरत हो जाते हैं।

अब विषय का चयन करना है; अत: कक्षा 10 वीं उत्तीर्ण छात्र बड़ी उलझन में रहते हैं। उनके लिए यह एक टर्निंग प्वाइंट होता है। अब जिस दिशा में बालक मुड़ जायेगा, उसी तरफ उसे आगे बढ़ना है; अत: उस छात्र और उसके अभिभावकों के लिए भी चिन्ता और चिन्तन के क्षण होते हैं।

इसी बीच सागर नगर में ख्यातिप्राप्त युवा विद्वान पं. विवेककुमार शास्त्री का आगमन हुआ, रविवार को किशोर व युवावर्ग के लिए विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। इसके लिए स्वाध्याय प्रेमियों ने विशेष प्रचार-प्रसार किया एवं एक विशाल सभा भवन में उनका व्याख्यान रखा। महिलाओं ने अपनी सभी सहेलियों व बालकों ने अपने सभी मित्रों को इस अवसर पर आमंत्रित किया। लगभग 1000 सभासद समय पूर्व ही उपस्थित हो गये।

विवेककुमारजी आकर्षक व्यक्तित्व के धनी युवा विद्वान थे। आपकी शैली भी युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करने वाली थी। उनके निर्देशानुसार किशोर व युवा पहले से ही आगे आकर बैठे हुये थे। मंगलाचरण के पश्चात् जैसे ही उन्होंने कहा "मेरे प्रिय साधर्मी भाइयो-बहिनो! आज हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि हम इस जीवन

मैं क्या चाहते हैं? और जो चाहते हैं, उसके पाने का साधन हम क्या मानते हैं?

मैं सबसे पहले अपने आगे बैठे हुये मित्रों से ही पूँछना चाहूँगा कि आप इस जीवन में क्या चाहते हैं?''

एक ने कहा ''मैं इस जीवन में भरपूर पैसा कमाकर, सागर का नगर सेठ बनना चाहता हूँ।''

''मैं इंजीनियर बनकर अच्छी-अच्छी बिल्डिंग बनाकर देश सेवा करते हुये नाम कमाना चाहता हूँ।''

''मैं डॉक्टर बनकर जनता की सेवा करके अपना व अपने नगर का नाम रोशन करना चाहता हूँ।''

''मैं तो किसी भी प्रकार से अपने जीवन में शांति पाना चाहता हूँ।''

''और बेटे आप अपने जीवन में क्या करना चाहते हैं?'' विवेक-कुमारजी ने मुस्कराते हुये पूछा।

''मैं तो सी.ए. बनकर नाम व पैसा कमाना चाहता हूँ?'' चिरंतन ने कहा।

''और दादाजी! आप क्या चाहते हैं?''

''बेटा! मैं बहुत अधिक कुछ नहीं चाहता, बस बेटे की शादी हो जाये तो पोते का मुँह देखकर सुख से मरना चाहता हूँ।''

''और दादीजी! आप क्या चाहती हैं?''

''बेटा! मैं तो चाहती हूँ कि मेरे बेटे-पोते सभी मंदिर में आयें, स्वाध्याय करें और शांति से रहें; बस इसी में मुझे तो सुख है।''

''और पीछे बैठी भाभीजी! आप क्या चाहती हैं?''

''मुझे तो कोई कमी नहीं है, बस कमर दर्द रहता है, वह मिट जाये तो बस आराम ही आराम है।''

''बहुत बढ़िया। आप में से कोई और है जो इसके अलावा जीवन में कुछ और चाहता हो?'' सारी सभा आपस में बातचीत करने लगी; पर किसी ने कुछ नहीं कहा।

तब विवेककुमारजी ने कहा ''आप कुछ नहीं कह रहे हैं, इसका मतलब है आप सभी कुछ न कुछ इसी प्रकार का ही कुछ चाहते हैं या कुछ और चाहते भी हैं तो इस सभा में कहने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे; पर आपके मन की उन इच्छाओं के बारे में मैं जानता हूँ।

आपमें से कुछ दादाजी चाहते हैं कि मेरी बहू को समझ आ जाये और वह गरम-गरम भोजन कराने लगे। किसी को लगता है मेरा बेटा मेरी बात मानने लग जाये। किसी को लगता है कि मैं जहाँ कह रहा हूँ वहाँ ही मेरा बेटा या पोता-पोती पढ़ने जायें; या जहाँ आप चाहते हैं वहीं वे शादी करें। किन्हीं भाभीजी को अपनी सास को सुधारने की तो किन्हीं माताजी को अपनी बहू को सुधारने की इच्छा है? बस इतना हो जाये तो घर स्वर्ग बन जाये और हम स्वर्गवासी।'' यह सुनकर सभी हँसने लगे।

''पर मित्रो! मेरा प्रश्न है कि आप जो कुछ करना चाहते हो तो क्या बस यही करना चाहते हो? पर यह सब क्यों करना चाहते हो?

आपमें से कोई कहेगा यह सब हम पैसा कमाने के लिए या नाम कमाने के लिए करना चाहते हैं; पर पैसा या नाम क्यों कमाना चाहते हो?

नाम और दाम हो जायेंगे तो आपको आनंद/मजा/शान्ति मिलेगी! यही न?

इसका मतलब हुआ कि आप चाहे डॉक्टर/सी.ए./इंजीनियर/व्यापारी कुछ भी बनना चाह रहे हों; सबका निष्कर्ष तो यही निकल रहा है कि हम सुख/शान्ति चाहते हैं। क्यों मित्रो! ऐसा ही है न?''

''जी हाँ।'' सब एक स्वर में बोले।

''तो मित्रो! मेरा सवाल यह है कि सुख क्या है?''

क्या रुपया-पैसा-पद-परिवार-नाम मिल जाना सुख है? देश में या सागर में जिनके पास ये सब हैं क्या वे सुखी हैं? उन्हें किसी भी प्रकार की परेशानी नहीं है? क्या आप नामधारी, दामधारी महानुभावों को सुखी मानने को तैयार हैं?

जो लोग नाम-पद-धन कम न हो जाये, उनसे आगे कोई न निकल जाये - इसी उधेड़-बुन में रात-दिन लगे रहते हैं; नींद की गोलियाँ खाकर जिन्हें नींद आती है अथवा धन-पद है; पर शरीर में कई प्रकार की व्याधियाँ हैं, आप उन्हें सुखी मानने को तैयार हैं?'' विवेकजी ने आगे बैठे श्रोता से पूछा।

''नहीं! सच में वे सुखी हैं - ऐसा तो कोई नहीं कह सकता? वे तो हमेशा ही टेन्शन में रहते हैं।''

''हाँ तो मित्रो! यही बात समझने की है, साधन इकट्ठे हो जाने का नाम सुख नहीं है। हमने साधनों की भीड़ धन-दौलत-बंगला-कार-टी.व्ही.-मोबाइल मिल जाने को सुख समझ लिया है - यही हमारी सबसे बड़ी भूल है।

हम सभी सुख चाहते हैं; पर सुख किसे कहते हैं? यह नहीं जानते। अपनी मनमर्जी से किसी ने डिग्री/किसी ने परिवार की एकता, किसी ने स्वास्थ्य, किसी ने पद मिलने को ही सुख मान लिया और यह सब जोड़ने में लग गये; पर यह सुख नहीं, इनमें सुख नहीं; अतः जीवन भर इनको जोड़ते रहने पर भी हम दुःखी के दुःखी रहते हैं; क्योंकि धन-पद सच्चे सुख के साधन नहीं हैं।''

''तो फिर सच्चा सुख क्या है? अंकलजी! आप ही बताओ न।'' सभा में छोटा सा अन्वय बोल पड़ा।

''अरे चुप! बीच में नहीं बोलते।'' बगल में बैठे लालचन्द ने अन्वय को बैठाते हुये कहा।

''अरे दादाजी! उसे चुप नहीं कीजिए, उसने बिल्कुल सही प्रश्न किया है। हमारे बच्चे निश्छल हैं; पर उन्हें सही बात सही ढ़ंग से समझाई नहीं जा रही। शाबास बेटा! तुमने सही पूँछा। इन सबके मन में भी यही प्रश्न है; पर यह इज्जत वाले हैं, इसलिए पूँछ नहीं सकते।

ध्यान से सुनें – रुपया, पैसा, कार, बंगला, खाने-पीने के भरपूर साधन व स्वस्थ शरीर मिल जाना सुख नहीं है और न ही इनका नहीं होना दु:ख है। यदि इनका न होना ही दु:ख हो तो हमारे मुनिराज के पास इन साधनों में से कुछ भी नहीं है तब तो वे बहुत दु:खी कहलायेंगे; पर आप सब परिग्रह रहित मुनिराज को सुखी मानते हैं या दु:खी मानते हैं ?''

''मुनिराज तो सुखी ही हैं।'' सभा से एक स्वर में आवाज आई।

''आपका उत्तर सही है; परन्तु यह आप सुनी-सुनाई बातों के आधार से कह रहे हैं। आप मन से ऐसा मानते नहीं हैं ?

क्यों बेटा! आप भी मुनिराज को सुखी मानते हो ?'' विवेकजी ने चिरन्तन की ओर इशारा करके पूँछा।

''जी हाँ! मुनिराज को तो हम सुखी ही मानते हैं ?'' चिरन्तन ने कहा।

''तो फिर तुम सुखी होने के लिए सी.ए. और तुम डॉक्टर क्यों बनना चाहते हो; धन-पद क्यों प्राप्त करना चाहते हो ? मुनि क्यों नहीं बनना चाहते ?'' सभा इस प्रश्न को सुनकर सन्न रह गई।

विवेककुमारजी ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा – ''हम मुनिराज को सुखी कहते हैं, जिनके पास रंचमात्र परिग्रह नहीं है, उन्हें हम सुखी मानकर पूजते हैं; परन्तु स्वयं परिग्रह जोड़कर सुखी होना चाहते हैं – यह तो बहुत बड़ी विडंबना है।

सच यह है कि हम उन्हें आगम व कुल परंपरा से सुखी कहते हैं; पर सुखी मानते नहीं हैं। जबकि वास्तव में वे सुखी हैं, वे ही सुखी हैं और हम दुनिया के नामधारी-दामधारी राजनेताओं, उद्योगपतियों को दु:खी/परेशान/टेन्शन में हैं - ऐसा कहते हैं। वे सच में दु:खी हैं भी; पर हम ऐसा मानते नहीं हैं - इसीलिए हम उन जैसा बनना चाहते हैं; मुनिराज जैसा नहीं बनना चाहते।

मित्रो! साधन होना, सुख और साधन नहीं होना, दु:ख की निशानी नहीं है। सच में तो जहाँ आकुलता/इच्छा/तनाव/टैन्शन है वहाँ दु:ख और जहाँ यह सब नहीं है, वहाँ सुख होता है। कहिये दादाजी! मैं सही कह रहा हूँ न?'' विवेकजी ने स्वरूपचन्दजी से पूँछा।

''आप तो बिल्कुल सही ही कह रहे हैं, हम स्वाध्याय में भी यही सुन रहे हैं, बस यही बात हृदय में बैठ जाये तो मजा आ जाये।'' स्वरूपचन्दजी ने कहा।

''हाँ दादाजी! आपने बिल्कुल सही कहा कि बस इस बात को हृदय में बैठाना है। यदि सच में सुखी होना है, तो बैठाना ही होगा। इस जीवन में भी यदि हम नहीं बैठा सके तो कब बैठायेंगे? संसार में तो लोग पागलों की तरह धन-पद पाने भागे फिर रहे हैं, इनके पीछे खाना-पीना-नींद और परिवार से भी दूर हो रहे हैं। हमें इतना महान जिनधर्म मिला और हम भी इन्हीं के पीछे अपना जीवन लगाकर चल दिये, तो यह मनुष्य भव की हार हो जायेगी।''

''पर भाई साहब ! धन के बिना तो दाल-रोटी नहीं मिलेगी; तब तो भूखों मर जायेंगे।'' एक युवा ने अपनी बात रखी।

''मित्रो! यह बात सही है कि हमें सामान्य लौकिक जीवन में धन की आवश्यकता होती है। आवश्यकता नहीं होती - ऐसा मैं नहीं कहूँगा;

क्योंकि वह रुपया दुनिया में विनिमय का साधन है। उससे लेन-देन चलता है; पर मैं आपसे पूँछता हूँ कि क्या आप दाल-रोटी के लिए धन कमा रहे हैं? यदि ऐसा हो तब तो किसी के लिए भी मंदिर, स्वाध्याय छोड़कर, अन्याय पूर्वक या टैक्स चोरी करके कमाने की जरूरत ही नहीं है। सच तो यह है कि हम पेट के नाम पर पेटियाँ भरने के लिए जीवन लगा देते हैं, एक पेटी भर जाती है तो दूसरी पेटी खरीद लाते हैं और हमारी पेटियाँ कभी भरती ही नहीं हैं।

मित्रो! दु:ख का कारण इच्छा है, इससे ही आकुलता होती है, आकुलता ही दु:ख है और निराकुलता ही सुख है। अपने आत्म-वैभव को न जानकर, अपने आपको दीन-हीन कमजोर मानने से ही इच्छा उत्पन्न होती है। साधन कितने भी हों; पर यदि इच्छा है तो आकुलता है, टेन्शन है और जहाँ टेन्शन है, वहाँ दु:ख है।

हमारे मुनिराज को किसी भी प्रकार का टेन्शन नहीं; क्योंकि उन्हें किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं है। यहाँ तक कि मोक्ष की भी इच्छा नहीं है। उन्हें पता है, जब मोक्ष होना होगा, तभी होगा-इच्छा से नहीं होगा।"

"पर बेटा! हम तो गृहस्थ हैं, हम मुनि नहीं हैं, हम जल्दी मुनि बन जायेंगे - ऐसे लक्षण भी नहीं दिख रहे हैं, तब तो पैसा कमायें कि नहीं कमायें।" एक दादाजी ने प्रश्न किया।

"दादाजी! पैसा कमाने से नहीं आता, जितना पुण्योदय हो उतना आता है। जो कम काम करता है, कम दुकान खोलता है, उसकी भी कमाई ज्यादा हो सकती है और जो दिनभर दुकान पर बैठता है उसकी भी कमाई कम हो सकती है। एक ही जगह से सी.ए. करने या डॉक्टर, इंजीनियर बनने पर क्या सभी एक जैसा नाम और दाम कमाते हैं? क्या एक जैसा भोजन करके एक जैसा स्वास्थ्य रहता है?"

सब नीचे बैठे 'नहीं' में गर्दन हिला रहे थे।

"वास्तव में पद-पैसा प्राप्ति का संबंध परिश्रम से नहीं, पुण्योदय से है; भाग्य से है। पुण्य का उदय तभी आयेगा, जब आप पुण्य बाँधोगे और पुण्य तभी बँधेगा, जब आप पूजन, स्वाध्याय, दान, संयम, सदाचार आदि का पालन करोगे।"

"तो हम सब दुकान छोड़कर और बच्चों के कॉलेज छुड़वाकर आपके साथ ही हो जायें।" एक युवा ने जरा मजाक के लहजे में कहा।

"अरे मित्र! ऐसा हो जाये तो बहुत ही अच्छा है। और मेरे साथ ही क्यों? आचार्य भगवंतों के साथ हो जाइये, भरपूर शान्ति तो मिलेगी ही; साथ ही पूरी समाज आपकी पूजा करने लग जायेगी।" विवेक ने भी उसी लहजे जवाब दिया।

"पर मित्रो! जब तक यह संभव नहीं है तब तक हम सबसे पहले जिनवाणी का भरपूर स्वाध्याय करें। मैं कौन हूँ ? मेरा कौन है? सुख क्या है? दुःख क्या है? सुख-प्राप्ति का साधन क्या है? इनके समाधान आगम के आधार से खोजने का प्रयास करें।" विवेक ने गंभीरतापूर्वक बात आगे बढ़ाई।

"जो भी यहाँ दादा-दादी बैठे हैं, वे सोचते हैं - हे भगवान! मृत्यु नजदीक आ रही है, मेरा मरण समाधि पूर्वक हो, आकुलता में नहीं हो।

माता-पिता बैठे हैं, वे सोचते हैं - मेरे बच्चे पढ़-लिखकर अच्छे आदमी बनें, नाम कमायें, पैसा कमायें और उनकी सेवा करें, बच्चों का सदाचारमय जीवन रहे।

और जो बच्चे बैठे हैं, वे यह जानते हैं कि आज हर क्षेत्र में कितनी प्रतियोगिता बढ़ रही है, छोटे-छोटे बच्चे भी कितनी आकुलता में जी रहे हैं, नंबरों के लिए पढ़ रहे हैं। यदि मन माफिक नंबर नहीं आते तो लड़

रहे हैं, यहाँ तक कि मर रहे हैं; ऐसे माहौल में भी वे सफल हो जायें – बस यही चाहते हैं।

मित्रो! आज कितने किशोर व युवा शराब पीने लगे हैं, ड्रग्स लेने लगे हैं, जैनों के बच्चे भी अण्डे व मांसाहार करने लगे हैं, होटलों में जाकर पार्टियाँ हो रही हैं, अनैतिक संबंध बन रहे हैं, केवल धन पाने के चक्कर में बच्चे विदेश जा रहे हैं; जिनसे मिलने के लिए माता-पिता तड़फते रहते हैं, पर मिल नहीं पाते। विजातीय विवाह हो रहे हैं, जिससे घर-घर में कलह, बदनामी हो रही है। इन सबका एकमात्र कारण है हम मात्र अर्थकरी शिक्षा दे रहे हैं, हम संस्कारहीन, धन कमाऊ ज्ञान दे रहे हैं।

मित्रो! आप अपने बच्चों को कार नहीं संस्कार दीजिए। सम्पत्ति नहीं, सन्मति दीजिये। यदि आप चाहते हैं कि आपका बच्चा आपका बना रहे, आपका बच्चा सदाचारी बना रहे, आपका बच्चा विजातीय संबंध न करे, आपका बच्चा धर्म का पालन करता रहे, आपका बच्चा दादा-दादी और आपकी इज्जत करता रहे, आपका बच्चा तनाव में न रहे, उसे नींद की गोलियों-शराब आदि का सहारा न लेना पड़े, आपका बच्चा सच्चे सुख को भोगने वाले पंचपरमेष्ठियों का भक्त बने, अपनी शक्ति के अनुसार उनके बताये मार्ग पर चले, वह अंधविश्वासों में न उलझे, वह गलाकाट प्रतियोगिता में रेस का घोड़ा न बने, उसके जीवन में भले ही करोड़ों रुपये न हों; पर शान्ति हो, तनाव रहित जीवन हो, पाप रहित जीवन हो तो मेरा हाथ जोड़कर निवेदन है कि जो भी समाज के द्वारा संस्थान चल रहे हैं उनमें ही आप उसे पढ़ने भेजें तभी जो आप सब चाहते हैं कि आपको सुख/शान्ति मिले वह आपको, आपके बच्चे को, आपके परिवार को मिलेगी; अन्यथा आपका बेटा भाग्य से धन-पद पा लेगा; पर उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

जो बच्चे दुकान पर ही बैठना चाहते हैं; अध्यापक, लेक्चरर बनना चाहते हैं, आर्ट्स विषय लेकर पढ़ने की इच्छा रखते हैं; वे शास्त्री करें और जिन्हें कॉमर्स–साइंस विषय भी पढ़ना है वे अन्य संस्थानों में जाकर प्रवेश लें।''

''अंकल जो बच्चे शास्त्री करते हैं वे और क्या करते हैं?'' एक किशोर ने प्रश्न किया।

''बेटे! शास्त्री विश्वविद्यालय की डिग्री है, जो 12वीं कक्षा के बाद 3 वर्ष का पाठ्यक्रम पढ़ने के बाद मिलती है; इसलिए जैसे बी.कॉम. करने वाला बी.कॉम. ही करता है; इंजीनियरिंग करने वाला, इंजीनियरिंग ही करता है और कुछ साथ में नहीं कर सकता, न ही आवश्यकता होती है; इसी तरह शास्त्री मतलब ग्रेजुएट होना है। यह समाज की नहीं, सरकार की डिग्री है।

मैं आप सभी से कहना चाहता हूँ, यह जीवन केवल पैसा कमाने के लिए नहीं मिला; और कमाने के भाव या मेहनत से पैसा आता भी नहीं है। संयोग, पुण्य के अधीन हैं और धर्म हमारे पुरुषार्थ के अधीन है। इसलिए जहाँ हमारा पुरुषार्थ चलता ही नहीं, वहाँ न लगाकर जहाँ हमारा पुरुषार्थ चल सकता है, वहीं लगाना चाहिए।

आप अपने बच्चे की भलाई चाहते हैं, अपने घर में शांति चाहते हैं, आप बुढ़ापे में जिनवाणी सुनना चाहते हैं, तो अभी मोह छोड़कर बच्चों को संस्थानों में पढ़ने भेजें। वहाँ उन्हें तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार के संस्कार मिलेंगे और लौकिक शिक्षा भी मिलेगी।

आप बच्चों का मात्र 25–30 वर्ष का भविष्य न देखें, आप उनके अनंतकाल का भविष्य देखें। यदि बच्चे धर्म से विमुख हो गये तो अनंतकाल तक नरक–तिर्यंच गति में तड़पेंगे/कटेंगे, मरेंगे और यदि सही मार्ग मिल गया तो अनंतकाल तक सुखी हो जायेंगे।

किन्हीं माता-पिता को लगता है कि हम बच्चों को अपने से दूर नहीं रख सकते; पर भाई! उच्च शिक्षा को आपको कभी न कभी दूर भेजना होगा; नौकरी बाहर लग जायेगी तो दूर रखना होगा; कहीं उसका दिमाग फिर गया और उसने अपने आप को आपसे अलग कर लिया तो दूर होना होगा और यदि कहीं किसी एक की भी आयु पूरी हो गई तो हमेशा के लिए दूर हो जायेगा और यह आयु कभी भी पूरी हो सकती है; इसलिए मातायें अपने मोह को छोड़कर जिनवाणी माँ की गोद में बच्चों को भेजें तो उनका जीवन आनंदमय होगा। आप उनकी हितकारी माँ कहलायेंगी; अन्यथा आप धर्म से दूर और अपने पास रखकर पाप का पोषण करेंगी तो उन्हें कुत्ता-बिल्ली बनने के मार्ग पर भेजकर माता नहीं, कुमाता कहलायेंगी।'' विवेकजी ने बहुत ही भावुक होते हुये प्रेरणा दी।

यह सब चर्चा सुनकर सारी सभा स्तब्ध रह गई। अनेक लोगों के आँखों में आँसू आ गए; साथ ही माता-पिताओं के भाव अपने बच्चों को संस्थान में भेजने व बच्चों के भाव वहाँ जाने के बनने लगे।

''पण्डितजी! आप जो कह रहे हैं वह सही है परन्तु मात्र धर्म पढ़ने से तो जीवन नहीं चल जायेगा। शास्त्री बनकर मात्र प्रवचन करने से क्या होगा, घर चलाने के लिए भी तो कुछ करना पड़ेगा?'' राजीव ने पूछा।

''देखो भइया! शास्त्री करने वाले बेरोजगार नहीं रहते, वे भी अपनी योग्यतानुसार अच्छे-अच्छे पदों पर कार्य कर रहे हैं। शास्त्री करके अपना निजी व्यवसाय चला रहे हैं, प्रोफेसर बन रहे हैं। जिसकी जितनी योग्यता है, जिसका जितना भाग्य है वह उतना लौकिक में धन-पद पा रहा है और जिसे शास्त्री नहीं करना; वे भी इन संस्थानों में जाकर लौकिक विषय पढ़ते हुये इंजीनियर, सी.ए. आदि भी बन रहे हैं।

हो सकता है कि यहाँ पढ़े विद्यार्थी करोड़पति न बन पायें; पर मित्रो! इतना पक्का है कि इन संस्थानों में पढ़ने वाला बच्चा अभक्ष्य सेवन नहीं

करेगा, देव-शास्त्र-गुरु का भक्त रहेगा, विधर्मी विवाह नहीं करेगा, अन्याय-अनीति के मार्ग पर नहीं जायेगा, असफल रहने पर आत्महत्या नहीं करेगा, परिवार व समाज में यथायोग्य धर्म का वातावरण बनायेगा। यदि ऐसा हो गया तो जीवन में और क्या चाहिये ?

"पण्डितजी आप बालक-बालिकाओं के लिए संस्थान में भेजने, शास्त्री बनने की बात कर रहे हैं, जो बहुत अच्छी है; पर मेरा प्रश्न यह है कि जो युवा व प्रौढ़ हो चुके हैं, जिनको ऐसे संस्थानों में अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला, वे भी क्या इसप्रकार से जिनवाणी का अध्ययन कर सकते हैं ?" अमित ने पूछा।

"हाँ-हाँ क्यों नहीं। युवा व प्रौढ़ भाई-बहिनों के लिए घर बैठे 'मुक्त विद्यापीठ' द्वारा शास्त्री एवं परमागम ऑनर्स का पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है। अनेक संस्थानों से पत्राचार द्वारा जैनधर्म के प्रारंभिक ज्ञान से लेकर समयसार आदि ग्रंथों को भी पढ़ाया जा रहा है, जिसका लाभ सबको लेना चाहिए।

मित्रो! 'जभी जाग जाओ तभी है सबेरा' की कहावत को ध्यान में रखते हुए जिससे, जब, जैसी भी शुरुआत की जा सके अवश्य करना चाहिए, संकोच नहीं करना चाहिए। संकोच पाप करने का करें, अज्ञानी बने रहने का करें; ज्ञान प्राप्ति में क्या संकोच ? ज्ञान तो आनन्दकारी है। दौलतरामजी ने कहा है -

ज्ञान समान न आन जगत में सुखकौ कारन।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारन।।
तातैं जिनवरकथित तत्त्व अभ्यास करीजे।
संशय-विभ्रम-मोह त्याग आपौ लखि लीजिये।।

मित्रो! समय हो रहा है; मैं अंत में कहना चाहूँगा कि सच में हम

सभी सुख चाहते हैं। **सुख प्राप्ति का साधन संयोग नहीं, धर्म है। धर्म की प्राप्ति तत्त्वज्ञान से और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति स्वाध्याय से होगी।** आपमें से जो स्वाध्याय-सभा में आ सकते हैं, वे स्वाध्याय-सभा में आयें, छोटे-छोटे बच्चों को पाठशाला भेजें और जिनको संस्थानों में भेज सकते हैं, उन्हें संस्थानों में भेजें। बच्चे से लेकर बूढ़े तक कोई भी तत्त्वज्ञान से दूर न रहें, कोई भी अज्ञानता से होने वाला दु:खमय जीवन न जियें। हम सभी शाश्वत सत्य तत्त्व का ज्ञान कर, समझकर मोक्षमार्ग में लगें - इसी भावना से आज की बात समाप्त करता हूँ।''

जोरदार करतल ध्वनि व भगवान महावीर स्वामी के जयघोष के साथ सभा सम्पन्न हुई। विवेककुमारजी दोपहर को भोजन करके इन्दौर के लिए रवाना हो गये।

○○○

जीवन की सार्थकता

अगणित जीव जन्म लेकर यहाँ रोते और रुलाते हैं।
धन्य वही प्राणी है जग में, जो हँसते और हँसाते हैं।।
तत्त्वज्ञान बिन समता ना हो, समता बिन ना मिले खुशी।
राग-द्वेष जो करते रहते, उनके मुख पर नहीं हँसी।।
सब जीवों से साम्य भाव रख, भेद नहीं देखो कुछ भी।
कोई न चाहे दुखमय जीवन, नित सुख चाहें जीव सभी।।
विविध वर्ण के वस्त्रों से ज्यों मनुज ना होते विविध प्रकार।
तन-धन के संयोगों से त्यों जीव न होते विविध प्रकार।।
वस्त्रों से ज्यों मनुज भिन्न है, त्यों तन से है चेतन भिन्न।
पर से भिन्न सदा ही रहता, गुण पर्यय से सदा अभिन्न।।
अनगिन जन्म लिए पर चेतन तन से भिन्न नहीं देखा।
इसीलिए तो बंधु! अब तक मिटी नहीं दुखमय रेखा।।

14

जून माह की दिनभर की गर्मी कम होने के बाद सायंकाल जब मित्रमण्डली तालाब किनारे घूमने निकली तब आसमान साफ था, ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। तालाब में पानी कुछ कम हुआ था, फिर भी हवा के कारण उठती हुई तरंगें सबका मन मोह रही थीं। पर्यावरण प्रसन्न था और सेठ लालचन्दजी के चेहरे पर भी एक अलग प्रकार की प्रसन्नता झलक रही थी, जिसे देखकर स्वरूपचन्दजी ने कहा "सेठ साहब! क्या बात है? आज का ऊर्जावान व्याख्यान सुनकर चेहरे पर कुछ ज्यादा ही प्रसन्नता छा रही है।"

"नहीं-नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं है; विवेकजी का विवेकपूर्ण व्याख्यान तो हम सभी ने सुना है और आनंदित हुये हैं।"

"सुना तो सबने है पर आपके चेहरे पर एक अलग तरह का संतोष दिखाई दे रहा है।" ज्ञानचन्दजी ने कहा।

"व्याख्यान सुनकर संतोष हुआ है - यह बात तो सही है। पण्डितजी! जैसा कि आपने कहा था कि मेरी भावना सफल करने का निमित्त उपस्थित होगा। मुझे लगता है कि विवेककुमारजी के रूप में आपने ही वह निमित्त मिलाया है, इसके लिए मैं व्यक्तिगतरूप से आभारी हूँ।"

"अरे वाह! क्या बात है? क्या बच्चे-बहू सब आपकी इच्छा के अनुसार अब संस्थान में प्रवेश लेने तैयार हो गये।"

"अभी पूरी तरह हुये तो नहीं हैं, पर हो जायेंगे ऐसा लग रहा है। आज दिन भर बेटे-बहू, पोते-पोती इसी संबंध में बात करते रहे, मैं तो दूर कमरे में बैठा सुनता रहा। अभी सायंकाल चिरंतन आया था तो उसने कहा दादाजी! आपकी इच्छा है तो मैं शास्त्री का कोर्स करने चला

जाऊँगा। पर मैंने कहा कि भइया! मेरी क्या इच्छा है? वह तो भूल जाओ, मेरी कोई इच्छा नहीं है। जिसकी जहाँ मर्जी है, वहाँ पढ़ो। आपको सी.ए. बनना, सी.ए. बनो या डॉक्टर; तुम्हारी जिंदगी है, तुम होशियार हो, तुम स्वयं ही अपना निर्णय करो।''

''यह आपने अच्छा कहा। बच्चों और उनके माता-पिता को स्वयं ही निर्णय करने दो।'' ज्ञानचन्दजी ने कहा।

''मन में तो मेरे है ही यदि वे संस्थान में पढ़ने जायेंगे तो सबसे अधिक खुशी मुझे ही होगी; पर मैंने सोचा कि अब जब माहौल बन ही रहा है तो मैं अपने ऊपर क्यों लूँ? सब सोच-विचार कर ये स्वयं ही निर्णय करें तो सही है।''

''सेठ साहब! आप भी पहुँचे हुये हो, कम नहीं हो। पहले अपनी इच्छा बताकर प्रवेश दिलाना चाहते थे; अब स्वयं बचकर उनकी मर्जी से जाने देना चाहते; जिससे कि न तो बच्चे और न ही उनके मम्मी-पापा कभी यह उलाहना दे सकें कि आपके कारण बच्चा दूर हो गया या वह सी.ए. नहीं बन पाया।

एक बात और बता दूँ, आपके घर ही माहौल नहीं बन रहा है मेरे घर तो विवेककुमारजी रुके भी थे तो मेरे बेटा-बहू और पोते-पोती तो इकदम उन पर लट्टू हो गये हैं। जो अभी 8 साल का पोता है, वह भी कह रहा है मैं भी शास्त्री बनूँगा, प्रवचन करूँगा। इसी तरह घर-घर में चर्चा हो रही होगी। यदि सागर शहर से देश के अलग-अलग संस्थानों में प्रतिवर्ष 8-10 बालक-बालिकायें जाने लग जायें तो बच्चे तो सुधरेंगे ही; उनके कारण उनके माता-पिता भी सुधरेंगे। पण्डितजी! आपके द्वारा किया गया यह प्रयास सच में सार्थक रहा।'' स्वरूपचन्दजी ने कहा।

''मेरा क्या प्रयास? यह तो आप सबकी भावना व युवावर्ग का

सहयोग उत्साह था जो इस प्रकार का संवाद हो सका। हम तो चाहते ही यह हैं कि **घर-घर चर्चा होय धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जाये।**

रात के प्रवचन के समय आज सुबह के व्याख्यान के प्रभाव से कुछ किशोर व युवाओं की संख्या भी उपस्थित थी; अतः नियमित विषय न चलाकर प्रातः विवेकजी के व्याख्यान की ही सहज में चर्चा चल पड़ी।

"यदि हम अपने जीवन में शान्ति चाहते हैं, हम अपनी संस्कृति सुरक्षित रखना चाहते हैं, अपने इस एक भव में भविष्य के अनंत भवों से बचना चाहते हैं तो हमें नियमित स्वाध्याय करना ही चाहिये। मात्र पढ़ना ही नहीं चाहिये, तदनुसार अपनी श्रद्धा व आचरण हो ऐसा प्रयास करना चाहिये। घर पर ऐसा ही वातावरण रहे, इसके लिए अपनी अगली पीढ़ी को भी संस्कारित करना चाहिये। जितनी आसानी से बच्चे सीख व समझ सकते हैं; उतनी आसानी से बाद में कोई समझना चाहे तो नहीं समझ सकता।" पण्डित ज्ञानचन्दजी ने कहा।

"यह बात तो सही है पण्डितजी! हमारे मन में भी आता है कि पोते को भेज दें; परन्तु एक ही पोता है, पहले तो अनेक बेटे होते थे तो किसी को कहीं भी भेज दो; पर अब बहुत सोचना पड़ता है।" बालचन्दजी ने कहा।

"बालचन्दजी! जब 4-6 संतान होती थीं तब भी लोग इतनी दूर पढ़ने-कमाने नहीं भेजते थे; पर आज 1 ही संतान है तो भी इन्दौर, मुम्बई, पुणे पढ़ने भेज रहे हैं और कमाने देश-विदेश में कहीं भी भेज रहे हैं; पर जब धार्मिक संस्कारों की बात आती है तो सबको दूरी दिखने लगती है; क्योंकि अभी मोक्ष दूर है, सुख दूर है। रही बात एक ही बेटा होने की तो सुभाषितकार ने कहा है -

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।।

सौ मूर्ख पुत्रों से एक गुणवान पुत्र होना अच्छा है; जैसे रात्रि में एक चन्द्रमा अंधकार दूर कर देता है, पर लाखों तारे अंधकार दूर नहीं कर पाते।

इसलिए बालचन्दजी अधिक पोते-पोतियाँ होने की इच्छा मत करो; पर जो हैं वे सुपुत्र बनकर अपना और आपका नाम रोशन करें - यही भावना होनी चाहिये।''

''आपने कहा कि एक सुपुत्र होना ही पर्याप्त है; पर सुपुत्र किसे कहेंगे ?'' स्वरूपचन्दजी ने मुस्कराते हुये पूँछा।

''मनीषी सुपत्र का लक्षण बतलाते हुये कहते हैं -

एक एव वरं पुत्रो, यः सन्मार्ग परायणः।
विचार चतुरो धीमान्, पितृ-मातृ सुखप्रदः।।

जो सन्मार्ग पर चलने वाला हो, विचार करने में चतुर हो, बुद्धिमान हो और जो माता-पिता को सुख देने वाला हो - ऐसा एक पुत्र ही श्रेष्ठ है अर्थात् वही सुपुत्र है।

जो सत्य-अहिंसा, नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा के मार्ग पर चले, जो अन्याय-अनीति, अभक्ष्य, अंधविश्वासों से दूर हो, जो हित-अहित, पूज्य-अपूज्य, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विचार करने में चतुर हो और जो ऐसे काम करे जिससे कि माता-पिता प्रसन्न रहें; अपने आचरण से माता-पिता का शर्म से सिर झुक जाये - ऐसे काम नहीं करे, वही सुपुत्र है।

जो जिनशासन के बताये मार्ग पर चले, उसमें ये सब गुण स्वतः ही उत्पन्न होते हैं। मैं एक बात इस अवसर पर यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि अनेक माता-पिता को ऐसा लगता है कि बच्चों को यदि पाठशाला भेजेंगे या संस्थान में पढ़ने भेज देंगे तो फिर वे त्यागी हो जायेंगे, वे क्या खायेंगे-पियेंगे ?

आप सभी इस बात को अच्छी तरह समझ लें; जिनवाणी यह नहीं कहती कि पानी मत पिओ, पर छानकर पिओ–भोजन न करो – ऐसा नहीं कहतीं; पर यह कहती हैं कि दिन में शुद्ध सात्त्विक भोजन करो; व्यापार नहीं करो – ऐसा नही कहा, पर हमारा चरणानुयोग कहता है न्यायपूर्वक कमाओ, विवेक से खर्चो तो निराकुलता से रहोगे; संतोषी जीवन जिओगे तो टेन्शन नहीं होगी।

क्या आप नहीं चाहते कि आपके बच्चे टेन्शनलैस रहें, वे अनावश्यक टेन्शन लेंकर ब्लडप्रेशर व शुगर के मरीज न बनें, भाई–भाई धन–संपत्ति के पीछे न झगड़ें? यदि दुर्भाग्य से हानि हो जाये तो आत्महत्या करने न भागें और सद्भाग्य से अपार वैभव या पद मिल जाये तो वे अहंकार के पहाड़ पर चढ़कर अपने ही लोगों को चींटी जैसा न समझने लग जाये? कषाय–पापों से भयभीत रहकर सात्त्विक जीवन जियें; बस जिनवाणी की और हमारी, सभी बच्चों से इतनी ही अपेक्षा है।

जो अपनी आयु के मध्यान्तर पार कर चुके हैं, वे सब यही चाहते हैं; परन्तु बेटे–बहू और पोते–पोती इस सत्य को नहीं स्वीकारते – इस बात को लेकर द्वन्द्व चलता है, कलह होने लगती है तो मैं उन दादा–दादी से भी कहना चाहूँगा कि सब अपनी योग्यता से योग्य काल में ही समझते हैं–

समझाने से कोइ न समझे, सब समझें निज मति अनुसार।
अतः विवाद करो मत भाई, नहीं किसी की जीत न हार।।

इसलिए परिवार में अशान्ति का वातावरण न बने – ऐसा प्रयास करना। भावना तो यही हो कि सब समझें पर कोई न समझे तो कषाय करके अपने परिणाम नहीं बिगाड़ना। आप लोग विचार करना। आज तो रविवार होने से नये लोग आये थे; अतः यह विषय चल पड़ा कल से अपना नियमित विषय प्रारंभ करेंगे।

15

विमलादेवी स्वाध्याय प्रेमी थीं, सरल थीं; पर उनकी एक बुरी आदत, बेटी के परिवार व इनके परिवार में कलह/क्लेश का कारण बन जाती थी। विमलादेवी लगभग रोजाना ही सुरक्षा को फोन करके आज क्या किया? आज क्या बनाया? आज कहाँ गई थीं? आदि पूँछती रहतीं और यह करना, यह पहिनना, बच्चे को ऐसे कपड़े पहिनाना, कब सुलाना, कब जगाना आदि राय देती रहतीं और यदि यह कहना भूल जातीं तो सुरक्षा फोन करके हर बात पूँछती रहतीं।

हद तो तब हो जाती कि जब विनोदजी या विनीताजी सुरक्षा को कोई काम करने के लिए या कहीं आने-जाने के लिए कहतीं और सुरक्षा कहती कि "ठीक है बाबूजी! मैं मम्मी से पूँछ लेती हूँ।" तब इनको बहुत बुरा लगता।

आज तो विनीताजी ने गुस्से में कह भी दिया "हम जो कह रहे हैं, वह बिना सोचे-समझे ही कह रहे हैं क्या? तुम्हारे बाबूजी बेबकूफ हैं, जो उन्होंने यह काम करने को मना किया है अब तुम मम्मी से पूँछोगी और वे जो कहेंगी, वही करोगी तो या तो अपनी मम्मी को यहाँ बुला लो या फिर तुम वहीं चली जाओ।"

सुरक्षा ने इस बात का अभिप्राय तो समझा नहीं और रोते हुये मम्मी को फोन कर दिया कि सास झगड़ रही है; जिससे विमलादेवी यहाँ रोने लगीं और गुस्से में सुरक्षा ने जबलपुर में भोजन नहीं किया, जिसके दुःख में उनसे सागर में भोजन नहीं किया गया।

सरिता ने विमलाजी को भोजन करने के लिए मनाया, लालचंदजी ने भी भोजन करने के लिए समझाया; पर विमलादेवी ने भोजन नहीं

किया; तब सरिता ने पूँछा मम्मीजी! आखिर हुआ क्या है? आप रो क्यों रहीं हैं? और भोजन क्यों नहीं कर रहीं हैं?''

विमलादेवी ने सभी बात विस्तार से सबसे कही। तब सरिता ने बहुत ही विनम्रता से कहा ''मम्मीजी! आप बड़ी हैं, आप सब समझती हैं पर मैं एक बात आपसे कहना चाहूँगी। आप जो सुरक्षा के घर में हर बात में दखल करती हैं, यह अच्छी बात नहीं है।''

''क्यों, क्या वह मेरी बेटी नहीं है? मैं उसकी माँ नहीं हूँ? मैं क्यों नहीं कुछ बता सकती या वह क्यों नहीं कुछ पूँछ सकती?'' रोते हुये विमलादेवी बोलीं।

''मम्मीजी! सुरक्षा आपकी ही बेटी है; पर ध्यान रखें वह अब उनकी बहू है। अब वह अपने यहाँ मेहमान बनकर आती है, जबकि वहाँ की मालकिन है और उसकी सास उस घर की बड़ी मालकिन हैं। आप हमसे भी तो यही कहती हो कि अब हम दोनों बहुयें इस घर की मालकिन हैं, तब फिर हर बात में हमें बीच में नहीं बोलना चाहिये।''

''इसका मतलब मेरा अब उस पर कुछ अधिकार नहीं रह गया?''

''ऐसी बात नहीं मम्मीजी! पर आप ध्यान कीजिये जब आपने अनीशा को एक साड़ी लेने के लिए कहा था और उसकी माँ ने टेलीफोन पर मना किया तब आपने डाँटकर कहा था कि अनीशा माँ से कह दो हमारे घर के मामले में वे न बोलें। जब तुम नागपुर जाओगी तब तुम्हारी माँ को जो पसंद हो, वही साड़ी दिलायें; पर यहाँ जो मैं कह रहीं हूँ, वही साड़ी खरीदना और पहिनना है।''

''हाँ कहा तो था।''

''बस तो मम्मीजी! वही बात तो यहाँ पर है। आप जब बात-बात में अपनी राय दोगी तो सुरक्षा के सास-ससुर को बुरा लगेगा ही।''

''मैं ही थोड़े हमेशा फोन करती हूँ, अब सुरक्षा का फोन आये तो मैं राय भी नहीं दूँ?''

''हाँ मम्मीजी! यदि आप सुरक्षा को सुखी देखना चाहती हैं, उसके परिवार में शान्ति चाहती हैं तो यदि उसका भी फोन आये तब भी कह दीजिए कि बेटा! अब तुम्हारे मम्मी-पापा वहीं पर ही हैं, उनसे ही पूँछो वे जो कहें, वही करना।''

''अच्छा! तो मैं सुरक्षा को ऐसा कह दूँ?''

''सरिता! तूँ तो अपनी सास को बड़ी भारी सजा दे रही है, इसके मुँह से यह बात कैसे निकलेगी? यह तो समझदारी का पूरा ठेका लेकर बैठी है।'' लालचन्दजी ने कहा।

''नहीं बाबूजी! मेरी मम्मीजी बहुत अच्छी हैं, समझदार हैं, आप उनका मजाक नहीं उड़ायें। मम्मीजी! आप इस घर की बड़ी मालकिन हैं, आपकी आज्ञा मानने हम दो बहुयें तो हैं, आप हम पर आज्ञा चलाइये, हमें शिक्षा दीजिये; पर अब बेटी को उसके घर में जाकर शिक्षा मत दीजिये।''

''ठीक है बेटा! अब मैं ऐसा ही करूँगी।''

''मम्मीजी! मैंने कोई छोटे मुँह बड़ी बात कही हो तो मुझे माफ करना।''

''नहीं बेटा! तुमने कुछ भी गलत नहीं कहा, मैं ही अभी तक गलत सोचती थी।''

''आज तो मेरी दीदी, सास की भी सास बन गईं।'' रसोई में से हँसते हुये अनीशा ने कहा।

''तूँ भी आजा! तूँ भी सास बन ले मेरी। पर ध्यान रखना सरिता ने यह कहा है कि बड़ी मालकिन तो मैं ही रहूँगी, समझ लेना।'' विमलादेवी ने भी गुस्सा दिखाते हुये मजाक में कहा।

"देखो विमला! हम कितने भाग्यशाली हैं कि अपनी बहुयें कह रही हैं कि आप हमें सिखाओ, हमें आज्ञा दो। जबकि दूसरे परिवारों में तो बहुयें आज्ञा दे रही हैं और घर में रहने की मजबूरी में सास-ससुर उनकी आज्ञा मान रहे हैं। यह धर्म का प्रभाव है कि हमें ऐसा परिवार मिला।

विनोदजी व विनीताजी का स्वभाव भी बहुत अच्छा है। गलती तुम्हारी ही रही है, मैंने तो कई बार कहा कि रोजाना फोन मत किया करो, हर बात पर निर्देश मत दो; पर मानी नहीं और जब आज क्लेश बढ़ गया तो बेटी दु:खी हो गई, उसने अभी तक भोजन नहीं किया और मुझे विश्वास है कि विनीताजी ने भी भोजन नहीं किया होगा; क्योंकि वह कितनी भी नाराज हो जायें; पर सुरक्षा को बहुत प्रेम करती हैं, तुम अभी फोन करके उनसे क्षमा माँग लो और उनसे कह दो कि सुरक्षा वही करेगी, जो वे चाहेंगी, अब बहू या बेटी जो भी है आपके पास है। सुरक्षा को भी समझाकर भोजन करने का बोल दो"

"आप ठीक कह रहे हैं। बेटा! तुम बाबूजी की थाली लगाओ मैं तब तक समधनजी से बात करके आती हूँ।"

जबलपुर में सेठ लालचन्दजी-विमलाजी की पुत्री सुरक्षा के ससुर शाह विनोदकुमारजी व सास विनीताजी सरल स्वभावी व धार्मिक प्रवृत्ति के थे पति डॉ. सुलभ जैन प्रतिदिन मंदिर जाने तक ही सीमित थे; इसके अतिरिक्त कुछ भी करने का उनके पास समय ही नहीं रहता था। सुलभ का हॉस्पिटल जबलपुर में काफी नाम कमा चुका था। सुलभ नेत्र विशेषज्ञ थे। अपने अस्पताल में सुलभ रोजाना ही लोगों के जड़ नेत्र खोलकर नाम कमा रहे थे; पर ज्ञान नेत्र अभी स्वयं के बन्द थे और जब तक ज्ञान नेत्र न खुले हों तब तक यथार्थ वस्तुस्वरूप जानने में नहीं आता।

विनोदजी का अपना सर्राफे का अच्छा काम था, लाखों रुपये की आय थी। वे आय के अनुसार सामाजिक-धार्मिक कार्यों में अर्थ-सहयोग भी किया करते। प्रतिदिन ही प्रातः अभिषेक, शांतिधारा व नियमित पूजन करना आपका नित्य कर्तव्य था। विनीताजी भी आपके साथ ही मंदिर पहुँचतीं; क्योंकि उनका भी शान्तिधारा देखने का नियम था। आप दोनों का मत था कि कुछ करेंगे तभी तो मोक्षमार्ग में आगे बढ़ेगें; मात्र किताब खोलकर पढ़ते रहने से तो कुछ नहीं होने वाला।

सागर में लालचन्दजी व विमलाजी स्वाध्याय-प्रेमी थे। दोनों ही परिवारों में रिश्तेदारी तो थी ही; अतः बहुत अच्छा मृदुल व्यवहार भी था; परन्तु धार्मिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो दोनों ही समधी तो थे; परन्तु दोनों की धी (बुद्धि) सम नहीं थी; अतः कभी-कभी दोनों में ही प्रत्यक्ष या फोन पर मीठी नोंक-झोंक भी हो जाती थी; पर मतभेद होते हुये भी मनभेद कभी नहीं हुआ; क्योंकि दोनों ही जानते व मानते थे कि सब अपने मति-अनुसार ही समझते हैं, इसमें जबरदस्ती न तो की जा सकती है, न ही की जानी चाहिए।

एक बार विनोदकुमारजी-विनीताजी सागर आये तो समधीजी के साथ अभिषेक-पूजन करके स्वाध्याय में भी बैठ गये। विनोदजी पण्डित ज्ञानचन्दजी से बोले "पण्डितजी साहब! हम सब जैन हैं, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को मानते हैं तो हमें सम्यग्दर्शन तो है ही! अब तो वह उपाय बताइये कि जिससे हमारे जीवन में चारित्र आ जाये और हम मोक्षमार्ग में आगे बढ़ सकें।"

"यह तो हमारा सौभाग्य है कि हमें 18 दोषों से रहित वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी देव, वीतरागता की पोषक जिनवाणी व नग्न दिगम्बर वीतरागी गुरु प्राप्त हुये हैं और ऐसे देव-शास्त्र-गुरु को ही मानने और अन्य को नहीं मानने को चरणानुयोग में सम्यग्दर्शन कहा गया है।

पर विचारणीय यह है कि क्या हम इन्हें देव-शास्त्र-गुरु इसलिये मानते हैं क्योंकि हमारे माता-पिता इनको मानते थे? क्या हम इसलिए मानते हैं कि इन जैसा अन्य कोई हमें दिखाई नहीं देता? भगवान का भव्य समवसरण है, गुरु बड़े त्यागी-तपस्वी हैं। यदि इन कारणों से मानते हैं तो हमने तो देव-शास्त्र-गुरु का सच्चा स्वरूप जाना ही नहीं है। हम तो मात्र माता-पिता की परंपरा का या बाहर के वैभव की महिमा समझकर मान रहे हैं।

मात्र माता-पिता की परंपरा पर चलने से धर्म हो जाये तब तो अन्य धर्म वाले भी इसी तरह से अपने धर्म का पालन करते हैं तो वे भी धर्मात्मा हो जायेंगे। मात्र बाहर के वैभव से भगवान मानेंगे तो वह वैभव तो पुण्य के उदय से प्राप्त हुआ है। वह तो जड़ वैभव है। वह आत्मा का वैभव व आत्मा का स्वरूप नहीं है; इसलिए जब तक भगवान के अंतरंग स्वरूप का निर्णय आगम और युक्ति से नहीं किया जाये, तब तक उनके सच्चे स्वरूप का निर्णय न होने से चरणानुयोग या व्यवहार नय से भी सम्यग्दर्शन नहीं है, तो फिर चारित्र की बात तो कहाँ से आई?

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को न मानकर; अन्य रागी-द्वेषी देवी-देवताओं को मानना, मंत्र-तंत्र से भला हो जायेगा - ऐसा मानना या वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु को सरागी जैसा मानकर, कर्त्ता-धर्त्ता मानकर पूजना तो गृहीत मिथ्यात्व कहलाता है। देव-शास्त्र-गुरु का सही स्वरूप जानने-मानने से गृहीत मिथ्यात्व तो छूट जाता है; पर अगृहीत मिथ्यात्व तो बना ही रहता है, इसलिए वास्तव में तो जब तक सात तत्त्वों का स्वरूप जानकर, आत्मा का अनुभव न हो तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता।''

''तो फिर हम जो मंदिर जा रहे, पूजन कर रहे और अभक्ष्य का त्याग कर रहे हैं; वे सब बेकार हैं?''

"नहीं! बेकार नहीं हैं, ये सब किये बिना तो हम जिनवाणी सुनने के ही योग्य नहीं होंगे, इसलिये ये तो आवश्यक ही है; पर इतना करना मात्र ही सम्यग्दर्शन नहीं है। ये सब कार्य तो हमने भव-भव में अनेकों बार किये, आत्मानुभव के बिना यदि देव-शास्त्र-गुरु को मानना मात्र सम्यग्दर्शन होता तो द्रव्यलिंगी बनकर हमने मुनिव्रत लिया तो क्या हम उस समय देव-शास्त्र-गुरु को नहीं मानते थे? तब तो सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र हो ही गया मान लेना चाहिये; पर आगम तो कहता ऐसा आचरण तो अनेक बार धारण कर संसार-परिभ्रमण ही किया है, इसलिए सर्वप्रथम आगम के अभ्यासपूर्वक तत्त्वज्ञान करना चाहिए।"

"क्या प्रतिदिन शास्त्र पढ़ना ही तत्त्वज्ञान है?"

"नहीं; अकेला शास्त्र पढ़ लेना तत्त्वज्ञान नहीं है। आचार्यदेव कहते हैं-

येनात्मा बुध्यते तत्त्वं, मनो येन निरुध्यते।
पापाद्विमुच्यते येन, तत्त्वज्ञानं ज्ञानिनो विदुः ।।

जिसके द्वारा हमें तत्त्व का ज्ञान हो, मन विषयों की ओर जाने से रुके और हम पापों से बचें उसे ज्ञानियों ने तत्त्वज्ञान कहा है।"

"यह तत्त्वज्ञान तो समझ में आया, पर तत्त्व क्या कहलाता है?"

"जो वस्तु जैसी है, उसका जो स्वभाव है, वह उसका तत्त्व कहलाता है। अग्नि की उष्णता, शक्कर की मिठास, जीव का ज्ञान, राग का आकुलतास्वरूप है। यही उसका तत्त्व है। यदि हम तत्त्व समझ लें तो मन अपने आप रुकेगा। हमें मालूम है कि बच्चों का स्वभाव खेलना-कूदना, चंचलता है तो हम उन्हें खेलते देखकर दुःखी नहीं होंगे, गुस्सा नहीं करेंगे। महिलाओं का स्वभाव सहज ही किसी भी बात पर रोने लगना है तो अब कषाय क्यों करना? और जीव का स्वभाव मात्र जानना है वही उसका तत्त्व है तो उससे अन्य कार्य करने की अपेक्षा करना

गलत है, राग से आकुलता ही होती है तो राग करके सुख चाहना तो अज्ञानता है।

इस तरह वस्तु का भाव, वह तत्त्व है और जिससे वस्तु का तत्त्व जाना जाये, वही तत्त्वज्ञान है।"

"तब फिर पण्डितजी! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र का सच्चा स्वरूप क्या है?"

ज्ञानचन्दजी ने मुस्कराते हुय कहा - "शाहजी साहब! एक दिन में ही सब कुछ नहीं बताया जा सकता। आप यहाँ कुछ दिन रहिये; अपने समधी का आतिथ्य स्वीकार कीजिये या फिर आगम का अभ्यास कीजिये तो धीरे-धीरे सब समझ में आ जायेगा; अभी तो समय हो गया, इसलिए यहीं विराम लेते हैं।"

रात में घर आकर दोनों ही समधियों में इस विषय पर काफी चर्चा हुई, जिससे विनोदजी बोले कि "मैं पूजन-पाठ आदि तो वर्षों से कर रहा हूँ; पर इससे तत्त्वज्ञान तो हो ही नहीं रहा, न ही ज्ञान में कुछ नवीनता आई है। बस जो पहले दिन किया था वही बनी-बनाई पद्धति व रटे-रटाये पाठ ही पढ़ते आ रहे हैं। अब समझ में आ रहा है कि बिना स्वाध्याय के ज्ञान-नेत्र नहीं खुलेंगे। भाईसाहब! अब मैं भी स्वाध्याय किया करूँगा। यदि कुछ समझ में नहीं आयेगा तो आप समझाना।" विनोदजी ने कहा।

"शाहजी साहब! आप कुछ दिन यहाँ पर ही रहिये, जिससे ज्ञानचन्दजी का आपको पूरा लाभ मिलेगा।" विमलादेवी ने कहा।

"नहीं; अभी तो हम अधिक नहीं रुक सकते, सुबह की गाड़ी से जाना ही है; फिर कभी आयेंगे। आज की चर्चा में और कुछ समझ में आया या नहीं आया; पर इतना जरूर समझ में आया कि हम जितना और

जिसे धर्म समझे हुये हैं, उतना और वैसा धर्म नहीं है।'' विनोदजी ने कहा।

एक दिन के स्वाध्याय में ही समधियों की 'धी' सम होती दिख रही थी। सच ही कहा है कि ज्ञान सर्व समाधान कारक है।''

प्रातः विनोदजी को विदा करते समय सचिन–राजीव ने तिलक कर व योग्य उपहार देकर, विनय पूर्वक पैर छुये। सरिता–अनीशा ने विनीताजी का योग्य सम्मान किया; जिससे दोनों ही बहुत प्रमुदित हुये। लालचन्दजी–विमलाजी ने भी गले लगकर योग्य अभिवादन करते हुये पुनः पधारने हेतु प्रेम भरा निमंत्रण दिया।

लालचन्दजी–विमलाजी द्वारा दिये गये विनम्रता के संस्कार दोनों बेटों–बहुओं और पोते–पोतियों में कूट–कूट कर भरे थे। उन्हें पता था कि रिश्ते में जो पूज्य हैं – ऐसे बहिन–बहिनोई, उनके माता–पिता, चाचा–चाची, बुआ–फूफाजी आदि और जो अपने से उम्र में बड़े हैं, जो अपने माता–पिता के समान हैं; उनके चरण स्पर्श करके आशीर्वाद लेना चाहिये। आज की पीढ़ी किताबी ज्ञान में बहुत बढ़ रही है; परन्तु व्यावहारिक ज्ञान से दूर होती जा रही है; जबकि पारिवारिक जीवन को सुखी व गरिमापूर्ण बनाने के लिये यह ज्ञान भी आवश्यक है।

विवेककुमारजी के उत्साहित करने वाले व्याख्यान, पण्डित ज्ञानचन्दजी की प्रेरणा एवं लालचन्दजी की भावना के अनुसार लगभग 1 सप्ताह के गहन विचार–विमर्श के पश्चात् उनके तीनों ही बालकों और साथ ही सागर के अन्य 5 बालक–बालिकाओं का अपनी–अपनी रुचि के संस्थानों में प्रवेश हो गया – यह सागर की स्वाध्याय सभा के लिए भी बड़ी उपलब्धि हुई; क्योंकि जिन परिवारों के बालक–बालिकायें पढ़ने गये थे, उनके साक्षात्कार के समय सभी अभिभावकों से निवेदन करते

हुये प्रेरणा दी गई थी कि आप अपनी संतान को धार्मिक संस्कार देने के लिए यहाँ तक पढ़ने भेज रहे हैं तो आप भी उन संस्कारों से स्वयं वंचित न रहें; अन्यथा आप स्वयं और आपके बच्चे भी कभी न कभी शर्मिन्दा होंगे। यदि आप भी स्वाध्याय में जायेंगे तो आप अपने बच्चों के साथ चलते जायेंगे, उनकी समस्याओं का आगम-सम्मत समाधान भी कर पायेंगे।

इस प्रेरणा के फलस्वरूप अभिभावक कोई सुबह तो कोई रात में स्वाध्याय में आकर रुचिपूर्वक सुनने लगे थे और पाठशाला में भी छात्रों की संख्या बढ़ गई थी। इन छात्रों में से ही अगले वर्ष संस्थानों में पढ़ने के लिए कुछ छात्र जायेंगे।

इक दिन हमको जाना है

धीर-वीर-गंभीर चले गए, इक दिन हमको जाना है।
जाने से पहले पर हमको, निजहित करके जाना है।।
हार्टफेल-टीवी-कैंसर तो, जाने का एक बहाना है।
जो भी जग में आया बंधु, उसे एक दिन जाना है।।
आए थे जिस दिन हम जग में, निज-पर का कुछ ज्ञान नहीं।
अब तो चेतन प्यारे जागो, निज की कर पहचान यहीं।।
तन का पोषण करते-करते, सारा जीवन बीता है।
जड़ द्रव्यों से भरना चाहा, पर अब तक मन रीता है।।
जग के पद भी तो अनित्य हैं, नित्य एक है शुद्धातम।
निज पद के आराधन बिन ही, जग में घूमे बहिरातम।।
धन संग्रह के पीछे भागा, निज वैभव का भान नहीं।
परिजन-पुरजन का हित चाहा, निज हित का कुछ ज्ञान नहीं।।
जन्म-मरण व सुख-दुख में दे सकता कोई साथ नहीं।
भाव शुभाशुभ जो हम करते उनका ही फल पाते यहीं।।
अशुभ भाव से बचकर बंधु शुभ भावों में तुम आओ।
शुभ भाव भी हेय समझकर, शुद्ध भाव की रुचि लाओ।।
निज कर्त्तव्य कभी ना भूलो, अरु कर्तृत्व सदा त्यागो।
पर का अहंकार तज करके, निज आतम में ही जागो।।

16

सरिता के पिता सतीश उज्जैन में एक सफल उद्योगपति थे। माँ सपना भी एक समाज-सेविका के रूप में अनेक सामाजिक संगठनों से जुड़ी हुई महिला थीं। सरिता के दो छोटे भाई थे - बड़ा मयंक व छोटा प्रसून। दोनों ही पढ़ने में प्रतिभाशाली थे। मयंक ने एम.डी. किया था और उसका विवाह ग्वालियर निवासी डॉ. शुभांशी जैन से हुआ था।

सतीशजी तो चाहते थे कि मयंक का विवाह उनके ही परिचित एक मित्र की पुत्री से हो; परन्तु जैसा कि आज के वातावरण में हो रहा है कि ऐसी उच्च शिक्षा पाने वाले लड़के-लड़कियाँ अपने साथ में पढ़ने वालों को ही पसन्द कर लेते हैं। मयंक व शुभांशी भी एक ही कॉलेज में पढ़ते थे। उनका पारस्परिक आकर्षण बढ़ा; अत: मयंक ने सतीशजी को अपनी पसंद बताई, जिसे इन्होंने भी सहर्ष स्वीकार किया; क्योंकि मयंक व शुभांशी एक ही पेशे से तो थे ही; साथ ही समाज व धर्म की दृष्टि से भी अनुकूल थे।

मयंक ने स्वयं ही माता-पिता को इस रिश्ते को पक्का करने के लिए कहा; जिससे लव-मैरिज भी पूरी तरह से अरेंज-मेरिज के रूप में ही सम्पन्न हुई। विवाह की सभी रस्में दिन में ही सम्पन्न हुईं। शुभांशी का परिवार भी जैनाचार के अनुसार ही वैवाहिक कार्यक्रम सम्पन्न करना चाहता था। वे यह जानते-मानते थे कि हम लौकिक पद्धति भी वही स्वीकार करेंगे; जिसमें मिथ्यात्व का पोषण न हो और हिंसा न हो। इस तरह दोनों ही परिवारों की सामाजिक व धार्मिक आस्थाओं के अनुसार ही कार्य सम्पन्न हुआ।

छोटे भाई प्रसून ने एम.बी.ए. किया था और पिताजी की ही फैक्ट्री

को सम्हालने लगा था। सतीश–सपनाजी ने बचपन से ही अपने बच्चों को पाठशाला में पढ़ने भेजा था। पौराणिक, ऐतिहासिक नगर उज्जैन के धार्मिक–आध्यात्मिक वातावरण का असर पूरे परिवार पर था। सरिता बेटी का विवाह सागर के स्वाध्यायप्रेमी परिवार में होने से इस विचारधारा को और अधिक बल प्रदान हुआ।

लोक में अनेक प्रकार के लोग हैं; जिनमें कुछ लोग ऐसे हैं जो सम्पन्न हैं और उनके रिश्तेदार भी सम्पन्न हैं – कुछ ऐसे हैं जो स्वयं तो सम्पन्न नहीं हैं; परन्तु जिनके रिश्तेदार सम्पन्न हैं। उसी तरह कुछ परिवार धार्मिक रुचि वाले हैं; पर रिश्तेदार रुचिवाले नहीं हैं। कुछ भाग्यशाली ऐसे भी हैं, जो स्वयं भी रुचिवाले हैं और रिश्तेदार भी रुचिवाले हैं। सतीश–सपना का परिवार दोनों तरह से ही भाग्यशाली था।

प्रसून का विवाह छतरपुर निवासी बड़कुल परिवार की सुयोग्य कन्या अस्मिता के साथ तय हुआ। रिश्ता पक्का करते समय सरिता ने कहा कि "बात पक्की हो उससे पूर्व हमारी कुछ शर्तें हैं। यदि वे मंजूर हों तो ही हम बात आगे बढ़ायें।"

बड़कुल परिवार सोचने लगा कि लड़का एम.बी.ए. है, उद्योगपति परिवार है; पता नहीं अब दहेज में क्या शर्त रखने वाले हैं ? यदि अपनी हैसियत में होगा तो हाँ कहेंगे; नहीं तो नहीं की बात।

सरिता ने कहा – "हमें भाई की शादी में आपसे गाड़ी–मकान या सोना–चाँदी नहीं चाहिये; परन्तु हम चाहते हैं कि मेरे भाई की शादी, मंगल–गान पूर्वक पंचपरमेष्ठी भगवन्तों की पूजन के साथ हो, सभी कार्यक्रम दिन में ही हों और भोजन में जमींकंद/द्विदल आदि का प्रयोग न हो। हम प्रीवैडिंग को पसंद नहीं करते; अतः हमसे यह अपेक्षा न रखी जाये और हमारा निवेदन है कि दिखावे पर फिजूलखर्ची न हो।"

बड़कुल परिवार तो इस शर्त को सुनकर इतना खुश हुआ कि उन्होंने हर्षाश्रुओं के साथ सहर्ष स्वीकृति दे दी। छतरपुर में इस प्रकार का वैवाहिक कार्यक्रम पहले कभी सम्पन्न नहीं हुआ था। इस तरह से दोनों ही परिवारों ने उत्साहपूर्वक सभी आयोजन करके समाज के बीच एक आदर्श प्रस्तुत किया था।

मयंक–शुभांशी के आर्या और आर्यन पुत्री–पुत्र तथा प्रसून–अस्मिता के सुखद–सुखदा, पुत्र–पुत्री थे। संयुक्त परिवार था। सभी प्रेम से रहते थे।

मयंक और शुभांशी तो प्रातः से ही तैयार होकर नाश्ता करके अपने हॉस्पिटल चले जाते और सतीश और प्रसून नाश्ता करके फैक्ट्री चले जाते। यदि सतीशजी को कोई सामाजिक काम होता तो प्रसून अकेले ही पूरा काम सम्हाल लेता। सपना और अस्मिता घर की पूरी व्यवस्था देख लेते। अस्मिता भी इंजीनियर थी; अतः कभी आवश्यक होता और सतीशजी काम से बाहर जाते तो अस्मिता भी प्रसून के साथ फैक्ट्री जाकर सहयोग करती थी। बच्चे सभी स्कूल चले जाते।

इस व्यस्तता में भी एक नियम था कि रविवार को पूरा परिवार क्षीरसागर स्थित मंदिर में पूजन के लिए जाते और पूजन के बाद सभी बड़े लोग तो स्वाध्याय सभा में रविवारीय विशेष कक्षा का लाभ लेते और चारों बच्चे जिस पाठशाला में सरिता–मयंक–प्रसून पढ़े थे, उसी पाठशाला में पढ़ते।

रविवार के अतिरिक्त ज्यादातर सपना व अस्मिता ही घर पर रहते। मयंक और शुभांशी या तो हॉस्पिटल में रहते या फिर किसी कॉन्फ्रेंस आदि के लिए इन्दौर, भोपाल जाते रहते। घर में नौकरों की कमी नहीं थी; मात्र उनको अपने हिसाब से काम बताना पड़ता था और काम हुआ या नहीं यह देखना होता था।

बच्चे स्कूल से आते तो उन्हें दोपहर का नाश्ता करवाकर होमवर्क करने बैठाना या जो कोचिंग जाते थे उन्हें कोचिंग के लिए भेजना आदि कार्य रहते थे, जो सास–बहू मिलकर कर लेते थे; परन्तु धीरे–धीरे अस्मिता को ऐसा लगने लगा कि घर का सारा काम मैं ही करती हूँ और प्रसून भी पूरी फैक्ट्री सम्हालते हैं। मैं दिन भर खटती रहती हूँ, आराम करने का मौका भी नहीं मिलता; चार–चार बच्चों को भी सम्हालना पड़ता है।

यह सब एक बार उसने अपनी सहेली जूली को जो कि मुम्बई रहती थी, उसको बताया। सहेली तो मुम्बई में अकेले ही रह रही थी; 6 दिन नौकरी करती थी, रविवार को आराम करना व घूमना–फिरना रहता था, पूरी फ्रीडम के साथ रह रही थी; इसलिए उसने बात सुनते ही तुरन्त कहा कि "अरे तूँ कैसी पागल है, क्या जिंदगी इसके लिए मिली है? इतने बड़े परिवार के साथ में तूँ तो मजदूर ही बन गई। मुझे तो तेरी बात सुनकर ही आश्चर्य हो रहा है कि तूँ अभी तक ऐसी लाइफ कैसे जी रही है, मैं तो एक सप्ताह भी ऐसे वातावरण में नहीं रह सकती।"

"तो अब मैं क्या करूँ यार?"

"तूँ बुरा न माने तो मेरी तो राय है कि तूँ इस संयुक्त परिवार के झमेले से अलग हो जा। अलग रहेगी तो तूँ अपने हिसाब से आना–जाना कर सकेगी, अपने हिसाब से खाना–पीना, पार्टी–शार्टी कर सकेगी; नहीं तो तूँ ऐसे ही बहूरानी कहलाकर नौकरानी ही बनी रह जायेगी।"

"पर मैं अलग होने का कहूँगी तो सासूजी मानेगी ही नहीं। मेरे जेठ–जेठानी भी मेरा ध्यान रखते हैं, वे भी आसानी से अलग नहीं होने देंगे।"

"तूँ तो बिल्कुल पागल है। वे कोई प्यार–व्यार नहीं करते। तूँ उनके बच्चों को सम्हालती है; उन्हें तो फ्री की आया मिली हुई है, इसलिए प्यार का नाटक करते हैं।"

''हाँ यार! ये तो मैंने सोचा ही नहीं; तूँ सही कह रही है। पर यार मेरे श्रीमानजी भी अलग होने की बात नहीं मानेंगे।''

''तुझे पता है औरतों के पास सबसे बड़ा हथियार प्रकृति ने दिया है। जिसके सामने बड़े से बड़े योद्धा धराशायी हो जाते हैं।''

''ऐसा कौन–सा हथियार दिया है? मेरे मम्मी–पापा ने तो उसके बारे में कभी नहीं बताया।''

''धत्तेरे की। अरे यार तूँ सचमुच ही सती सीता की सहेली है। अरे औरतों का सबसे बड़ा हथियार है आँसू। बस आज से ही तूँ यह हथियार निकाल ले। दोपहर को बच्चे आयें, तो ध्यान ही नहीं देना, कमरे में रहना। शाम को भोजन का समय हो तो बाहर ही नहीं निकलना। जब श्रीमानजी आयें, तब आँखों में आँसू भरकर बस एक ही बात कहना कि बस बहुत हो चुका! अब मैं इस घर में नौकरानी बनकर नहीं रहूँगी। जब तक अलग मकान नहीं होगा, तब तक मैं भोजन नहीं करूँगी।''

''ऐसा करना सही होगा?''

''अब तूँ देख ले, तुझे जीवन भर की सजा चाहिये या मजा? मुझे तो जो सही लगा, वह बता दिया। अब तुझे जो सही लगे वह करना, मेरा नाम बदनाम नहीं करना ठीक है, देख! मेरे ब्वायफ्रैण्ड का फोन आ रहा है, अब मैं फोन रखती हूँ। अपना ख्याल रखना।''

अस्मिता का दिमाग अपनी सहेली की बातें सुनकर घूम गया। वह अब परिवार की सारी गतिविधि उसके चश्मे से ही देखने लगी। सास का प्यार लगता कि वह काम कराने की मजदूरी है और शुभांशी कभी इन्दौर–भोपाल जाती थी; अस्मिता और उसके बच्चों को भी कुछ न कुछ लेकर आती थी; वह सब उसे आया का वेतन दिखाई देना लगा। मयंक–शुभांशी का कॉन्फ्रेंस में जाना 'एन्ज्वाय' करना लगने लगा। स्वार्थ के साँप का जहर धीरे–धीरे उसके मन–मस्तिष्क पर छाने लगा।

शाम के समय जब सभी भोजन करने बैठे और सभी प्रसन्नता के साथ बातें कर रहे हैं, तब अस्मिता चुपचाप भोजन कर रही है। सतीशजी ने पूछा ''बेटा अस्मिता! क्या बात है! तुम्हारी तबियत तो सही है?''

''सब सही है पापाजी।'' अस्मिता ने नीची गर्दन किये हुये ही बोला।

''अस्मिता! मुझे लगता है कि कुछ न कुछ तो गड़बड़ है; नहीं तो तुम कभी ऐसी उदास नहीं बैठतीं। शुभांशी! भोजन के बाद अस्मिता को हॉस्पिटल ले चलते हैं; वहाँ जरा चैकअप कर लेते हैं।'' मयंक ने कहा।

''नहीं, भाईसाहब! ऐसी कोई बात नहीं है। आज मैं दिन में आराम नहीं कर पाई; इसलिये थकान हो रही है। मैं अभी भोजन करके आराम कर लूँगी तो सब सही हो जायेगा।''

''हाँ बेटा! तुम भोजन करके आराम कर लो, मैं रसोई व बर्तनों की सफाई करवा लूँगी। और ज्यादा कुछ तकलीफ हो तो बेटा अस्पताल अपना, डॉक्टर अपने, तुम अस्पताल चली जाओ।''

''नहीं मम्मीजी! अस्पताल की जरूरत नहीं है।''

''मैं यहाँ पर ही कोई टेबलेट दे दूँ। फीवर आ रहा हो तो थर्मामीटर से यहीं चैक कर लेते हैं।'' शुभांशी ने कहा।

''नहीं दीदी! ऐसा कुछ भी नहीं है। मैं जरा आराम कर लेती हूँ – ऐसा कहकर, हाथ धोकर अस्मिता कमरे में चली गई।

दूसरे दिन सुबह भी अस्मिता का मूड सही नहीं दिखा, पर जल्दी में किसी ने कुछ नहीं कहा। जब दोपहर में बच्चे आये और अस्मिता ने दरवाजा नहीं खोला तो सपनाजी ने ही दरवाजे खोलकर बच्चों को अंदर लिया और दोपहर का नाश्ता करवा कर आर्या और सुखद को कोचिंग भेजा।

सायंकालीन भोजन के लिए सभी बैठ गये; पर अस्मिता अपने कमरे से बाहर नहीं आई। तब मंयक ने कहा "प्रसून जाओ! देखो तो अस्मिता को क्या हुआ है? तबियत सही नहीं हो तो अस्पताल ले चलते हैं।"

प्रसून जब कमरे में गया तो अस्मिता चुपचाप आँख बंद करके लेटी हुई थी। उसने सिर पर हाथ रखा तो सिर ठंडा ही था। प्रसून को कल से ही लग रहा था कि अस्मिता के दिमाग में कुछ अलग ही खिचड़ी पक रही है।

"अस्मिता क्या हुआ? भोजन नहीं करना?" प्रसून ने पूछा।

"नहीं?" आँखों में आँसू भरे हुये गुस्से में लेटे-लेटे ही अस्मिता ने कहा।

"क्यों?"

"मैं अब और नौकरी नहीं करती रह सकती?"

"तुम क्या कह रही हो? किसकी नौकरी?" प्रसून ने गुस्से में पूँछा।

"मैं तुम्हारे घर की नौकरानी ही तो हूँ; वह भी बिना वेतन की। दिन भर दीदी और भाई साहब तो बढ़िया ए.सी. में बैठते हैं, घूमते-फिरते हैं और मैं दाल-रोटी और बच्चों में ही लगी रहती हूँ। मैं क्या दूसरों के बच्चों को पालने के लिए यहाँ आई हूँ?"

"तुम क्या बकती हो? अपने घर का काम करना, नौकरी करना कहलाता है? भाईसाहब के बच्चे, अपने बच्चे नहीं हैं? वे दूसरों के हो गये?"

"मैं ज्यादा कुछ नहीं जानती। मैं अब भोजन तभी करूँगी, जब अलग होने का निर्णय हो जायेगा।" अस्मिता ने गुस्से में कहा।

इन दोनों की आवाजें बाहर भी पहुँच रही थीं। कमरे का दरवाजा खुला ही था। मयंक व सपनाजी उठकर कमरे की ओर गये, तभी

आखिरी शब्द उनके कान में पड़ गये। जिन्हें सुनकर सपनाजी तो अवाक् होकर रह गईं।

सपनाजी ने समाज-सेविका के रूप में अनेकों टूटते परिवारों को बचाया था। आज उनका परिवार ही टूटता नजर आ रहा है।

मयंक तो चुपचाप वापिस आकर डायनिंग टेबल पर नीची गर्दन करके बैठ गया। सपनाजी हिम्मत करके कमरे में गईं तो अस्मिता पलंग से आँसू पोंछते हुये खड़ी हो गई। सपनाजी ने उसके सिर पर हाथ रखते हुये कहा "बेटा क्या बात हो गई? किस बात को लेकर नाराज हो गई हो? चलो गुस्सा छोड़ो और भोजन करने चलो।"

"मम्मीजी। मुझे भूख नहीं है। आप लोग भोजन कर लीजिये।"

"अरे बेटा! आज तक घर के किसी सदस्य को छोड़कर शाम का भोजन किसी ने किया है क्या? देखो पापाजी, मयंक, शुभांशी और बच्चे-सभी इंतजार कर रहे हैं?"

"जिनको भूख लग रही है, वे सभी भोजन कर लें; मैं तो सब खा चुकी, अब मुझे भूख नहीं है।"

"अस्मिता! मम्मी कह रही हैं, तो बाहर चलो। सब तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।" प्रसून ने गुस्से में कहा।

"बाहर आकर मैं क्या करूँगी? मैं कह चुकी, मुझे अब इस घर में फ्री की नौकरानी बनकर नहीं रहना। जब तक आप अलग होने का निर्णय नहीं कर लोगे, मैं भोजन नहीं करूँगी। बस आप सब भोजन कीजिये और मुझे अकेला छोड़ दीजिये।"

"अस्मिता! यह तुम अच्छा नहीं कर रही हो।" प्रसून ने कहा।

"हाँ-हाँ! मैं अच्छा नहीं कर रही और पूरा परिवार मेरे साथ अच्छा कर रहा है। मैं नहीं सम्हाल सकती दूसरों के बच्चों को, मैं इतने बड़े

परिवार को सम्हालते–सम्हालते थक गई। अब मुझसे नहीं होता मेरी तबियत खराब रहने लग गई, मेरी कमर दुखने लग गई।'' कहते–कहते अर्पिता रोने लगी।

सपनाजी तो यह सब सुनकर ही दंग रह गईं। वे नीची गर्दन किये बाहर चली आईं।

''अस्मिता! तुम्हारा दिमाग खराब हो रहा है, जो स्वर्ग– जैसे घर में भी तुम्हें परेशानी हो रही है; मेरे इतने अच्छे भैया–भाभी और भतीजे, पराये लगने लगे हैं। घर में हर काम को करने वाले लगे हुये हैं, तुम्हें ऐसा क्या करना पड़ता है, जिससे तुम्हारी कमर टूट गई?''

''मुझे अपनी बात बताने को वकील लगाना पड़ेगा? तुम तो फैक्ट्री चले जाते हो, मैं दिन भर इधर से उधर घूमती रहती हूँ। कहीं बाहर घूमने नहीं जा सकती, अपने मनपसंद कपड़े नहीं पहिन सकती। अपनी इच्छा से आराम नहीं कर सकती। यह घर स्वर्ग, तुम्हारे भैया–भाभी के लिए होगा; मेरे लिये तो नरक जैसा लग रहा है।''

''तुम्हें क्या हो गया? आज तक तो ऐसा कभी नहीं कहतीं थीं। चलो भोजन कर लो सब सही हो जायेगा।''

''नहीं! अब तो तभी सही होगा जब अलग रहने का निर्णय हो जायेगा। मैंने एक बार कह दिया सो कह दिया। यह एक बुन्देलखण्डी महिला की जबान है, जो कभी पीछे नहीं हटेगी।''

''बुन्देलखण्डी महारानी लक्ष्मीबाई ने देश को जोड़े रखने के लिए, देश की आजादी के लिए लड़ाई की थी और तूँ तो घर तोड़ने के लिए लड़ रही है।''

''मैं भी अपने परिवार की आजादी के लिये ही लड़ रही हूँ। अब मुझे डिस्टर्ब मत करो।'' ऐसा कहकर अस्मिता फिर लेट गई।

"हारकर प्रसून नीची गर्दन किये बाहर आ गया और आँखों में आँसू भरे हुये सबके साथ बैठ गया। सभी उदास व चिंतित होकर बैठे थे।"

मयंक ने वातावरण बदलते हुये कहा – "अरे आप सब इतने उदास क्यों हो रहे हैं ? अस्मिता सही ही तो कह रही है, वह अकेली चार बच्चों और 10 लोगों की भोजन व्यवस्था को सम्हालती है, मेहमानों का आना–जाना होता रहता है। पापाजी तो बाहर ही रहते हैं और मम्मी भी अपने संगठनों में लगी रहती हैं तो बेचारी वह परेशान हो जाती है। पापाजी ! मैं और शुभांशी कल ही कोई दूसरा फ्लैट लेकर बाहर चले जाते हैं आप और प्रसून–अस्मिता इस बंगले में ही रहें। अस्मिता को काम कम हो जायेगा तो उसकी तबियत सही हो जायेगी। क्यों शुभांशी ! सही है न ?"

"पर मैं चाची के साथ ही रहूँगा।" आर्यन ने कहा।

"नहीं बेटा ! हम सब बाहर रहेंगे पर पास में ही रहेंगे; जब तुम्हारा मन करे चाची के पास आ जाना।"

सतीशजी–सपनाजी तो कुछ भी कहने की हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहे थे। आखिर किस आँख को बन्द करने के लिए कहें।

"अस्मिता पागल हो रही है। एक–दो दिन में सब सही हो जायेगा। भैया ! आप अलग होकर नहीं जायेंगे।" प्रसून ने रोते हुये कहा।

"अरे भाई ! मकान ही तो बदल रहे हैं। मकान बदल जाने से परिवार तो नहीं टूट जायेगा। अस्मिता के मन में मनभेद हो गया तो अब एक साथ रहना संभव नहीं है। क्यों पापाजी ! मैं सही कह रहा हूँ न ?"

दूसरों की पंचायतें निपटाने वाले सतीशजी–सपनाजी मूक–दर्शक बनकर बैठे थे। ऐसा दिन कभी अपने घर आ सकता है – यह उन्होंने सोचा भी नहीं था। चलो यही अच्छा है कि घर की बात बाहर नहीं जा रही।

''यदि ऐसा है तो भैया आप घर छोड़कर बाहर नहीं जायेंगे, हम बाहर जाकर अलग रहेंगे। अस्मिता को आजादी चाहिये है, तो अब मैं दिलाता हूँ उसे आजादी। जब मम्मी-पापा के बिना अकेली रहेगी और आर्या-आर्यन की याद सतायेगी तब पता लगेगा उसे कि घर क्या होता है?'' उनने कहा।

''प्रसून! नाराज होने की जरूरत नहीं है। घर-घर में भाई अलग रहते हैं, हम भी मात्र सुविधा के लिए अलग होंगे; कोई मन से थोड़े अलग होंगे।''

''प्रसून सही कह रहा है कि अस्मिता को आजादी चाहिये है; वह हमारे साथ भी नहीं रहना चाहती है; इसलिये प्रसून ही अलग रहेगा। जाओ बेटा! अस्मिता से कह दो कि भोजन कर ले; अलग होने का निर्णय हो गया है। अभी भोजन के बाद ही फ्लैट देखकर आते हैं। कल ही मेरे मित्र ने एक फर्निश्ड फ्लैट बताया था। यदि अस्मिता को पसंद आ जायेगा तो हम कल ही तुम्हारा सामान उसमें रखवा देंगे।'' सतीशजी ने कहा

''वह एक दिन भोजन नहीं करेगी तो मर नहीं जायेगी। उसे नये मकान में ही भोजन करवा देंगे।'' प्रसून ने गुस्से में कहा।

''प्रसून! ऐसा नहीं कहते। चलो मैं बुलाकर लाती हूँ।'' शुभांशी ने कहा।

''अस्मिता! उठो चलो भोजन कर लो। पापाजी ने तुमको अलग रहने के लिए हाँ कह दिया है, भोजन करके फ्लैट देखने भी जाना है।''

''अच्छा! मम्मीजी-पापाजी ने अलग होने के लिए कह दिया तो चलो भोजन कर लेते हैं।'' अस्मिता खुश होकर भोजन करने आयी; पर बाकी लोग प्रसन्न नहीं थे।

छोटी-सी सुखदा ने कहा "मम्मी! हम यह घर छोड़कर बाहर रहने जायेंगे?"

"हाँ।"

"तो फिर दादू और आर्या दीदी नहीं मिलेंगे, मम्मी यहीं रहो न?"

"चुप, तूँ कुछ नहीं समझती। हम जहाँ रहेंगे, वहाँ और भइया मिल जायेंगे।" अस्मिता सबको परोसने लगी। सबने चुपचाप कहने मात्र का भोजन किया और उठ गये।

सतीशजी-मयंक-प्रसून-अस्मिता फ्लैट देखने गये। एकदम नये अपार्टमेन्ट में फ्लैट था। पूरा फर्नीचर किया हुआ था; मात्र अपने काम में लेने की सामग्री ही लानी थी। सबको फ्लैट पसंद आ गया और सुबह ही सामान रखने का निर्णय सभी ने अनमने मन से किया।

रात को शुभांशी ने मयंक से कहा "आप सभी ने अस्मिता के अलग होने के फैसले को मान लिया और फ्लैट भी देख लिया। वह कल जायेगी भी। अस्मिता-प्रसून घर से क्या-क्या ले जाएंगे इसका तो आपने कुछ बंटवारा करके निर्णय किया ही नहीं।"

"शुभांशी! तुम यह क्या बात कर रही हो? प्रसून मेरा छोटा भाई है, उसका पूरा अधिकार है। उसे जो ले जाना हो वह ले जाये। हम अपनी अस्पताल चला रहे हैं, वह अपनी फैक्ट्री देख रहा है। यदि ऐसा भी नहीं होता तो भी मैं इस संबंध में कुछ भी नहीं सोचता। हम आपस में इतना प्रेम करते हैं; तुम भी प्रसून और बच्चों से कितना प्रेम करती हो। जब अस्मिता शादी करके घर आई थी तबसे तुमने उसे छोटी बहिन जैसा रखा। अब किसी कारण से उसका दिमाग फिर गया तो क्या हम बड़े होकर भी ऐसी छोटी बातें करेंगे?

सोना, चाँदी या मकान आदि किसी के पास ज्यादा भी हुआ तो भी

घर में ही है, पैसों के कारण रिश्ते नहीं बनते, न ही बिगड़ना चाहिये। आगे से कभी भी ऐसी छोटी बात नहीं सोचना। यदि साल दो साल में आवश्यकता होगी तो उनके लिए हम अलग बंगला बनवा देंगे। रहने की जगह बदलने से मन में जगह नहीं बदलनी चाहिये।''

''अरे मैंने तो एक छोटी सी बात कही थी। आपने तो लम्बा भाषण ही दे दिया। मैं कहाँ अपनी छोटी बहिन के गहने या साड़ियाँ गिनने जा रही हूँ। सॉरी ऐसे ही कहने में आ गया था। मैं तो चाहती हूँ कि वह जहाँ भी रहे, प्रसन्न रहे; पर पता नहीं चला कि अस्मिता के दिमाग में ऐसी बातें कैसे आ गईं? सच में मुझे तो अस्पताल से घर आते ही सुखद-सुखदा की बहुत याद आयेगी।'' शुभांशी दु:खी होते हुये बोली।

''जो होना था, वही हो रहा है, वही होगा। निर्भय होकर सो जाओ।''

अस्मिता ने तो रात में ही सब सामान जमा लिया और सुबह से ही ट्रक में भरकर सामान चला गया।

दोपहर में जब घंटी बजी और बच्चों के लिए दरवाजा खोला तो चार बच्चों की जगह दो बच्चे सामने दिखे और वे भी नीची गर्दन किये चुपचाप दरवाजा खुलने का इंतजार कर रहे थे, यह देखकर सपनाजी फूट-फूट कर रोने लगीं। उनको यह बात याद आ गई कि महिला चाहे तो घर को स्वर्ग बना सकती है और वही विपरीत हो जाये तो नरक भी बना सकती है। शाम को डायनिंग टेबल पर चार सीट खाली थी; जिन्हें देखकर किसी से भी खाना नहीं खाया जा रहा था। उधर वहाँ फ्लैट में भी अस्मिता के अलावा तीनों उदास होकर भोजन कर रहे थे।

○○○

17

प्रसून और अस्मिता को अपने परिवार से अलग रहते एक माह हो चुका था। इस एक माह में रविवार को मंदिर में ही पूरा परिवार मिलता था। बच्चे तो दादा-दादी, ताऊ-ताईजी से लिपट जाते थे और आर्या-आर्यन से भी मिलकर बहुत खुश होते थे। जाते समय बच्चे रोते हुये ही अलग होते थे। प्रसून तो पापा के साथ फैक्ट्री में रोज ही मिलता था और आते-जाते अस्पताल में भैया-भाभी व घर पर माँ से भी मिलता रहता। वे सब अस्मिता और बच्चों के समाचार जानते; पर अस्मिता एक बार भी घर नहीं आई।

1 माह में अस्मिता के व्यवहार में बदलाव आ रहा था, खट्टे-मीठे अनुभव हो रहे थे। माह के अंतिम रविवार को अस्मिता पूजन के लिए, सबके साथ नहीं थी तो सपनाजी की नजरें उसको देख रही थीं कि वह आ जाये; तब पूजन प्रारंभ करें। जब देर तक वह नहीं आई, तो सतीशजी ने प्रसून से पूछा ''क्या हुआ! आज अस्मिता नहीं आई क्या ?''

''नहीं! आई तो है वह, मंदिर में ऊपर अलग पूजन कर रही है ?''

''क्यों, ऊपर अलग क्यों पूजन कर रही है ? क्या उसे अब साथ में पूजन करने में भी बुरा लग रहा है ?'' सपनाजी ने चुभती निगाहों से प्रसून की ओर देखा।

''नहीं माँ! ऐसी बात नहीं है, चलो अपन पूजन करते हैं।''

''ऐसी बात नहीं है; तो फिर आखिर हुआ क्या है ? पता तो चले ? वह क्या चाहती है ?''

''मम्मी! बस छोटी सी बात है - भाभीजी अस्पताल जाती हैं; तब वे सूट पहिनकर जाती हैं; इसलिए अस्मिता के मन में भी आता था कि

वह भी सूट पहिने। घर पर रहकर आप लोगों के सामने वह पहिन नहीं पाती थी; आज वह सूट पहिनकर आयी है; इसलिये पापाजी के सामने आने में शर्मा रही है।''

''अच्छा! गलत काम करने से नहीं शर्मा रही; पर सामने आने से शर्मा रही है। सबके सामने हमारी इज्जत खराब करने में उसे शर्म नहीं आयी, अब सूट पहिनकर हमारे सामने न आकर पापाजी का सम्मान कर रही है?

उसको कह देना – हमें उसके सम्मान की जरूरत नहीं है। वह घर में भी सूट पहिनती तो हम कौनसा उसे मना कर रहे थे? अब तो वह स्वतंत्र है सूट पहिने, जींस पहिने, जो मर्जी हो वह करे और हमारे सम्मान की चिंता न करे।''

''मम्मी! आप भी मंदिर में क्या बात लेकर बैठ गईं? चलो पूजन करते हैं, आज का एक दिन ही तो है जो हम साथ में पूजन करते हैं। प्रसून! उसे बोलना कि वह शर्माये नहीं। वह सूट पहिन कर आना चाहती है तो आ सकती है, शुभांशी तो अस्पताल की मजबूरी में पहनती है, फिर भी उसकी इच्छा है तो वह पहिने, हमें कोई दिक्कत नहीं है। है न पापाजी!'' मयंक ने कहा।

''हाँ-हाँ! क्यों नहीं? बेटा! हम तो अब कुछ बोलने लायक रहे ही नहीं। सारी समाज में हम अपने संयुक्त परिवार की दुहाई देकर सबको साथ रहने के लिए कहा करते थे। अब तो उदाहरण ही फैल हो गया। सब दबी आँखों से मेरी तरफ देखकर हँसा करते हैं। खैर! जैसे भी वह रहे, प्रसन्न रहे – यही हमारी कामना है, चलो पूजन करते हैं।'' सतीशजी बोले।

पूजन, स्वाध्याय, पाठशाला के बाद सभी अपने-अपने घर चले

गये। घर आकर प्रसून ने मंदिर में हुई बात बताते हुये कहा कि ''अस्मिता तुम यह अच्छा नहीं कर रही हो। समाज में लोग हम भाई-भाभी को राम-लक्ष्मण-सीता जैसा कहते थे; पर तुम अपने अहंकार में उस परिवार की एकता को तोड़ रही हो।''

''देखो प्रसून! मैं दूसरों की इज्जत के लिए अपनी इच्छाओं का गला नहीं घोंट सकती। मुझे 'फ्रीडम' चाहिये, जो वहाँ नहीं मिलता। मैं वहाँ अनुशासन में बँधकर नहीं रह सकती।''

''घर पर क्या अनुशासन था? और जो अनुशासन था भी; वह बंधन नहीं, हमारी सुरक्षा थी। हम वहाँ निश्चिंत थे, निर्भार थे; क्योंकि हमारे बड़े बैठे हुये थे।''

''उन बड़ों के कारण मैं न ढ़ंग से पहिन सकी, न सो सकी, न घूम सकी। अब मैं स्वतंत्र हूँ। आपको यदि मेरी स्वतंत्रता अच्छी न लगती हो तो आप रोजाना माताजी का आशीर्वाद लेने जाते रहो, मुझे कोई दिक्कत नहीं है।''

बात करते-करते प्रसून की नजर रसोई में रखे ब्रेड के पैकेट पर गई। ''अरे! यह ब्रेड अपने घर कौन लेकर आया?''

''कौन लेकर आया, मतलब? कोई भगवान तो नहीं रख गये होंगे। आप लाये नहीं, तो मैं ही लाई हूँ।''

''तुम लेकर आईं? तुम्हें पता नहीं अपने घर में ब्रेड नहीं आते थे। बच्चों ने भी कभी नहीं खाये। फिर तुम कैसे ले आई?''

''अरे वाह! वहाँ नहीं आते थे,नहीं खाते थे तो हमारे बच्चे कभी कुछ खा ही नहीं सकते। बच्चे स्कूल से आकर पूँछते थे, मम्मी यह ब्रेड क्या होती है? हमारे दोस्त स्कूल में ब्रेड लेकर आते हैं। तो मैं बच्चों को खिलाने के लिए ले आई। इसमें कौनसा पहाड़ टूट पड़ा?''

"क्या बात कर रही हो? ब्रेड त्रसघात अभक्ष्य है। उसे खिलाकर तुम कह रही हो क्या गलत है? बच्चों ने पाठशाला में भी पढ़ा होगा। क्यों बेटा सुखद! ब्रेड कौन-सा अभक्ष्य है?" टी.व्ही. देखते सुखद से प्रसून ने प्रश्न किया।

"पापा! ब्रेड तो त्रसघात अभक्ष्य है, वह खाने योग्य नहीं है। दादी और ताईजी तो कभी बाजार से नहीं लाती थीं।"

"फिर आपने मम्मी से क्यों मँगवाये?"

"पापा! हमने नहीं मँगवाये, बस मम्मी से पूँछा था कि ब्रेड कैसे होते हैं? क्योंकि हमने कभी देखे ही नहीं थे; पर मम्मी लेकर आयीं और हमारे टिफिन में भी रख दिये। हमें भूख लगी तो स्कूल में हमने खा भी लिये; पापा इसके खाने में तो पाप लगता है न?"

"देखा! बच्चे कह रहे हैं कि ब्रेड खाने से पाप लगता है।"

"देखो प्रसून! आप बच्चों को मेरे खिलाफ भड़काओ मत। मुझे पता है कि आप अलग होने के मेरे निर्णय से खुश नहीं हैं; पर इस तरह बच्चों को मेरे विरुद्ध मत करो। मैं बच्चों को अभी से त्यागी नहीं बनाना चाहती। मैं चाहती हूँ - बच्चे दुनियाँ में रहने लायक बनें, इन्हें किसी के सामने शर्मिंदा न होना पड़े; इसलिए मैं यह लेकर आई हूँ और ऐसी सभी चीजें बच्चों को दूँगी।"

"ब्रेड नहीं खाने से, आलू की चिप्स नहीं खाने से या रात्रि भोजन नहीं करने से, कोई त्यागी या ब्रह्मचारी हो जाता है क्या? यह तो हमारा सामान्य श्रावकाचार है। तुम्हारे पीहर में भी तो इस बात का ध्यान रखा जाता है। अपनी तो शादी में भी इस बात का ध्यान रखा गया और 7 साल से अपने घर पर भी यही सब चल रहा था। आज इतनी जल्दी तुम इतनी समझदार कैसे हो गईं?"

''फालतू की बहस मुझे नहीं करना, मुझसे सुबह-सुबह बच्चों का टिफिन भी तैयार नहीं होता; इसलिये में यह सब ले आई; यदि यह सब नहीं खिलाना है; तो एक खाना बनाने वाली लगा लो, जो सुबह आकर टिफिन बना दे।''

''हाँ! तो यह बात हुई न! घर पर तो तुम रोज देर से उठतीं और मम्मी उठकर चारों बच्चों के टिफिन तैयार कर लेती थीं तो तुम्हें पता ही नहीं चला। महिने भर में ही पता चल गया। अभी तो पता नहीं और क्या क्या होगा?''

''जो-जो होगा, देखा जायेगा। मुझसे तो जो होगा, वही करूँगी। कोई मेरे चार हाथ तो हैं नहीं।''

''नहीं, तुम्हारे चार हाथ नहीं हैं; पर मेरी माँ के चार हाथ थे; जो सुबह-सुबह चार बच्चों का टिफिन तैयार कर देती थीं। अब तो कोई खाना बनाने वाली खोजना ही पड़ेगी; नहीं तो एक दिन तुम मुझे भी बाजार से खाना लाकर खिलाने लग जाओगी; क्योंकि जो तुमने अभी सूट व जींस बगैरह खरीद लिये हैं, उससे तो ऐसा लग रहा है कि अब तुम 'फ्रीडम' का उपयोग करते हुये घूमने-फिरने में ज्यादा लगने वाली हो।''

''आज के युवक तो अपनी पत्नी को 'वैस्टर्न ड्रेस' में देखकर खुश होते हैं, जबरदस्ती पहिनाकर घूमने जाते हैं, सोसायटी में अपना एक 'स्टैटस' बनाते हैं और एक आप हैं कि मैं तैयार हो रही हूँ तो आपको मेरी स्वतंत्रता देखी नहीं जाती। तुम्हारे जैसे दकियानूसी लोगों ने ही महिलाओं को दबाकर रखा हुआ है।''

''हाँ मैडम! आप 22 वीं सदी की हो; मैं तो 21 वीं क्या, 18 वीं सदी का हूँ। तुम्हारी जो मर्जी हो, वह करो; पर ध्यान रखना! एक न एक

दिन पछताओगी, कहे देता हूँ। अभी तो भोजन तैयार करो, मुझे और बच्चों को भूख लग आई है।''

''बस आधा घंटे में भोजन तैयार करती हूँ, तब तक आप अखबार पढ़ो।''

भोजन तैयार करते-करते उसे विचार आया – सच में सबके साथ रहते, मुझे पता ही नहीं चला कि सुखद 4 वर्ष और सुखदा 2 वर्ष से स्कूल जा रहे हैं तो टिफिन कब बन जाता था? क्या बनता था? मम्मीजी इस उम्र में भी बहुत एक्टिव हैं। घर का भी ज्यादातर काम तो वे ही करती हैं और सामाजिक नेतागिरि भी कर लेती हैं। मैं तो इतना नहीं कर सकती।

यह ब्रेड तो मैंने भी पीहर में कभी नहीं खाई; पर अब क्या करूँ? जब मैं टिफिन तैयार नहीं कर सकती तो बच्चों को टिफिन में कुछ तो रखना ही पड़ेगा न; पर ब्रेड है तो सच में अभक्ष्य। अरे! यह भक्ष्य-अभक्ष्य का चक्कर छोड़ो, अभी तो जैसे काम निकले, वह करो। यह सोचते-सोचते ही भोजन तैयार हो गया। चारों ने साथ में भोजन किया। भोजन करके बच्चे तो तारक मेहता का उल्टा चश्मा देखने लगे। प्रसून लैपटॉप पर फैक्ट्री का काम करने लगा और अस्मिता तो थक गई थी; अतः आराम करने लगी।

OOO

देश-प्रदेश-नगर-मंदिर सब शुद्धातम में असद्भूत हैं।
धन-दौलत और परिजन-पुरजन चेतन तुझसे असद्भूत हैं।।
ज्ञान-दरश निज वैभव भूला, सुख पाने को उनको जोड़ा।
सुख न पाया, दुःख ही पाया, सुख के साधन असद्भूत हैं।।

18

सौरभ–सुनाक्षी के जीवन की गाड़ी निरंतर वर्धमान थी। प्रोफेसर जयन्तजी व ऋतुजी सुनाक्षी के आग्रह से साथ में ही रह रहे थे। ऋतुजी के आग्रह पर सुनाक्षी रविवार को कभी–कभी जिनमंदिर भी जाती और दोनों को जो कार्य करते हुई देखती; इनके कहने पर वह क्रिया भी कर लेती। सौरभ तो मंदिर के नाम पर ही नाक भौं सिकोड़ने लगता।

धर्म के संबंध में सौरभ की अरुचि का कारण जयन्तजी व ऋतुजी अपने आप को ही मानते। वे सोचते यदि हमने जन्म से ही संस्कार दिये होते; तो आज हमको ये दिन न देखने पड़ते। घर में किसी भी प्रकार की कमी नहीं है, सुनाक्षी भी बहुत सेवाभावी व आज्ञाकारिणी है; परन्तु उसके जो पैतृक संस्कार हैं; वह तो कुल–देवताओं की पूजा करने, तरह–तरह की मान्यता मानकर व्रत रखने के ही हैं। वह इसे ही धर्म व अपने परिवार के प्रति कर्तव्य समझती है; क्योंकि जो कुछ भी देवताओं से माँगती है, वह आखिर परिवार के लिए ही तो माँगती है। परिवार की सुख–समृद्धि ही उसका लक्ष्य है।

एक बार प्रोफेसर साहब को बुखार आ गया; तो उनके लिए भी वह पीपल पूजने चली गई और धागा बाँधकर के आई कि मेरे पापाजी का स्वास्थ्य अच्छा हो जाये। ऋतुजी ने समझाया भी कि "बेटा कोई किसी का भला–बुरा नहीं कर सकता। पीपल तो स्वयं एकेन्द्रिय है। वह हमारी रक्षा कैसे कर सकता है?" पर उसकी श्रद्धा के समक्ष अधिक विवाद करना उचित नहीं था।

सुनाक्षी बोली "मम्मीजी! आप कुछ भी कहो; पर देखना पापाजी का बुखार कल उतर जायेगा।"

दवाई तो ले ही रहे थे, वायरल था जो 3–4 दिन में कम हो ही जाता

है; अतः बुखार उतरते ही वह बोली; "देखो मम्मीजी! मैंने कहा था न कि मैं धागा बाँधकर आई हूँ एवं एक नियम लेकर भी आई थी कि जब तक पापाजी का बुखार नहीं उतरेगा तब तक मैं मीठा नहीं खाऊँगी। अब मैं पहले मीठा वहाँ चढ़ाऊँगी, तभी मैं खाऊँगी।"

सुनाक्षी के इस अंधविश्वास व प्रेम के चक्र में दोनों फँसकर रह गये थे। वे भलीभाँति जानते थे कि सेवाभावी होना, सरल होना, प्रेमी होना – यह अलग बात है। ये गुण परिवार–संचालन के लिए आवश्यक होंगे; परन्तु व्यापार व परिवार का संचालन ही तो इस मानव जीवन का लक्ष्य नहीं है। यह मनुष्य भव तो जन्म–मरण का अभाव करने को मिला है और उस मार्ग पर गमन करने के लिए तो सर्वप्रथम इस अंधविश्वासरूप गृहीत मिथ्यात्व का अभाव करना आवश्यक है।

जयन्तजी–ऋतुजी सायंकाल घूमने गये हुये थे, बगीचे की बेंच पर बैठे हुये जयन्तजी ने कहा। "ऋतु! सच में हम सुनाक्षी जैसी बहू को पाकर धन्य हैं। वह जिस तरह से हमारा ध्यान रखती है, उस तरह से और कोई नहीं रख सकता था।"

"यह बात तो बिल्कुल सही है; परन्तु उसे वीतराग धर्म की रुचि नहीं है – यही हमारे लिए दुःखद है। बेटा भी धर्ममार्ग से दूर है – यह भी हमारे लिए बड़ी ही चिन्ता का विषय है।"

"एक यह बात भी है कि इस पंचमकाल में सभी तरह से अनुकूलता सबको नहीं मिलती और इस काल में निर्बाध धर्मसाधन भी संभव नहीं है। अनुकूलतायें कम, प्रतिकूलतायें अधिक हैं; किसी की बहू धर्मात्मा है, तो वह पारिवारिक दृष्टि से अनुकूल नहीं है; अपनी बहूरानी पारिवारिक दृष्टि से अनुकूल है; तो धार्मिक दृष्टि से प्रतिकूल है। इसीलिए कहा है –

या संसार में सुख सर्वथा नहिं काहू के दीखे।
कोइ तन दुःखी, कोइ मन दुःखी, कोइ धन दुःखी दीखे।।

किसी के बेटा अनुकूल नहीं है, तो किसी की बहू अनुकूल नहीं है। अपने लिए पैसे की कमी नहीं है, रोग भी कष्टकर नहीं है; बेटा-बहू आज्ञाकारी व सेवाभावी हैं; पर धर्मप्रेमी नहीं हैं - यह दु:ख हमें भी पीड़ित करता रहेगा।''

''सुनाक्षी हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए पीपल पूज सकती है, व्रत रख सकती है, खान-पान की व्यवस्था कर सकती है; तो हम भी प्रयास तो करेंगे ही कि उसके जन्म-जरा रोग मिटने की औषधि उसे अवश्य प्राप्त हो जाये। सुनाक्षी बहुत सरल है। यदि उसे एक बार रुचि लग जाये; तब तो वह मार्ग पर दौड़ लगायेगी। जैनधर्म तो परीक्षा प्रधानी धर्म है, मात्र कुल परम्परा से होने वाला धर्म नहीं है। यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। यदि सुनाक्षी की होनहार अच्छी होगी तो उसे यह बात अवश्य समझ में आयेगी।''

''बात तो तुम सही कह रही हो; सौरभ-सुनाक्षी दोनों ही समझदार हैं। यदि एक बार रुचि लग गई तो इनका जीवन व अपना मरण सुधर जायेगा। हम भी तो जवानी के जोश में धर्म से दूर ही थे। यह तो हमारा महान पुण्य का उदय था जो स्वाध्यायप्रेमी साधर्मियों का समागम मिल गया और आज हम अपने आपको धन्य मान रहे हैं; परन्तु सुनाक्षी को अपना कुलधर्म छोड़ना भी आसान नहीं है।''

''जहाँ चाह, वहाँ राह कही जाती है। देखें अपनी चाह को भी राह मिलती है या नहीं। चलो अब घर चलें, स्वाध्याय का समय हो रहा है।''

स्वाध्याय के बाद जब जयन्तजी-ऋतुजी घर पर आये तो सौरभ ने कहा ''पापा हमें कंपनी की ओर से परिवार सहित देश में कहीं भी 5 दिन घूमने के लिए अवसर मिल रहा है। चलो हम सब घूमने की प्लानिंग कर लेते हैं। मैं तो चाहता हूँ मम्मी ! हम सब शिमला तरफ घूमने

चलते हैं; अभी वहाँ मौसम भी अच्छा होगा। मजा आ जायेगा। आप लोग भी उधर घूमने नहीं गये होंगे।''

''बेटा 5 दिन का समय मिल रहा है, यह तो बहुत ही खुशी की बात है; क्यों न हम शिखरजी की यात्रा करने के लिये चलें। हम लोग बहुत पहले गये थे, जब तूँ बहुत छोटा था; तुझे याद भी नहीं होगा। सुनाक्षी भी कभी नहीं गई तो हम सब शाश्वत तीर्थराज के दर्शन का लाभ ले लेंगे।''

''नहीं मम्मीजी! मेरी तो वर्षों की तमन्ना है कि 'माताजी' के दर्शन करने जायेंगे। एक अच्छा मौका मिल रहा है; तो हम सब माताजी के दर्शन करके आते हैं, मेरी 'मन्नत' भी पूरी हो जायेगी।'' सुनाक्षी ने खुश होते हुए अपना प्रस्ताव रखा।

''ओ भाई! ये जो मुझे छुट्टियाँ मिली हैं; वे आप लोगों को दर्शन-पूजन कराने के लिए ही नहीं मिली हैं। आपको पूजन ही करना हो तो यहाँ पर मंदिर हैं, सब जगह भगवान एक ही होते हैं, हम यह प्रोग्राम कैन्सिल ही रखते हैं।''

''नहीं बेटा! घूमने का कार्यक्रम कैन्सिल मत करो; कम्पनी से लाभ मिल रहा है तो जरूर लाभ लेना चाहिये; फिर अगले 3 वर्ष बाद मौका लगेगा।'' जयंतजी ने बच्चों के मन को समझते हुए कहा।

''हाँ पापा! यही तो मैं कह रहा हूँ। सारा खर्च कंपनी उठा रही है; तो क्यों न हम अच्छी जगह घूम कर आ जायें?''

''बेटा! तुम मम्मी की बात को तो छोड़ो। अब हम लोगों की घूमने की उमर थोड़े ही है और शिखरजी भी एक बार जाओ या बारंबार जाओ, एक ही बात है; इसलिये हम दोनों तो घर पर ही रहेंगे, तुम दोनों ही शिमला जा आओ या सुनाक्षी को माताजी के दर्शन करा लाओ, सुनाक्षी खुश हो जायेगी।'' जयंतजी ने यह कहते हुये ऋतुजी की तरफ

इशारा किया। वे 40 साल से साथ रहकर समझने लगीं थी कि वक्ता के अभिप्राय को समझना चाहिये। वे जयंतजी के अभिप्राय को समझ कर बोलीं – "हाँ हाँ! मैं तो ऐसे ही मजाक कर रही थी। हम बुढापे में कहाँ जायेंगे ? हमसे तो चला ही नहीं जाता। शिखरजी में हम तो नीचे की भी वंदना नहीं कर सकते; ऊपर पहाड़ पर जाने की तो बात ही क्या करें ? सुनाक्षी तुम दोनों अपना प्रोग्राम बना लो। हम आराम करते हैं।"

जयंतजी–ऋतुजी उठकर कमरे में चले गये और विचार करने लगे कि एक धार्मिक विचारधारा न होने से कहाँ–कहाँ समस्यायें आती हैं ? लोग इस बात को समझते ही नहीं हैं; मात्र रंग–रूप देखकर या नौकरी देखकर विवाह कर लेते हैं, विचारों और संस्कृति की तो कोई कीमत ही नहीं है। अनेक परिवारों में देखने में आता है कि बहुयें, धर्म के नाम पर झगड़ा करके बँटवारा ही करा डालती हैं।

"ऋतु! तेरी किस्मत ही खराब है ?" जयंतजी ने दु:खी होते हुए कहा।

"क्यों ? आप ऐसा कैसे बोल रहे हैं ?"

"जवानी में मैंने कभी तेरी इच्छाओं के अनुसार तीर्थों की वंदना नहीं कराई, शिविरों में नहीं ले गया। रुचि लगने के बाद उम्मीद थी कि बेटे–बहू के साथ रहेंगे तो वे हमारी इच्छा पूरी करेंगे; परन्तु संयोग तो देखो कि बहू तो जैनकुल से नहीं है; पर बेटा भी कौनसा जैन है, जो हमारी धार्मिक इच्छाओं को पूरा करे। बेटे को शिमला घूमना है, बहू को माता के दर्शन करने जाना है; अब अपनी इच्छा को कौन पूँछे।"

"अरे! आप ऐसा क्यों सोचते हैं। अपने पास क्या पैसे की कमी है ? इन्दौर से तो रेल भी सीधी शिखरजी जाती है, जब मर्जी होगी; तब हम शिखरजी चल देंगे; पर सच में अभी मेरे घुटने दर्द करते हैं, इसलिये अभी मना किया है।"

''रेल तो उज्जैन से भी सीधी ही जाती थी। तुझे पति और बेटा भले ही कमाऊ मिले हों; पर धार्मिक भोजन करा सकें, ऐसे तो नहीं मिले।''

''अरे! आप भी पता नहीं किस दिशा में सोचने लगे; हमारा बेटा भी कभी अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करता; बहू भी, जो हमें बुरा लगे, वह नहीं करती। बस बेटे को हमने संस्कार नहीं दिये और बहू को जन्म से ही संस्कार नहीं मिले; इसलिये यह सब है। आप आराम कीजिये। बच्चों को घूमकर आ जाने दो; फिर सौरभ से कहकर अपनी टिकट भी शिखरजी की करवा लेंगे।''

''ठीक है! मन के लड्डू खाने में क्या बुराई है।'' कहते हुये जयंतजी लेट गये, ऋतुजी सामायिक करने लगीं।

कमरे में पहुँचते ही सुनाक्षी ने कहा ''देखो मम्मीजी–पापाजी ने तो जाने से मना कर ही दिया है, उनके तो पैरों में दर्द भी है। वे ज्यादा चल भी नहीं सकते। अब हम माताजी के दर्शन करने चलते हैं, वहीं से आपका शिमला घूमना भी हो जायेगा।''

सुनाक्षी के सुझाव को सुनकर सौरभ सहर्ष स्वीकृति नहीं दे सका। यह देखकर सुनाक्षी ने कहा ''सौरभ! क्या आपको मेरा प्रस्ताव पसंद नहीं आया? आपके मन में जो हो, वह कहो; यदि आपकी इच्छा और कहीं की हो; तो हम वहाँ का प्रोग्राम बना लेंगे, मैंने तो मात्र अपने मन की बात आपको बताई है।''

''सुनाक्षी! एक बात कहूँ।'' सौरभ ने गंभीरता से कहा।

''अरे! कहो न! इसमें पूँछने की क्या बात है।''

''तुमने मम्मी–पापा के चेहरे को नोट किया।''

''क्यों? मम्मी–पापा के वही चेहरे तो हैं, वे मुस्कराते हुये ही तो अपने कमरे में गये। मुझे तो नहीं लगता कि उन्हें कोई परेशानी है।

आपको लगता हो कि किसी की तबियत सही नहीं है; तो मैं अभी पूँछकर आती हूँ।''

''अरे नहीं! यह बात नहीं। जब मैंने 5 दिन की यात्रा का कार्यक्रम बताया, तब उनके चेहरे पर कितनी खुशी थी; पर जैसे ही उन्हें लगा कि हम उनके अनुसार नहीं जाना चाहते, तो वह खुशी गायब हो गई और हमारी खुशी के लिये, उन्होंने अपनी खुशी को दबा दिया।''

''हाँ! यह तो है! मैंने अपनी खुशी के जोश में इस ओर गौर ही नहीं किया। जब आप कह रहे हैं तो मेरा भी ध्यान जा रहा है; मम्मीजी कैसी बुझी-बुझी सी उठकर कमरे की ओर गई थीं।''

''हाँ! यही कहना चाह रहा हूँ। सुनाक्षी! यदि बुरा न मानो तो एक बात कहूँ?''

''अरे! कहो न! आपकी बात बुरा मानने की तो बात ही नहीं है।''

''सुनाक्षी! मेरे मम्मी-पापा ने मेरी खुशी के लिए ही जन्म से लेकर अभी तक अपनी इच्छा और खुशी को न्यौछावर किया है। तुम्हारे साथ शादी भी उन्होंने अपनी इच्छा के विरुद्ध मेरी खुशी के लिए स्वीकार की है। मैं चाहता हूँ कि मैं मम्मी-पापा की खुशी के लिए उन्हें इस पैकेज में शिखरजी की यात्रा करवा दूँ। मेरी स्वयं की तो ऐसी यात्रा करने की रुचि नहीं है; पर आज तक उन्हें मैंने कोई विशेष खुशी नहीं दी। इस यात्रा से वे जरूर खुश हो जायेंगे। मैं तुम्हें माताजी के दर्शन अगले महिने करवा दूँगा।''

''अरे सौरभ बाबू! आप इतना घबरा क्यों रहे हैं? यदि हमारे पापाजी-मम्मीजी खुश हो जायेंगे; तो मेरे तो समझ लो! माताजी के दर्शन हो ही गये।

मैंने सुना है, आपका यह शिखरजी क्षेत्र बहुत ऊँचे पहाड़ पर है; तो हम समझेंगे हिल स्टेशन पर घूमने ही आ गये और फिर भगवान तो

भगवान होते हैं, तीर्थ पर जाकर हमारे भाव भी सुधरेंगे ही।"

"अच्छा! तो तुम नाराज नहीं होगी; मैं मम्मी-पापा को शिखरजी की यात्रा करवा दूँ।" सौरभ खुश होते हुए बोला।

"मैं नहीं, हम! हमारे मम्मी-पापाजी हैं। आप जरूर ऐसा ही कार्यक्रम बना लीजिये।"

"चलो धन्यवाद, सुनाक्षी! सच में मुझे गर्व है कि तुम मेरी पत्नी हो। मम्मी-पापा को पता चलेगा तो पता नहीं, वे कितने खुश होंगे?"

"मेरा सबसे बड़ा धर्म मम्मीजी-पापाजी की सेवा करना व उन्हें खुश रखना है। मेरी मम्मी ने मुझे यह बात 1 बार नहीं, 10 बार कही थी और मैं इस बात को कभी भूलती नहीं हूँ।"

"जी हाँ! जी हाँ! मुझे भी यह पता है; तभी तो मम्मी-पापा तुमसे धार्मिक विचार न मिलते हुये भी कभी भी तुम्हारी बुराई नहीं करते। चलो मैं अभी नेट पर देखता हूँ, परसों ही सीधी रेल है, यदि तत्काल में टिकट मिल जाता है, तो मैं टिकिट ले लेता हूँ। एक दिन कोलकाता चले चलेंगे, वापिसी का टिकिट यहाँ से ही ले लेते हैं। सुबह मम्मी-पापा को तुम ही यह सूचना देना।"

सौरभ ने लैपटॉप खोलकर देखा तो टिकट उपलब्ब्ध थे। उसने फटाफट चार टिकिट आने-जाने के कर लिये।

सुबह-सुबह सास-बहू का आमना-सामना होते ही सुनाक्षी ने कहा "मम्मीजी! जय जिनेन्द्र।"

"जय जिनेन्द्र! बेटा खुश रहो।"

"मम्मीजी! हमने रिजर्वेशन कर लिये हैं, कल शाम को जाना है।"

"ठीक है बेटा! तुम सामान जमा लो, कुछ काम करना हो तो मुझे बताना। यहाँ की चिन्ता नहीं करना हम सब देख लेंगे।"

"मम्मीजी! आपको भी सामान जमाना है।"

"नहीं बेटा! हम कहाँ तुम्हारे साथ घूमने जायेंगे। दाल–भात में मूसलचन्द।" ऋतुजी हँसते हुये बोलीं।

"हमारे साथ आप नहीं! हम आपके साथ शिखरजी चल रहे हैं। क्षिप्रा से कल के टिकिट हो चुके।"

"क्या शिखरजी? तुम माताजी के दर्शन करने नहीं जा रहीं?"

"माताजी तो मेरे सामने ही खड़ी हैं। आप हमारी खुशी के लिए, अपनी खुशी छोड़ सकती हैं; पर हम सौरभ की खुशी नहीं छोड़ सकते। उनकी खुशी तो आपको खुश देखने में ही है और उनकी खुशी में ही मेरी खुशी है।"

सुनाक्षी की बात सुनकर ऋतुजी और पीछे खड़े जयंतजी की आँखों में खुशी व बहू के प्रति प्यार के आँसू आ गये। सौरभ, सुनाक्षी के पीछे खड़ा यह दृश्य देखकर हार्दिक सन्तुष्टि का अनुभव करते हुए प्रसन्न हो रहा था।

ट्रेन में बैठते ही सुनाक्षी ने अपनी मम्मी को फोन लगाया – "मम्मी! सौरभ को 5 दिन की यात्रा का पैकेज मिला है; इसलिए हम आज ट्रेन से निकल गये हैं।"

"अरे वाह बेटा! यह तो बहुत अच्छा हुआ। तूने पहले नहीं बताया।"

"मम्मी! कल रात को ही कार्यक्रम बना और हम चारों ही आज निकल गये, सामान जमाने में इतनी व्यस्त हो गई कि आपको फोन ही नहीं कर पाई। अभी 2 घंटे पहले ही रवाना हुए हैं। अब फुर्सत थी, तो मैंने सोचा कि अब आपसे बात कर लूँ।"

"चलो! बहुत अच्छा हुआ बेटा! तूने कह भी रखा था कि मैं माताजी

के दर्शन करने जाऊँगी, अब तुझे माताजी के दर्शन हो जायेंगे।''

''नहीं मम्मी! हम माताजी के वहाँ नहीं जा रहे हैं।''

''अरे! तो फिर कहाँ जा रही हो? जयपुर–दिल्ली तो कभी भी घूम सकती थी; इतना अच्छा पैकेज मिला तो वहीं जाना चाहिये था न?''

''मम्मी! हम जयपुर–दिल्ली कहीं नहीं जा रहे।''

''अरे! तो फिर कहाँ जा रही हो?''

''हम शिखरजी जा रहे हैं।''

''शिखरजी! शिखरजी तो बनियों का तीरथ है न?''

''हाँ।'' सुनाक्षी धीरे से बोली।

''अरे! तो तू पागल है क्या? वहाँ का कार्यक्रम क्यों बनाया? तूँ तो माताजी के दर्शन को जाती न।''

''वहाँ पर मम्मीजी–पापाजी तैयार नहीं हो रहे थे।''

''अरे! वे तैयार नहीं हो रहे थे; तो तूँ क्यों तैयार हो गई, फालतू में अपना समय खराब करने के लिए। वह तो अपना तीरथ है ही नहीं।''

''मम्मी! धीरे बोलो न, शिखरजी जाने में क्या हो गया? हम सब जा रहे हैं।''

''क्या हो गया कह रही है? अरे अपने यहाँ बताया है कि मरण का प्रसंग बन जाये तो भी वहाँ नहीं जाना और तू तो मजे से जा रही है।''

सुनाक्षी उठकर दरवाजे के पास आ गई। ''मम्मी आपने ही तो बताया था कि सास–ससुर को खुश रखना; तो मैंने उनकी खुशी के लिए हाँ कह दी।''

''उन्हें खुश रखने के लिए – उनसे प्रेम से बोलो, खाना बनाकर खिलाओ, बीमार हों तो सेवा करो! बस। सास–ससुर को खुश रखने का

मतलब, तूँ अपने भगवान को ही भूल जायेगी ? अपना जन्म का धर्म ही बदल लेगी ? उनको खुश रखने के लिए हमें भी भूल जाना।'' गुस्से में सुनाक्षी की मम्मी ने डाँटा।

''मम्मी तो अब मैं क्या करूँ ?''

''अब तूँ बस इतना समझ ले कि तूँ बस घूमने जा रही है, उनके मंदिर–वंदिर से कोई लेना देना नहीं है। नहीं तो तूँ वहीं पूजन करने बैठ जाये। वहाँ पर भी कोई न कोई माताजी का या अपने भगवान का मंदिर होगा, तूँ वहाँ पूजा कर लेना।''

''ठीक है मम्मी ! अब मैं फोन बंद करती हूँ।'' सुनाक्षी का पूरा मन ही बदल गया। उत्साह व प्रसन्नता गायब हो गई। जब सीट पर पहुँची तब चेहरे पर उदासी देखकर ॠतुजी ने पूछा ''सुनाक्षी बेटा ! क्या हुआ ? पीहर में सब ठीक तो है न !''

''हाँ सब ठीक है ! नहीं कुछ–कुछ ठीक है। नहीं ! वहाँ तो सब ठीक है, मेरा ही सिर दर्द कर रहा है।''

सुनाक्षी की इस तरह की बातें सुनकर, जयन्तजी–ॠतुजी तो क्या हुआ होगा कुछ–कुछ समझ रहे थे, पर सौरभ नहीं समझा; अतः बोला ''सिर दर्द हो रहा तो बाम लगाकर सो जाओ।'' सुनाक्षी आराम करने लगी।

शिखरजी पहुँच कर सुबह बहुत जल्दी ही पहाड़ पर जाना था; पर सुनाक्षी बोली ''मेरे घुटने में बहुत दर्द हो रहा है, मैं पहाड़ पर नहीं जा सकती। आप लोग जा आइये।''

सौरभ ने कहा ''डोली कर लें।''

''नहीं ! पहाड़ पर कुछ तो चलना ही होगा; मेरी तबियत सही नहीं है, वहाँ कुछ हो गया तो सबकी यात्रा बिगड़ जायेगी। आप सभी जाइये, मुझे प्लीज आराम करने दीजिये।'' सौरभ इस तिरिया–चरित्तर को

समझ नहीं पा रहा था पर जयंतजी–ऋतुजी समझ पा रहे थे; पर अब तो कुछ हो नहीं सकता था। वे चुपचाप पहाड़ की ओर चल दिये।

सुनाक्षी सुबह तैयार होकर धर्मशाला से बाहर आई तो पास ही माताजी का मन्दिर था। वहाँ पर पूजन करने बैठ गई। दो घंटे वहीं आरती आदि करती रही। शाम तक तीनों पहाड़ से लौटकर आ गये। दूसरे दिन नीचे के दर्शन करने गये, तब भी सुनाक्षी अनमने ढ़ंग से मंदिरों में जाती।

सुनाक्षी मंदिरों में प्रतिमाओं को देखते हुए सौरभ से बोली "तुम्हारे सभी भगवान एक जैसे ही तो हैं। जब सभी भगवान एक–जैसे हैं तो फिर इतने मंदिर बनाने की क्या जरूरत थी ? मैं तो थक गई एक–जैसा चेहरा देखते–देखते; हमारे मंदिर में जाओ तो एक से एक अलग–अलग आकार, रंग, कपड़े वाले भगवान होते हैं तो मन लगता है। हमारा तो आना ही बेकार हो गया।" सौरभ को इस संबध में कुछ अधिक पता नहीं था; बस इतना ही बोला "जैनों के भगवान ऐसे ही होते हैं। तुमने ही हाँ की थी तब आये हैं।"

"ठीक है जो होना था सो हुआ, आगे से मैं ऐसे पचड़े में नहीं पड़ूँगी। आप जानें और आपके मम्मी–पापा।" सुनाक्षी के इस बदलते व्यवहार को सौरभ समझ नहीं पा रहा था।

कुन्दकुन्द नगर में एक प्रवचन का लाभ भी तीनों ने लिया; जिससे शिखरजी का परिचय, महिमा व वहाँ से मोक्ष पधारे जीवों के बारे में जानकारी पाकर सौरभ के परिणामों में विशुद्धता आई। सौरभ को लगा भी कि मुझे भी जैनदर्शन के बारे में जानना चाहिये; अत: सत्य की खोज, तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, भोलाराम शास्त्री और जिनधर्म प्रवेशिका पुस्तकें खरीदीं। कोलकाता घूमते हुये सब घर आ गये। जयन्तजी व ऋतुजी ने सुनाक्षी को गले से लगाया व आशीर्वाद दिया।

ooo

19

सरलादेवी दादीजी बन चुकीं थीं। दो वर्ष का पोता उनकी गोद में खेल रहा था। कहा जाता है कि मूल से अधिक ब्याज प्रिय होता है। सरलादेवी का पोते के प्रति का राग इस बात को सत्य भी सिद्ध कर रहा था। सरलादेवी पहले तो मंदिर में पूजन व स्वाध्याय के बाद खड़े-खड़े ही महिलाओं से घंटा-आधा घंटा बात कर लिया करती थीं; पर अब तो स्वाध्याय छूटते ही घर की तरफ दौड़ पड़ती हैं। यदि कोई रोके तो भी कहतीं - नहीं, घर पर अनी इंतजार कर रहा होगा।

बचपन में अनिकेत को सरलाजी अनी ही कहती थीं; अतः इसका नाम भी प्यार से अनी ही रखा था। घर पर आकर वे ही नहला-धुलाकर तैयार करतीं और फिर गोद में लेकर उसे मंदिर, दर्शन कराने ले जातीं। जबसे अनी 45 दिन का हुआ और जैनत्व के संस्कार ग्रहण कराये, तबसे वे निरन्तर इस बात का ध्यान रखतीं कि उसका देवदर्शन प्रतिदिन हो एवं किसी कारण से रात्रि भोजन व जमींकंद आदि अभक्ष्य का सेवन उसके द्वारा नहीं हो।

चरणानुयोग कहता है कि जब बच्चा 45 दिन का हो जाये तो उसे णमोकार मंत्र सुनाकर, जैनत्व के संस्कार कराना चाहिए अर्थात् उस दिन से ही सच में वह जैन होता है। 8 वर्ष की आयु तक जिनदर्शन कराना, रात्रि भोजन नहीं कराना व जैनाचार के अनुसार भोजन के नियमों का पालन कराना एवं संतान को समझाना भी अभिभावकों का ही दायित्व है; जिससे कि वह आगे इन नियमों का पालन करती रहे।

सोनम तो जैनत्व के संस्कारों से रहित मस्त-मौला जीवन जीने वाली महिला थी। उसकी तो मान्यता थी कि स्वर्ग-नरक-मोक्ष कुछ है ही नहीं, तो भविष्य की चिन्ता में वर्तमान के सुख को छोड़ना मूर्खता है;

अतः वह तो विशेष अवसर के अलावा कभी मंदिर नहीं जाती थी; न ही श्रावकाचार का पालन करती थी। जैसे बने, कमाओ और जब जो मिले, सो खाओ – यही उसकी मान्यता थी। फिर भी सरलाजी का पोते के प्रति राग देखकर उन्हीं के भरोसे उसने अनी को छोड़ दिया था कि आपका पोता है, आपको जो करना है, कीजिये।

सोनम तो घर पर भोजन आदि की व्यवस्था करके, ऑफिस चली जाती। सप्ताह में 3–4 दिन तो रात को अनिकेत और सोनम घूमने चले जाते। कहीं पार्टी होती या कभी किसी मित्र के साथ पिक्चर जाना या कभी होटल में ही खाना, खाना; उनका चलता रहता था। देर तक जगना और देर तक सोना यही, उनका क्रम था। बेटे के लिए तो सुबह या रात में ही कुछ समय वह देती थी; इसलिए अनी पूरी तरह से दादी के पास ही रहता। दादी के बिना वह एक घंटा भी नहीं रहता था। बस इतना अच्छा था कि सोनम कभी सरलाजी द्वारा किये जा रहे काम में हस्तक्षेप नहीं करती थी।

सोनम का इतना घूमना–फिरना अनिकेत को भी अच्छा नहीं लगता था; क्योंकि ऑफिस से आने के बाद उसकी इच्छा होती थी कि माँ और बेटे दिन भर अकेले रहते हैं। कुछ देर उनके साथ भी बैठा जाये, माँ से सुख–दुःख की बात की जाये और बेटे को गोद में खिलाया जाये; इसलिये कभी तो वह सोनम को बाहर जाने से मना भी कर देता; तब या तो सोनम टी.व्ही. देखने लगती या अपने कमरे में चली जाती या फिर किसी सहेली के घर अकेले ही चली जाती; पर उसे घर पर रहना अच्छा नहीं लगता था। रात को 9–10 बजे यदि अनी जगता हो तो गोद में लेकर कुछ बातचीत करती, उसको खिलाती तब तक अनी को नींद आने लगती; तो वह सो जाता।

रविवार को अनिकेत का ऑफिस बन्द रहता था, संयोग से उस दिन

आदिनाथ जयन्ती थी; इसलिए सरलाजी ने अनिकेत को जगाते हुये कहा कि "बेटा! नहा-धोकर तैयार हो जाओ, आज आदिनाथ जयन्ती है; साथ में ही पूजन करेंगे व प्रवचन सुनेंगे। सोनम तो यह सुनते ही मुँह बिगाड़ने लगी; परन्तु इतने में देखा कि अनी तो तैयार हो गया है और वह तोतली भाषा में बोला –

"मम्मी! चलो न मंदल, आज आदिनाथ भगवान की जयन्ती है।" उसकी मीठी आवाज सुनकर सोनम बोली "अरे राजा बेटा! आज तो बहुत जल्दी तैयाल हो गया। अच्छा मैं भी तैयाल होकर आती हूँ, ठीक है।" सोनम फटाफट तैयार होने चली गई और अनिकेत से कहती गई "आप मंजन कर लीजिये, मैं नहाकर आती हूँ; फिर आप भी जल्दी से तैयार हो जाना।"

बच्चे का मोह कितना होता है – यह देखकर सरलादेवी और अनिकेत मन ही मन हँस रहे थे। मंदिर जाने के लिए, सरलादेवी कहते-कहते थक गईं; पर सोनम जाने को तैयार नहीं होती थी, झगड़ा कर लेती थी। वही सोनम अपने बच्चे के प्यार भरे आग्रह को सुनकर, कितनी जल्दी तैयार हो गई। सरलाजी तो इसलिये खुश हो रहीं थी कि चलो अच्छा है, सोनम की चाबी तो कम से कम मेरे हाथ में है। अब अनी को और अधिक संस्कार दूँगी, जिससे कि वह अपनी माँ को भी प्रेरित कर सके।

सोनम तैयार होकर आ गई; पर आते ही सरलाजी से बोली "वैसे तो मुझे यह सब ढ़कोसलेबाजी पंसद नहीं है; आप बार-बार कहती हैं; इसलिये मैं चल रही हूँ; पर आप प्लीज ये रोज का धंधा मत बना लेना।"

"नहीं बेटा! रोजाना तो तुम्हारे पास समय ही नहीं है, वह तो आज रविवार है न, इसलिये मैंने कहा कि हम साथ में पूजन करेंगे, स्वाध्याय सुनेंगे तो हमारा दिन ही अच्छा हो जायेगा।"

''मम्मीजी! रविवार है, इसलिये नहीं। रविवार तो 6 दिन बाद फिर आ जायेगा; मैं तो आपने कहा न कि कोई जयन्ती है।''

अनी बोला ''आदिनाथ जयन्ती।''

''हाँ! आदिनाथ जयन्ती! तो मैंने सोचा यह तो साल में एक बार ही आती है, तो चलो आपकी बात मान लेते हैं; पर एक बात समझ में नहीं आई; महावीर जयन्ती तो सुनी थी; यह आदिनाथ जयन्ती कहाँ से आ गई?''

''अरे बेटा! 24 तीर्थंकर हैं, उनमें पहले तीर्थंकर ऋषभदेव हैं, उन्हीं का नाम आदिनाथ है, तो आज पहले तीर्थंकर की जयन्ती है। महावीर भगवान 24 वें तीर्थंकर हैं। उनकी जयन्ती भी कुछ ही दिन में आने वाली है। चैत्र कृष्ण नवमी को आदिनाथ भगवान की जयन्ती है और चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को महावीर भगवान की जयन्ती है।''

''अच्छा! इस तरह तो चौबीसों तीर्थंकरों की जयन्ती आती होंगी?''

''आती ही हैं।''

''पर मम्मीजी! हर बार आप मंदिर का नहीं कहना, मेरे दिमाग में ये मंदिर बगैरह बिल्कुल कहीं फिट नहीं होते।''

''हाँ बेटा! नहीं कहेंगे; आज तो प्रसन्नतापूर्वक चलो न।''

इतने में अनिकेत भी तैयार होकर आ गया। मंदिर जाकर सभी ने उत्साहपूर्वक आदिनाथ भगवान की पूजन की। इस अवसर पर आदिनाथ भगवान के जीवन और दर्शन पर गोष्ठी आयोजित की गई थी; जिसमें मुख्यातिथि अनिकेत और विशिष्ट अतिथि सोनम को ही बना दिया; क्योंकि समाज तो इनसे भली-भाँति परिचित थी ही।

अतिथि बनकर मंच पर बैठने से तो दोनों को ही पूरा विषय सावधानी से सुनने का अवसर मिला। सरलादेवी तो यह देखकर मन ही

मन बहुत ही प्रसन्न हो रही थीं। अनी कभी दादी के पास, तो कभी मम्मी–पापा के पास दौड़–दौड़कर धमा–चौकड़ी कर रहा था।

विशिष्ट अतिथि के रूप में बोलते हुये सोनम ने कहा कि "पढ़ाई करते रहने और बाद में अपने काम में व्यस्त रहने के कारण मैं धर्म से दूर ही रही हूँ। मैं सच में धर्म की उपयोगिता ढ़ंग से समझ ही नहीं पाती। मुझे आज सुबह ही मम्मीजी से पता चला कि महावीर जयन्ती के अलावा भी तीर्थंकरों की जयन्तियाँ होती हैं और आज आदिनाथ जयन्ती है। महावीर जयन्ती तो मैं बचपन से जानती हूँ; क्योंकि उस दिन छुट्टी हुआ करती थी। मैंने आज जो भी सुना है; मैं उस पर अवश्य विचार करूँगी। बच्चों ने बहुत अच्छे कार्यक्रम भी दिये, उन्हें हम अपनी मम्मीजी की ओर से इस अवसर पर पुरस्कार वितरण में सहयोग करेंगे।"

मुख्यातिथि के रूप में अनिकेत ने कहा "आज मेरा सौभाग्य है कि मैं अपनी माँ और अपने बेटे के कारण मंदिर में आया हूँ और इतने सुन्दर कार्यक्रम का साक्षी बना हूँ। बच्चों को संस्कार दिये जाना बहुत ही आवश्यक है; क्योंकि जो अपनी मम्मी–पापा की नहीं मानते यदि उनके बच्चे संस्कारित हैं; तो वे बच्चे अपने मम्मी–पापा को भी रास्ता दिखा सकते हैं; इसका उदाहरण हम स्वयं हैं। मैं अगली आदिनाथ जयन्ती तक इतना तो अध्ययन करने का प्रयास करूँगा ही कि मैं अपने पाठशाला के बच्चों के सामने शर्मिन्दा न होऊँ। जैसा कि सोनम ने कहा कि पाठशाला के बच्चों के लिए आप जो भी आवश्यक हो वह मेरी माँ सरलादेवीजी की ओर से ले लें। सम्मान देने के लिए धन्यवाद।"

घर आकर सरलादेवी बोलीं "बेटा! आप लोग बैठो! मैं नाश्ते में बढ़िया गरम–गरम जलेबी और कचोरी बनाती हूँ।"

"अरे मम्मीजी! आप अकेले परेशान क्यों होतीं हैं? अनिकेत समोसे ले आयेंगे।"

"नहीं बेटा! आज आदिनाथ भगवान का जन्म हुआ है। आज बाजार की बनी चीज नहीं लाना, न खाना। अनी तो बाजार के समोसे खाता ही नहीं है। हम घर पर ही नाश्ता तैयार करेंगे। जब तीर्थंकर का जन्म होता है, तब कुछ समय को नरक में भी खुशियाँ छा जाती हैं, तब फिर हम खुशी में जलेबी तो खा ही लें। क्यों अनी बेटा! तुम दादी के हाथ की जलेबी खाओगे न?"

"हाँ दादी! मैं जबेबी खाऊँगा।"

"अनी तो दादी का पिट्ठू है।" हँसते हुये सोनम ने कहा। "पर मम्मीजी! आपने जलेबी के लिए मैदा लगायी थी क्या?"

"नहीं बेटा! हम बाजार की मैदा भी काम में नहीं लेते। मैंने कल घर पर ही बारीक आटा पीस लिया था। उसे अभी गरम पानी में गलाकर बना लेते हैं।"

"अच्छा! मैं भी कपड़े बदलकर आती हूँ, तो सहयोग करती हूँ।"

"कोई बात नहीं बेटा! आराम से आ जाओ।"

सोनम तैयार होकर आ गई। सास-बहू ने मिलकर कचोरी और जलेबी बनायीं और साथ में ही नाश्ता करने बैठ गये।

नाश्ता करते समय सोनम ने कहा "अनिकेत! आप सभा में कह रहे थे कि हममें संस्कार नहीं हैं। संस्कार पाठशाला में मिलते हैं तो क्या मैं तुम्हें संस्कारहीन लग रही हूँ। मैं कभी झूठ नहीं बोलती, दूसरों का हक नहीं मारती, मम्मीजी का सम्मान करती हूँ; पूरा नहीं पर घर का काम भी कुछ न कुछ करती हूँ; आपने तो बिल्कुल संस्कार रहित कह दिया। मैं सभा मैं तो क्या कहती? पर आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए।"

सरलाजी और अनिकेत, सोनम की बात सुनकर मुस्कराने लगे। तब सोनम ने कहा कि "मैं मजाक नहीं कर रही! मैं सही कह रही हूँ। मुझे

यह सुनना अच्छा नहीं लगा और माँ–बेटा, मेरा अपमान करके मुस्करा रहे हैं।''

अनिकेत ने कहा ''सोनू! हमने किसी के अपमान के लिए नहीं कहा था और वहाँ संस्कार नहीं होने का मतलब बेईमानी करना, झगड़ा करना, भ्रष्टाचार करना, माता–पिता का सम्मान नहीं करना, नहीं था। वहाँ संस्कार का मतलब मंदिर आना, पूजन करना, स्वाध्याय करना, जिनशासन के महापुरुषों का परिचय होना, श्रावकाचार का पालन करना था। ये सब संस्कार न तो तुम्हें और न ही मुझे बचपन में किसी भी कारण से मिल सके; जो कि पाठशाला के उन सब बच्चों को मिल रहे हैं और हमारे अनी को भी मिलेंगे। बस यह मतलब था।''

यह सुनकर सोनम का गुस्सा कुछ कम हुआ।

''अनी, तो अपनी दादी की अँगुली पकड़ कर चल रहा है, वह जहाँ ले जायेंगी, वहीं जायेगा।'' सोनम मुस्कराते हुए बोली।

''हाँ–हाँ! मैं तो दादी की अँगुली पकल कल ही चलूँगा।'' इतना कहकर दाँत निकालकर सोनम को चिड़ाने लगा।

''हाँ–हाँ चलो न भइया! मैं कौन–सा रोक रही हूँ।'' सब उसके बचपने पर मुस्कराने लगे।

''मम्मीजी! मैं आपसे एक बात पूँछना चाहती हूँ।'' कचोरी खाते हुये सोनम ने कहा।

''हाँ बेटा! पूछो न।''

''मम्मीजी! कल अष्टमी थी तो आपने एकासन किया, आज आदिनाथ जयन्ती मना रही हो, रोजाना मंदिर जाती हो, पूजन करती हो, खाने–पीने की कितनी चीजों का त्याग किया हुआ है। अनी को भी यही सब कुछ सिखा रही हो और हम तो जब जो अच्छा लगता है, खाते–पीते हैं, मस्त रहते हैं।

मम्मीजी! आपने इस छोटी-सी जिंदगी में ही सब कुछ त्यागकर कुछ मजा ही नहीं लिया। आपने यह सब त्याग इसलिये ही किया है न कि इससे आप नरक नहीं जाओगी, स्वर्ग जाओगी?"

"हाँ बेटा! जिनवाणी में लिखा है कि अभक्ष्य खाने से, पाप करने से, गुस्सा आदि कषाय करने से नरक में जाते हैं। वहाँ हजारों वर्ष के लिए कष्ट होता है, मारा-काटा जाता है और इन सबका त्याग करने से, मंदिर जाने, अहिंसा धर्म का पालन करने से स्वर्ग मिलता है; जहाँ हजारों वर्ष के लिए अनुकूलता मिलती है और धर्म करने का अवसर भी मिलता है।"

"मम्मीजी! आपने यह सब त्याग नरक से बचने और स्वर्ग जाने के लिए किया है; पर मम्मीजी! ये स्वर्ग-नरक किसने देखे? ये न हुये तो आपकी जिंदगी भर के त्याग का क्या होगा?"

सरलाजी सोनम के इस तर्क से सोच में पड़ गईं। सच में ही स्वर्ग-नरक देखे तो हैं नहीं; बस शास्त्रों में लिखे हैं। कहा जाता है कि फलाँ व्यक्ति का स्वर्गवास हो गया; पर स्वर्ग से कभी किसी का फोन तो नहीं आया; तो फिर क्या शास्त्रों में ऐसे ही लिखा हुआ है?

सरलाजी नीची गर्दन किये सोच रहीं थीं, सोनम मन ही मन खुश हो रही थी कि आज, मैंने मम्मीजी को अच्छा फँसाया। अनिकेत सोच रहा था कि देखो! मम्मी क्या जवाब देती हैं।

सरलादेवी धीरे से बोलीं "देखो सोनम बेटा! हमने त्याग किया है, तो भी भूखे तो नहीं रहते। तुम आलू के समोसे खाती हो, हम कच्चे केले के; तुम रात को खाती हो, हम सुबह-शाम भरपेट खाते हैं, तुम सोती रहती हो, हम मंदिर जाकर अच्छी-अच्छी बातें सुनकर अपने विचार अच्छे करते रहते हैं; तो हमारी जिंदगी भूखे-प्यासे रहकर, दुःखी होकर तो कट नहीं रही; इसलिये स्वर्ग-नरक न भी हुये तो हमें क्या हानि है? पर बेटा! जो तुम लोग अनाप-शनाप खाते-पीते रहते हो, मंदिर नहीं

जाते, स्वाध्याय नहीं करते, तत्त्व-विचार नहीं करते - यह तुम इसीलिये नहीं करते न कि स्वर्ग-नरक तो हैं ही नहीं, फिर इन ढ़कोसलों का क्या काम ?''

''हाँ मम्मीजी! बिल्कुल करेक्ट।''

''क्या तुमने सब जगह देख लिया कि स्वर्ग-नरक नहीं हैं ?''

''सब जगह तो कैसे देख सकते हैं।''

''तो फिर बेटा! यदि स्वर्ग-नरक हुए तो तुम्हारा क्या होगा? हमें तो यही चिन्ता रहती है।'' इतना कहकर सरलादेवी नाश्ते की प्लेटें उठाकर रसोई में चली गईं। अनिकेत और सोनम तो सरलादेवी की इतनी सहजता से कही गई गंभीर बात सुनकर सोच में पड़ गये।

OOO

ग़ज़ल

सब द्रव्य निज में रहते, पर में न आते-जाते।
चेतन की भूल भारी, बैठा है स्वामी बनके।।
चेतन स्वभाव ज्ञाता, निरपेक्ष रहकर जाने।
ज्ञेयों से हो प्रभावित, भव बीते दुख सहते।।
होता है कार्य खुद से, दूजा न कोई कर्ता।
इक जीव ही है ऐसा, रहता है कर्ता बनके।।
पर का जो स्वामी बनता, या पर का कर्ता बनता।
है मान्यता यह दुखमय, मिथ्यात्व इसको कहते।।
कर्म का उदय हो, या क्षय-क्षयोपशम हो।
इन सबसे भिन्न रहता, ज्ञाता स्वभाव रहके।।
पर्याय शुद्धाशुद्ध हो, गुणभेद की हो चर्चा।
केवल अभेद आतम, निज में रहो तुम जमके।।

20

जिस समय परिवार से अलग होने के समाचार अस्मिता के पीहर में पता चले थे, तभी अस्मिता के पिता सुरेश बड़कुल ने फोन पर ही अस्मिता से कहा था ''बेटा! आप अलग होने का गलत निर्णय ले रही हो। तुम्हारा कितना अच्छा परिवार है, तुम्हारी सास के स्वभाव की हर महिला प्रशंसा करती है और तुम अलग रहना चाहती हो? संयुक्त परिवार के कितने लाभ हैं, यह तुम नहीं जानतीं।''

''पापाजी! मैं इतने बड़े परिवार में रहकर बहुत बंधन में रहती हूँ। मैं 'लाइफ' में 'फ्रीडम' चाहती हूँ। मैं हमेशा ऐसे बंधन में नहीं रह सकती। यहाँ मेरा दम घुटता है। मेरी सहेली जूली ने अलग होने की सलाह दी है। मैं तो उसकी बात मानकर मजे से रहना चाहती हूँ। आप निश्चिंत रहें, मैं अपने बारे में सब जानती हूँ।''

''बेटा! तुम सही-गलत का भेद नहीं कर पा रही हो। बंधन और स्वतंत्रता को नहीं समझ पा रही; जिसे तू मजा कह रही है न, वह सजा बन जायेगी। तेरे सास-ससुर और जेठ-जेठानी बहुत ही अच्छे हैं, वे सब तेरा ध्यान रखते हैं, हमारी भी हमेशा चिन्ता रखते हैं, तू उनको बुरा कहकर अलग मत हो। सच में तो तेरी सोच बुरी है।'' अस्मिता की माँ ने समझाया।

''मम्मी! आप उन लोगों को नहीं जानते; वे सब मेरे भरोसे घर चलाना चाहते हैं और खुद मजे में रहना चाहते हैं। तुम्हें उनके साथ नहीं रहना, मुझे रहना है; इसलिये मेरी जिंदगी का निर्णय मुझे ही करने दो।'' अस्मिता ने मम्मी-पापा को जवाब दिया।

''बेटा! तुझे पता नहीं क्या हो गया? जो सही बात नहीं समझ पा

रही। ठीक है, तेरी जो मर्जी हो सो कर।'' अस्मिता की मम्मी सुशीला ने भी बहुत समझाया था; पर अस्मिता को तो स्वतंत्र होने की धुन चढ़ी थी, इसलिए वह अलग होकर मजा कर रही थी।

अस्मिता अब स्वतंत्र थी। बच्चे सुबह स्कूल चले जाते, प्रसून भी नाश्ता करके व टिफिन लेकर फैक्ट्री चला जाता। बच्चे स्कूल से तीन बजे वापिस आते थे, तब तक अस्मिता लगभग रोज ही कभी मॉल घूमने, कभी किसी सहेली के घर, तो कभी कुछ खरीदी करने चली जाती।

एक दिन अस्मिता किटी पार्टी में गई हुई थी, उसे पता था कि तीन बजे के पहले घर वापिस आना है; क्योंकि बच्चे 3.00 बजे स्कूल से आ जायेंगे; पर पार्टी में सहेलियों के साथ समय का पता ही नहीं चला। जब घड़ी देखी तो 3.30 बज गये थे; वह घबरा कर एक्टिवा से घर के लिए भागी, घर पहुँचते-पहुँचते 3.45 हो गये।

फ्लैट के दरवाजे पर देखा तो दोनों ही बच्चे रोते-रोते, वहीं जमीन पर ही सो रहे थे। यह देखकर तो अस्मिता को भी रोना आ गया। बड़े प्यार से बच्चों को उठाया। सुखदा तो जागते ही रोने लगी और बोली ''मम्मी आप कहाँ चली गई थीं ? हम कितनी देर से स्कूल से आ गये, हमें कितनी भूख लग रही है। भैया को भी भूख लग रही है। यहाँ पड़ोस में किसी ने दरवाजा भी नहीं खोला, मम्मी मुझे बहुत डर लग रहा था।'' दोनों ही बच्चे रोते हुये मम्मी से चिपक गये।

अस्मिता ने चुप कराते हुये, प्यार से बच्चों को नाश्ता कराया और फिर होमवर्क करने बैठा दिया।

रात को सोते समय सुखदा ने प्रसून की गोद में लेटते हुए कहा ''पापा! आज दिन में मम्मी पता नहीं कहाँ चली गई थीं ?''

''कहाँ चली गई थीं, मतलब ?''

''पापा! जब हम स्कूल से आये तो मम्मी घर पर नहीं थीं तो हम रोते-रोते बाहर ही सो गये। पापा हमें बहुत जोर की भूख भी लग रही थी और बाहर कोई नहीं था; इसलिए डर भी लग रहा था ?'' सुखदा की आँखों में आँसू आ गये।

''अस्मिता! यह सुखदा क्या कह रही है ? तुम दिन में कहाँ गई थीं ?'' प्रसून ने सुखदा को गोद में लिटाते हुये गुस्से में अस्मिता से पूछा।

''बेटा। मैं पहले ही सॉरी बोल चुकी हूँ न।'' अस्मिता ने सुखदा के सिर पर हाथ फेरते हुये कहा। बच्चे तो शिकायत करके सो गये।

''अरे! बच्चों से सॉरी तो ठीक है, पर यह तो बताओ कि तुम गई कहाँ थीं ?''

''प्रसून! मैं सच में क्षमा चाहती हूँ। मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई। मैं किटी पार्टी में गई थी, मुझे 2.45 तक आना था; पर सहेलियों के साथ बातों में पता ही नहीं चला और देर हो गई।''

''तुमने तो कितनी आसानी से कह दिया कि सहेलियों के साथ बातों में समय का पता ही नहीं चला और यदि बच्चों को कुछ हो जाता तो ? घबराकर सड़क पर चले जाते तो क्या हो सकता था ? तुमने कल्पना भी की है ? तुम्हारी सारी किटी पार्टी धरी रह जाती।''

''प्रसून। यह सब मैं समझ रही हूँ; पर जो गलती हो गई, वह तो हो चुकी; आगे से ऐसा नहीं होगा। आखिर बच्चे तो मेरे भी हैं न; मुझे भी तो चिन्ता है।''

''मैडम! आपकी चिन्ता तो 4 महिने में ही समझ में आ रही है कि आप कितनी चिन्ता रखती हैं। जब हम घर पर रहते थे, तब भी तुम्हें कभी पार्टी में या बाजार में देर हो जाती थी, कभी-कभी तुम मेरे साथ

फैक्ट्री भी जाती थीं; पर कभी बच्चों को बाहर नहीं रहना पड़ा, न कभी बच्चे भूखे रहे, न ही कभी आज की तरह उन्हें बाहर सोना पड़ा। चलो हमारा भाग्य अच्छा था कि कोई दु:खद घटना नहीं घटी।'' प्रसून यह कहकर करवट बदलते हुये लेट गया।

अस्मिता भी अपनी गलती अनुभव करते हुये चुपचाप लेट गई और विचार करने लगी – सच में इतने सालों में कभी भी बच्चों को ऐसी परिस्थिति नहीं देखनी पड़ी। मैं कहीं बाहर भी रहूँ तो घर पर मम्मीजी बच्चों को सँभाल लेती थीं और यदि कभी मम्मीजी भी किसी कार्यक्रम में गई हों तो शुभांशी दीदी भी अस्पताल से आकर चारों बच्चों को सँभाल लेती थीं। हमें कभी लगता ही नहीं था कि बच्चे अकेले होंगे। चारों बच्चे मस्त रहते थे। मैं कभी देर से आती तो भी कभी बच्चों ने नहीं कहा कि मम्मी! आप देर से क्यों आई? पर अब तो मुझे समय का ध्यान रखना ही पड़ेगा। यह मुझे स्वतंत्रता मिली या मैं परतंत्र हो गई। यह सोचते-सोचते अस्मिता सो गई।

OOO

जाने कब क्या हो जाएगा? इक पल में क्या खो जाएगा?
ना मैं जानूँ ना तुम जानो, यही सत्य है बस यही मानो।।
मदमाता सा फिरता क्यों है? कुछ पाकर इतराता क्यों है?
जो पाया तूने वर्षों में, वह इक पल में खो जाएगा।।
जो भी दुनिया में आया है, इस जग में जो भी पाया है।
वह पाया है पुण्योदय से, पापोदय में बह जाएगा।।
धन बल पर अभिमान करे क्यों, तन बल की हुंकार भरे क्यों।
तन धन सब हैं मिट्टी मोल अरे! सब मिट्टी में मिल जाएगा।।
देखो सूरज प्रातः उगता, मध्य दिवस में तीक्ष्ण तपता।
जग दहकाने वाला सूरज, संध्या होते ढल जाएगा।।

21

छह महिने में तो अस्मिता का पहनावा व सारी दिनचर्या ही बदल गई थी। पहले तो सतीशजी–सपनाजी के साथ मंदिर जाती, कभी पूजन करती। घर में अतिथि आते तो उनका आतिथ्य करती; पर यहाँ तो किसी का आना–जाना नहीं था, जब सब काम निबट जाते तो 5 मिनट मंदिर जाकर आ जाती और बस काम खतम। अब तो धीरे–धीरे रविवार को सभी देर से उठते तो बच्चों की पाठशाला और इनका भी पूजन करना, स्वाध्याय सुनना छूट गया और अस्मिता तो करीब 2 माह से परिवार के किसी सदस्य से मिली भी नहीं थी; क्योंकि अब रविवार को मंदिर जाती नहीं थी और घर का तो रुख ही नहीं करती थी। घर पर सबकी इच्छा बच्चों से मिलने की होती; परन्तु अस्मिता के स्वभाव को देखते हुए इच्छा दबाकर रह जाते।

प्रसून आवश्यक काम से 5 दिन को मुम्बई गया था, इसलिए घर पर काम और कम हो गया था। सुबह बच्चों का टिफिन बनाकर उन्हें 8 बजे स्कूल भेजकर और भोजन करते ही अस्मिता तो जींस–टी शर्ट पहिनकर, चश्मा लगाकर एक्टिवा लेकर कभी किसी सहेली के घर तो कभी बाजार में निकल जाती और 2.30 बजे तक वापिस आती। अस्मिता की चाल–ढाल देखकर आसपास खड़े हुये लड़के घूर–घूर कर देखते और आपस में मजाक करते रहते।

एक दिन तो जब टाइट जींस टी शर्ट में अस्मिता जैसे ही बाहर निकली; एक लड़का बोला "क्या बात है भाभीजी! कॉलेज में एडमीशन लेने जा रही हैं क्या? बिल्कुल 20 साल की लग रही हो।" अस्मिता घूरते हुए चुपचाप चली गई।

उज्जैन बड़ा शहर है; पर अभी महानगर की संस्कृति वाला शहर नहीं है। यह ऐतिहासिक/पौराणिक और धार्मिक शहर है। ऐसे शहर में अस्मिता लंदन और मुम्बई जैसा जीवन जीना चाहती थी।

बाजार में एक लड़का मिला जो अस्मिता को देखते ही मुस्कराते हुए बोला "भाभीजी! गुड आफ्टर नून।"

"गुड आफ्टर नून; पर मैंने आपको पहचाना नहीं।" अस्मिता ने कहा।

"अरे! मैं प्रसून के कॉलेज का दोस्त सुशीम हूँ। मैं आपसे शादी में मिला था, तब से मिलना नहीं हुआ; पर मैं तो आपको देखते ही पहिचान गया।" वह तो अस्मिता को देखते ही पागल-सा हो गया।

अस्मिता की वेशभूषा और चाल-ढ़ाल किसी को भी आकर्षित करती थी, तब यह तो जवान था। वह बोला "हाय भाभी जी! आप; आप तो अभी भी कुँवारी-सी लग रही हो।"

"अरे! आप भी क्या मजाक करते हो? मैं दो बच्चों की माँ हूँ।" अंदर से खुश होते और बाहर से शर्माते हुये अस्मिता ने कहा।

"मैं मजाक नहीं कर रहा भाभीजी! अरे अभी भी आपकी तरफ से कोई ऑफर आ जाये तो मेरे-जैसा जवान शादी करने तैयार हो जाये। आपकी फिटनेश गजब की है।"

"आप बहुत ही मजाकिया हैं, कितना लम्बा समय हो गया, आपसे मिलना ही नहीं हुआ।"

"अरे! मैं 5 वर्ष से जरा बाहर चला गया था। भाभीजी! आज इतने समय बाद मिले हैं; चलो एक कॉफी हो जाये।"

"चलो! आप इतना आग्रह कर रहे हैं तो एक कप काफी पी लेते हैं।" अस्मिता तो होटलों की शौकीन होती जा रही थी।

अस्मिता सुशीम के साथ कॉफी-हाउस चली गई। अस्मिता की ड्रेस इतनी अधिक शरीर दिखाऊ थी कि सुशीम कॉफी पीते हुये कनखियों से अस्मिता के ही अंग-अंग का माप ले रहा था और झूठी प्रशंसा कर रहा था। अस्मिता अपने फिगर की प्रशंसा सुन-सुन कर खुश हो रही थी। सुशीम को लग रहा था मछली जाल में फँसती जा रही है। बातों ही बातों में सुशीम को पता चल चुका था कि प्रसून घर पर नहीं है; आज रात को मुम्बई से आने वाला है। बच्चे भी अभी स्कूल गये हुये हैं। मैदान खाली है कुछ कर गुजरना चाहिए; यही सोचकर काफी-हाउस से बाहर आते ही सुशीम ने कहा "भाभीजी! मैं बहुत दिन बाद विदेश से लौटा हूँ, मैं आपको अपनी ओर से एक गिफ्ट देना चाहता हूँ, प्लीज आप मना मत कीजियेगा।"

सुशीम के आग्रह के सामने वह बात नहीं टाल सकी। दोनों ही कपड़े की दुकान पर गये। वहाँ अस्मिता ने सूट दिखाने के लिए कहा दो-तीन सूट देखे, इतने में सुशीम ने कहा "भाभीजी। आप इतनी स्मार्ट होकर यह क्या ड्रेस देख रही हैं, आप पर तो वह स्कर्ट-टॉप जमेगा।"

"वह, वह तो बहुत छोटा है।"

"अरे भाभीजी! विदेश में तो सभी लड़कियाँ ऐसी ही ड्रेस पहिनती हैं। आप यही समझना मैं लंदन से ही यह ड्रेस लाया हूँ। आप जब यह ड्रेस पहिनकर प्रसून के सामने जाओगी तो वह तो एकदम पागल हो जायेगा। आप पर यह ड्रेस एकदम सही लगेगा। प्लीज भाभीजी! आप मेरी ओर से यही ले लीजिये।"

"ठीक है! आप कहते हैं तो आपकी पसंद की ही ले लेते हैं।"

सुशीम ने पैसे चुकाये और दोनों बाहर आ गये।

बाहर आते ही अस्मिता ने कहा कि "आज रात को प्रसून आ

जायेंगे, तो कल आप घर पर जरूर आइयेगा। कल रविवार भी है, साथ में ही भोजन करेंगे।''

''अरे नहीं भाभीजी! मैं तो कल दिल्ली जा रहा हूँ, वहाँ से ही मैं लंदन चला जाऊँगा। घर पर फिर कभी आऊँगा।''

''आप कल ही जा रहे हैं; तो आज ही घर चलिये, हमारा घर तो देखते चलिये।'' मन न होते हुये भी अस्मिता ने औपचारिकतावश कहा।

सुशीम तो यही चाहता था; इसलिए तुरंत ही बोला ''भाभीजी! आप इतना आग्रह कर रहीं हैं; तो आधा घंटे के लिए चलता हूँ। मेरे पास साधन नहीं है; अतः आपके स्कूटर पर ही चलते हैं; पर मुझे दो पहिया चलाने की आदत नहीं है।''

''कोई बात नहीं! मैं चलाती हूँ, आप बैठिये।''

रास्ते में अस्मिता ने कई बार अनुभव किया कि सुशीम के हाथ अनावश्यक रूप से उसके शरीर को छू रहे हैं, वह आगे खिसकती है, तो सुशीम भी आगे खिसककर आ जाता है। उसे बड़ा ही 'ओड' लग रहा था, पर क्या करे? जैसे ही घर आया दरवाजा खोलकर वह अंदर पहुँचे। पहुँचते ही सुशीम बोला ''भाभीजी! मैं तो कल चला जाऊँगा, मैं आपको अपनी पसंद की ड्रेस में देख ही नहीं पाऊँगा। प्रसून तो आपको देखकर रोज मजे लेगा। प्लीज भाभीजी! आप ड्रेस पहिनकर तो दिखा दो, आप उसमें 'मिस इंडिया' लगने लग जाओगी।''

अस्मिता का मन तो नहीं था; पर एक तो मनुष्यों की सबसे बड़ी कमजोरी अपनी प्रशंसा सुनना होती है। वह कमजोरी अस्मिता की भी थी और दूसरी बात, ड्रेस जिसने दिलाई वह कल ही जाने वाला भी था; इसलिए वह ड्रेस पहिनने के लिए तैयार हो गई। अस्मिता ने कहा ''पहले कुछ नाश्ता लगा दूँ।''

"अरे नहीं भाभीजी! समय खराब न करें नाश्ता तो करते रहेंगे। आप तो बस ड्रेस बदलकर आइये।"

अस्मिता ने ड्रेस पहिन ली। स्कर्ट में जाँघ तक पैर दिखाई दे रहे थे और टॉप भी छोटा ही था। ऐसे कपड़े अस्मिता ने भी कभी पहिने नहीं थे, पहिनने की इच्छा जरूर थी; अतः उसे लगा कि मानो उसकी मुराद पूरी हो गई। प्रसून तो ऐसी ड्रेस लाते नहीं। अब कह देगी कि सुशीम ने दी है तो मैं क्या करूँ?

जैसे ही अस्मिता कमरे से बाहर आई, सुशीम सोफे से खड़ा हो गया और बोला "बाव भाभीजी! आप क्या गजब लग रही हैं, मानों परी-लोक से उतरकर आ गई हों। वाह मेरी जान! मैंने अभी तक ऐसी सुन्दरता नहीं देखी।"

सुशीम अस्मिता के करीब आकर कंधे पर हाथ रखने ही वाला था कि अस्मिता अचानक मानो जाग गई हो "ये सुशीम बाबू! आप मेरी जान किसे बोल रहे हो? मैं प्रसून की जान हूँ।"

"अरे! यह तो मुझे पता है; पर थोड़ी देर के लिए मेरी जान बन जाओ न प्लीज।" सुशीम अपनी बाहों में भरने के लिए आगे बढ़ा।

अस्मिता अब जाग चुकी थी "ये मिस्टर! जरा सम्हलकर जबान व हाथ चलाइये।" इतने में ही स्कूल से बच्चों के आने की आवाज आई। अस्मिता भागकर कमरे में गई और ड्रेस बदल कर साड़ी पहिनकर कमरे में आई, उसके हाथ में ड्रेस का पैकेट भी था।

सुशीम नीची गर्दन किये बैठा था, उसके हाथ में पैकेट पकड़ाते हुये अस्मिता ने कहा कि "अब आप उठिये और यह ड्रेस अपनी बहिन को पहिना कर, उसे ही अपनी जान बना लीजिये।"

"भाभीजी! आप तो नाराज हो गईं। मैं तो केवल मजाक कर रहा था। प्लीज आप प्रसून से कुछ मत कहियेगा। क्या अब चाय पिलायेंगी।"

"सुशीम बाबू! हम अभी काफी पीकर आये हैं, मेरे बच्चे आ गये हैं, अब आप प्लीज चुपचाप चले जाइये; नहीं तो ठीक नहीं रहेगा।"

"ओ.के., ओ.के. इतना गरम क्यों होती हैं? आप बाजार में तो कमर मटकातीं, जिस्म दिखातीं, घूमती हों और अब सती-सावित्री बन रही हो?"

"अब आप जाते हैं या मैं पुलिस को फोन करूँ।"

"हाँ-हाँ जाता हूँ! फिर कभी मिलूँगा तब बताऊँगा मैडम।" अस्मिता को घूरते हुये सुशीम सीढ़ियाँ उतर गया तब अस्मिता की जान में जान आई।

अस्मिता दरवाजे से ही बच्चों को आवाज लगाने लगी सुखद-सुखदा। अस्मिता भगवान को धन्यवाद देते हुये सोचने लगी ओह गॉड! आज तो अस्मिता की अस्मिता बच गई। हे भगवान मैं कैसे बहकने लगी थी। यदि अचानक होश नहीं आता तो आज क्या होता? मैं प्रसून, मम्मी, पापा को क्या मुँह दिखाती? इतने में बच्चे आ गये वह उनको सम्हालने में लग गई।

रात को 10 बजे प्रसून मुम्बई से आया। बच्चे सो गये थे। पलंग पर लेटते ही प्रसून के हाथ पर सिर रखते हुये अस्मिता बोली "प्रसून। आप नाराज न हों तो मुझे आपको एक बात बतानी है।"

"जरूरी नहीं हो तो कल बताना, मुझे नींद आ रही है।"

"प्लीज 10 मिनट।"

"अच्छा बोलो। ऐसी क्या बात है? बहुत ही सीरियस दिख रही हो।"

"बात ही सीरियस है। आज आपका एक दोस्त जो लंदन में रहता है, वह मिला था।"

''मेरा दोस्त लंदन में? मेरा तो कोई दोस्त लंदन में नहीं रहता।''

''अरे रहता है। वही कह रहा था 5 साल बाद भारत आया है।''

''कौन है? नाम तो बताओ।''

''उसका नाम सुशीम है।''

''अरे सुशीम! वह तो कॉलेज के समय साथ में पढ़ता था, पर वह मेरा दोस्त नहीं है। वह तो पक्का मवाली है।''

''हैं! आप क्या कह रहे? मवाली है! हे भगवान आज तो आपने मेरी रक्षा कर ली।''

''हाँ! वह तो अभी किसी महिला से छेड़खानी के केस में 5 साल जेल में था। हो सकता है जेल से आ गया होगा।''

अस्मिता जोर-जोर से रोने लगी।

''अरे क्या हुआ? क्या वह घर पर आया था? उसने कुछ कहा क्या? बताओ तो सही मैं सुबह ही उसे मजा चखा दूँगा।''

अस्मिता ने रोते हुये सारी घटना बता दी।

प्रसून ने अस्मिता को गले लगाते हुये कहा। चलो हमारी किस्मत अच्छी है, जो तुम्हें समय पर सद्बुद्धि आ गई। अस्मिता! देखो! आज तो तुम दो बच्चों की माँ हो; पर जब तुम शादी करके आई थीं, जवान थीं उस समय भी क्या किसी ने तुम्हारी तरफ गलत तरीके से देखा? नहीं न? क्योंकि उस समय तुम्हारा पहनावा भारतीय संस्कृति के अनुसार था। हम संयुक्त परिवार में रहते थे, कोई न कोई तुम्हारे आसपास रहता था तो किसी को देखने की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

अब तुम जब से ये टाइट और छोटे कपड़े पहिनकर, सड़क पर अनर्गल घूमने लगी हो और परिवार से अलग हो गई हो तो सबकी नजरें

उठती हैं। सबको पता है कि दिनभर घर पर कोई नहीं है तो लोग तुम्हारे रहन-सहन से मन ही मन कुछ भी कल्पना कर लेते हैं।

चलो कोई बात नहीं! हमारी इज्जत बच गई; नहीं तो जिंदगी भर रोने के अलावा कुछ भी हाथ नहीं रह जाता। अब सोचना कि हम पहले प्रसन्न थे या अब ? हम पहले सुरक्षित थे या अब ? वह बंधन अच्छा था या यह स्वतंत्रता ?''

अस्मिता आँसू बहाते हुये प्रसून का हाथ पकड़कर चुपचाप लेट गई।

प्रातः अस्मिता 7 बजे ही तैयार हो गई और प्रसून व बच्चों को जगाते हुये बोली ''अरे उठो सभी, आज रविवार है। पूजन और पाठशाला में नहीं चलना क्या ?''

''मम्मी ! प्लीज ! थोड़ा और सोने दो न। पाठशाला तो कई रविवार से नहीं गये, तो आज भी नहीं जायेंगे; दर्शन करने चले चलेंगे।''

''नहीं बच्चो ! पाठशाला चलना है, हमारे प्यारे राजा बेटे ! तो जल्दी उठकर तैयार हो जाते हैं।''

प्रसून भी बोला ''अरे मैडम ! सोने दो न, मैं रात को ही तो मुम्बई से लौटा हूँ। अगले रविवार चलेंगे पूजन व स्वाध्याय में।''

अस्मिता चादर खींचते हुये बोली – ''नहीं साहबजी ! अब नहीं सोना। अभी कोई जल्दी नहीं है 7.30 बज गये हैं, आधा घंटे में सब तैयार हो जाओ। 8:30 तक मंदिर पहुँचना है। दादा-दादी वहाँ इंतजार कर रहे होंगे।''

प्रसून अस्मिता की बातें सुनकर आँखें मलते हुये उठा। दादा-दादी का नाम सुनकर सुखद-सुखदा भी उठे और सोचने लगे कि हम जाग रहे हैं या सपना देख रहे हैं। प्रसून व बच्चे एक दूसरे की तरफ देखने लगे।

"अस्मिता! तुम्हारी तबियत तो ठीक है न?"

"क्यों क्या हुआ मेरी तबियत को?"

"नहीं! हुआ तो कुछ नहीं है; पर आज तुमने साड़ी पहनी है और....."

"तो क्या आपने मुझे साड़ी पहने नहीं देखा है, पहली बार देख रहे हो?"

"इतने जल्दी तैयार होकर महिनों बाद पूजन में चलने के लिए कह रही हो?"

"अच्छा तो मैं पूजन नहीं करती थी क्या? अब आप सब यह मत सोचो, फटाफट उठो और तैयार हो जाओ।"

अस्मिता रसोई में से जग में पानी लाते हुये बोली "बच्चो! यह पानी रखा है। सब मंजन करो फिर नहाओ तब तक मैं दूध तैयार करती हूँ। दूध पीकर मंदिर चलना, नाश्ता भी तैयार करके रख देती हूँ।"

"मम्मी! ब्रेड खा लेंगे न?"

"नहीं! ताजा नाश्ता बनाती हूँ।"

प्रसून यह परिवर्तन देखकर मन ही मन खुश हो रहा था कि पूरा परिवार हम सब को मंदिर में देखकर कितना खुश हो जायेगा।

मंदिर के बाहर ही प्रसून को पूरा परिवार मिल गया। सुखद-सुखदा तो दादू-दादी चिल्लाते हुये लिपट गये। आर्या-आर्यन ने चाची के पैर छुये, प्रसून-अस्मिता ने भी सबके पैर छुये। संक्षेप में हालचाल पूँछकर सब मंदिर में पहुँच गये सबने एक साथ पूजन की। बड़ों ने स्वाध्याय व बच्चों ने पाठशाला का लाभ लिया।

घर जाते समय अस्मिता ने सपनाजी से कहा "मम्मीजी! आर्या-

आर्यन को हमारे साथ भेज दीजिये। आज रविवार है, दिनभर वहीं रह लेंगे। बच्चों को भाई-बहिन के साथ खेलने को मिल जायेगा। शाम को इनके चाचा छोड़ देंगे ? दीदीजी आप बोलो न ?''

''बच्चे जाना चाहें तो जायें, मैं मना थोड़ी कर रही हूँ।'' शुभांशी ने कहा।

''हाँ-हाँ! हम चाची के घर जायेंगे।'' आर्या-आर्यन प्रसन्न होते हुये बोले।

सतीशजी बोले ''बेटा! तुम सब ही चलो न घर। यहीं सब भोजन करेंगे बच्चे भी खेल लेंगे।''

''पापाजी! हम फिर आयेंगे। ये आज ही मुम्बई से आये हैं, तो इन्हें भी काम है और मुझे भी कपड़े धोने हैं।''

''ठीक है! आर्या-आर्यन! तुम चाची के साथ जाओ। आज मुझे व शुभांशी को अस्पताल में काम भी है।

अच्छा ठीक हैं।'' मयंक ने कहा।

बच्चे तो सबको जय जिनेन्द्र करके चाचा की गाड़ी में बैठ गये।

सतीशजी व सपनाजी की आँखों में खुशी के आँसू थे। मयंक और शुभांशी भी मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे।

बच्चे दिन भर साथ में खेलकर प्रसन्न हो गये। प्रसून शाम को बच्चों को घर छोड़ने गया तो पता चला कि मयंक और शुभांशी आज अस्पताल में बहुत व्यस्त हो गये हैं; क्योंकि कोई नया वायरस फैल रहा है; जिससे पूरे विश्व में ही बीमारी फैल रही है।

गुरुवार को छतरपुर से फोन आया कि अस्मिता के पापा का स्वास्थ्य

खराब है। अस्मिता बोली "मुझे तो कुछ दिन के लिए छतरपुर जाना है; पर इतने दिन बच्चे कहाँ रहेंगे?"

प्रसून ने जानकर ही यह नहीं कहा कि घर चले जायेंगे, उसने कहा "तुम्हीं सोच लो, किस सहेली के घर छोड़ना है।"

अस्मिता भी हिम्मत नहीं कर पा रही थी कि वह कह दे कि आप बच्चों को लेकर घर चले जाना; क्योंकि बहुत ही हिम्मत करके घमंड में तो अलग होकर बाहर निकली थी। अब साल भर के अंदर ही कैसे अपने आप वापिस जाने का बोले! क्या पता मम्मीजी या दीदी कहेंगी आ गई न अकल ठिकाने, बाहर रही तो सब गर्मी उतर गई। इस अहंकार में वह कुछ तय नहीं कर सकी और आज वह छतरपुर नहीं जा सकी।

शुक्रवार को दिन भर उसने सहेलियों से बच्चों को उनके घर रखने की बात की, प्रसून के सामने ही कई जगह फोन लगाये; पर किसी ने बीमारी फैलने का भय तो किसी ने कहीं बाहर जाने की बात, तो किसी ने और कोई कारण कहकर टाल दिया।

प्रसून ने कहा कि "कुछ तय हुआ! कहाँ छोड़ना बच्चों को? या फिर मत जाओ छतरपुर।"

"नहीं, पापा की तबियत खराब है तो मुझे जाना तो है ही। कोई सहेली हाँ नहीं कह रही। कहाँ छोड़ें? समझ में नहीं आ रहा।"

"देखो! मैं इतने दिन फैक्ट्री तो छोड़ नहीं सकता।"

"हाँ! यह तो मुझे भी पता है। आप बुरा नहीं माने तो एक बात कहूँ?"

"क्या?"

"क्यों न आप दो-तीन दिन के लिए बच्चों को लेकर घर ही चले

जाओ। वहाँ सब लोग हैं, तो बच्चों का मन भी लग जायेगा और दादा-दादी को बच्चे मिल जायेंगे।''

''देखो! तुम कहो तो मैं तो चला जाऊँगा; पर तुम्हारी इज्जत खराब नहीं होना चाहिए।''

''अरे वाह! अपने घर में जाने पर इज्जत क्यों खराब हो जायेगी ?''

''अपने घर में ?''

''तो और किसका घर है ?''

''अच्छा ठीक है! जब तुम आ जाओगी तब यहीं आ जायेंगे; पर घर पर बच्चों को भेजने की बात तुम्हीं मम्मी से करो।''

''हाँ मैं कर लेती हूँ न।'' अस्मिता ने फटाफट मोबाइल उठाकर मम्मी को लगाया। सपनाजी ने मोबाइल पर अस्मिता का नंबर देखकर आश्चर्य और शंका में जल्दी से फोन उठाया।

''जय जिनेन्द्र! मम्मीजी!''

''जय जिनेन्द्र! बेटा!''

''मम्मीजी! छतरपुर में पापा की तबियत खराब है, परसों फोन आया था।''

''परसों फोन आया था और तुम अभी तक यहीं हो। तुम छतरपुर क्यों नहीं गईं ?''

''मम्मीजी! बच्चों को कहाँ छोड़ें यह तय नहीं कर पायी।'' अस्मिता संकोच करते हुए धीरे से बोली।

''क्यों अपना घर नहीं था ? हम इतने पराये हो गये कि हमारे बच्चे यहाँ नहीं रह सकते ?''

''सॉरी, मम्मीजी! मैं शर्म के मारे कह नहीं पा रही थी। मैं आज ही

जा रही हूँ और प्रसून के साथ बच्चों को शाम तक घर पर भेजती हूँ, सब घर पर ही आपके पास रह लेंगे।''

''बेटा! तुम निश्चिंत होकर जाओ, मैं सब देख लूँगी।''

''जी मम्मीजी! मैं जाकर सब समाचार देती रहूँगी।''

अस्मिता दोपहर में छतरपुर के लिए निकल गई, सुबह छतरपुर पहुँच गई। शनिवार-रविवार छतरपुर रुकी। पापाजी को बुखार-खाँसी थी जो दवा लेने से पूरी सही हो गई। देश में कोरोना बीमारी फैल रही थी – यह समाचार आते ही अस्मिता बच्चों के लिए चिन्तित हुई। उसने कहा ''पापा मैं अब उज्जैन चली जाऊँ?'' उन्होंने कहा ''एक दिन और रुक जाओ।''

मंगलवार को सरकार ने 21 दिन का लॉकडाउन कर दिया। अस्मिता को बहुत चिंता हुई, पर फोन पर जब भी बात होती; प्रसून कहता तुम चिन्ता न करो, अब तो फैक्ट्री भी बंद है, हम सब घर में ही रहते हैं। मयंक भइया ने जो भी आवश्यक हैं सबके चैकअप भी कर लिये। बच्चे सब मस्त हैं।''

जब भी अस्मिता बच्चों को फोन पर बुलाती तो सुखद-सुखदा एक मिनट बात करके ''बस मम्मी! हम आर्या के साथ खेले रहे हैं, या हम दादी से कहानी सुन रहे हैं या कभी हम दादू के साथ खेल रहे हैं – यही कहकर भाग जाते। 15 दिन हो गये, पर बच्चे अपनी तरफ से तो कभी फोन ही नहीं करते। यह सोचकर ही वह काँप जाती कि यदि बच्चे घर पर नहीं गये होते तो आज क्या होता। जिनके लिए मैंने बुरा-भला कहकर अपना अलग घर बसाया; आज वे ही काम आ रहे हैं।

सपनाजी लगभग रोजाना फोन करके समधीजी के स्वास्थ्य के बारे में पूँछती; अस्मिता से भी बात करतीं और बच्चों की ओर से निश्चिंत

रहने के लिए कहतीं; अस्मिता भी कहती कि "जब सब घर में ही हैं तो मैं क्यों चिन्ता करूँ?"

अस्मिता के मम्मी-पापा जब भी अस्मिता के साथ बैठते, उसे समझाते कि "देखो बेटा तुम्हारे सास-ससुर कितने अच्छे हैं, यदि आज वे न होते तो बच्चों को कहाँ छोड़कर आतीं?

मयंक और प्रसून में भी कितना प्रेम है। तूने दोनों भाइयों को अलग किया। तूँ नहीं समझती कि इसका कितना पाप लगेगा? शुभांशी दिनभर व्यस्त रहती है, पैसा कमाती है, जब भी बाहर जाये तुझे और तेरे बच्चों को भी अपने-जैसा सामान लाती है और फिर भी तू तुलना करती है कि तुझे घर पर काम करना पड़ता है। 3-3 तो नौकर लगे हैं, फिर क्या काम करना पड़ता है?

बेटा! इतना अच्छा परिवार महाभाग्य से मिलता है। सभी के साथ रहने से हम सहयोग, समन्वय, समझौता सीखते हैं, एक-दूसरे के काम आते हैं। तू स्वयं अनुभव कर रही होगी कि सबके साथ रहने पर कितनी स्वतंत्रता थी, निर्भयता थी और स्वतंत्र रहने पर कितनी परतंत्रता है और कितना भय है? आज के लोग 'फ्रीडम' और 'लाइफएन्ज्वाय' करने के नाम पर स्वच्छंद हो रहे हैं, जिससे अनैतिकता बढ़ रही है, आपस का प्रेम व विश्वास समाप्त हो रहा है, अनाचार और विलासिता बढ़ रही है, जो परिवार व समाज के लिए अच्छी नहीं है। हम तो यही चाहते हैं कि मेरी बेटी पाश्चात्य संस्कृति में दूसरों की देखादेखी न बहे। सब क्या करते, उससे क्या लेना-देना? क्या सब हमारे साथ सुख-दुःख भोगने वाले हैं?

तुझे धार्मिक, सम्पन्न, सक्रिय, सामाजिक भरा-पूरा परिवार मिला। पूरे परिवार ने तुझे और हमें हँसाया पर तूने उन सबको रुलाया - यह हमें अच्छा नहीं लगा।" अस्मिता चुपचाप सुनती रहती।

धीरे–धीरे करते 21 दिन पूरे हुये। विशेष अनुमति लेकर अस्मिता बस से उज्जैन पहुँची। सुबह बच्चे स्कूल जा चुके थे। प्रसून अस्मिता को लेकर फ्लैट की ओर चल पड़ा।

''आप इधर कहाँ ले जा रहे हैं?'' अस्मिता ने कहा।

''अपने घर।''

''अपना घर इधर थोड़ी है?''

''अरे मैडम जी! 25 दिन में घर का पता ही भूल गईं क्या?''

''नहीं भूली नहीं हूँ। भूल गई थी, वह याद आ गया हैं। आप मम्मीजी–पापाजी के घर ले चलिये।''

प्रसून तो यह सुनकर बहुत खुश हुआ; पर बोला ''तुम्हारा दिमाग तो सही है, तुम्हारे कपड़े और सामान तो वहीं हैं।''

''दिमाग तो मेरा पहले खराब हुआ था जो अब सही हो गया है, सामान आपको जब समय मिले तब उठा लाना।''

''पर तुम्हारी स्वतंत्रता का क्या होगा?''

''स्वतंत्र तो मैं थी ही, बीच में अहंकार में परतंत्र हो गई थी, पर अब मैं स्वतंत्र ही हूँ।''

प्रसून खुशी में अस्मिता का हाथ दबाते हुये गाड़ी अपने घर की ओर मोड़कर ले चला।

दरवाजा सपनाजी ने ही खोला। उन्होंने अस्मिता को देखा तो बड़ा आश्चर्य हुआ; पर प्रेम से बोलीं ''आओ बेटा आओ। शुभांशी! देखो अस्मिता आई है।''

अस्मिता ने मम्मीजी, पापाजी, मयंक, शुभांशी का योग्य अभिवादन किया। सभी ने छतरपुर में सभी के हालचाल पूँछे।

शुभांशी ने कहा "प्रसून! यह आपने अच्छा किया, जो अस्मिता को यहाँ ले आये, क्योंकि फ्लैट तो करीब 1 महिने से बंद था, वहाँ जाकर यह क्या करती?"

"हाँ–हाँ! यहीं तैयार होकर, भोजन करके फिर दिन में ले जाना।" सपनाजी ने कहा।

अस्मिता ने नीची गर्दन किये हुये कहा "मम्मीजी! आप क्या मुझे माफ करके इस घर में जगह देंगी, मैं अब इस घर से वहाँ नहीं जाना चाहती।

दीदी! आप भी मुझे माफ कर दीजिये न, मैंने आपके प्यारे सुखद–सुखदा को आप से दूर किया।

पापाजी! आपसे भी क्षमा चाहती हूँ। मैंने अहंकार व स्वार्थ के नशे में आपके बेटे व पोते–पोती को आप से दूर करके आपको दुःखी किया। आप सबको दुःखी करने व स्वतंत्र रहने का फल मैं भोग चुकी हूँ।" हाथ जोड़कर, पैर छूते हुये अस्मिता ने सभी से क्षमा माँगी। सभी की आँखों में खुशी के आँसू थे। शुभांशी ने तो उसे गले लगा लिया।

"अस्मिता! तुम्हारे जाने के बाद मम्मीजी–पापाजी तुम सबको कितना याद करते थे, मैं बता नहीं सकती मानो घर से खुशियाँ ही चली गई थीं। आर्या–आर्यन भी सुखद–सुखदा से मिलने के लिए तरसते थे। चलो! कोई बात नहीं, तुम तो मेरी छोटी बहिन हो; अब आ गई तो घर में फिर से खुशियाँ आ गईं।"

"दीदी! आप कितनी अच्छी हैं, आप सबने मुझे माफ कर दिया, मैं आपकी आभारी रहूँगी।"

"अरे तू तो पागल है! कैसी बात करती है, हम नाराज ही कहाँ थे? तुम सब साथ नहीं थे, तो दुःखी थे अब साथ रहेंगे, तो सब खुश रहेंगे।

पापाजी तो मेरे हाथ का भोजन कर-करके बोर हो गये, आज से तो अस्मिता ही भोजन बनायेगी।''

''हाँ-हाँ! मैं ही बनाऊँगी। मैं अभी तैयार होकर मंदिर जाकर आती हूँ।''

''अरे नहीं बेटा! तू थक गई होगी। आज तो हम बना लेते हैं तुम कल से बनाना।''

''नहीं मम्मीजी! आराम करते-करते थक गई, अब काम करूँगी तो थकान मिटेगी।'' अस्मिता आँसू पोंछते, हँसते हुये स्नानगृह में चली गई।

अस्मिता मंदिर से आकर खाना बना रही थी कि तभी अस्मिता का फोन बज उठा; सपनाजी ने फोन उठाया –

''हलो! अस्मिता!'' उधर से आवाज आई

''नहीं, मैं उसकी सास बोल रही हूँ। आप कौन ?''

''मैं जूली; पर आप अस्मिता की सास बोल रही हो ?''

''क्यों, सास बोल नहीं सकती क्या ?''

''मम्मीजी! किसका फोन आया है ?'' अस्मिता ने कहा।

''बेटा! देख तो किसी जूली का फोन है, मैं बात कर रही हूँ, तो उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा कि मानो मैं कहाँ से आ गई।''

संयोगवश आज ही जूली का फोन आ गया।

अस्मिता ने मोबाइल कान से लगाते हुये बोला ''हलो, जय जिनेन्द्र।''

''जय जिनेन्द्र! अरे यार तूँ तो अलग रहने लग गई थी; पर तेरी सास यहाँ भी आ गई क्या ? तेरे भाग्य में मजा है ही नहीं, जो तेरी सास सजा देने यहाँ भी आ गई।'' जूली ने कहा।

अस्मिता एकदम गुस्से में आपे से बाहर होते हुये बोली "करम जली जूली! तूँ अपना घर तो बसा नहीं पाई; पर तूने मेरा स्वर्ग जैसा घर उजाड़ने की शिक्षा जरूर दे दी। मुझे तेरी सीख से मजा नहीं, सजा मिली है; स्वतंत्रता नहीं, परतंत्रता मिली है और सासूजी सजा नहीं दे रही हैं, मुझे इनके साथ ही असल मजा है।" परिवार के सभी सदस्य अस्मिता को इस तरह बात करते पहली बार देख व सुन रहे थे।

"अरे! तूँ क्या बात कर रही है ? तुझे 'फ्रीडम' नहीं चाहिये ?"

"तेरा 'फ्रीडम' तूँ अपने पास रख। आइंदा से मुझे फोन नहीं करना, नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। चल फोन रख मैं खाना बना रही हूँ।"

अस्मिता ने फोन बंद करके जोर से रख दिया। सपनाजी मन ही मन अपनी बहू पर गर्व कर रही थीं। सतीशजी खुश थे कि संयुक्त परिवार कितना खुशहाल रहता है, कितना पावरफुल होता है, इसके लिए उनका परिवार सशक्त उदाहरण बन गया है। बस थोड़ी सी समझ, सहयोग की भावना, निश्छलता, उदारता हो तो संयुक्त परिवार जैसा आनंद कहाँ?

OOO

दोष गैरों के देखकर ही उम्र गुजार दी,
इनयात खुद पर भी नजरें हम आज कर दें।
आईना ही करते रहे साफ हम तमाम उम्र,
चलो धूल चेहरे की भी अब साफ कर दें।।

22

युवराज परिवारों में चलने वाले द्वन्द्वों से बहुत कुछ परिचित था और यह भी जानता था कि जो कुछ भी सुनने में आता है, उससे बहुत अधिक हो रहा है और यह भी कि सब लोग अपनी बात कहीं खुल न जाये इसके लिए कहते भी नहीं है।

इन द्वन्द्वों का कारण प्रत्येक जीव की अपनी योग्यता, अपना उदय, और अपनी भवितव्यता है। कोई एक चाहे कि सब कुछ मेरे अनुसार हो तो संभव नहीं है। अज्ञानी हर क्षण अपनी मान्यतायें बदलता रहता है और तदनुसार लोक को परिणमित करना चाहता है; पर ऐसा संभव नहीं है।

जैसे जहाँ रंग-बिरंगे, तरह-तरह के फूल खिले हों वही बगीचा है, बगीचा घूमने लायक है, रहने लायक नहीं। घूम-फिर कर आ जाओ अपने घर पर ही विश्राम मिलेगा। इसी प्रकार यह संसार चित्र-विचित्र है, 'मुण्डे मुण्डे मर्तिभिन्ना' कहा गया है अतः यह संसार भी रमने लायक नहीं है, घूम-फिर कर अपने घर में आने पर ही शान्ति मिलेगी।

संसार में अज्ञानता से सभी एकमत हो सकें यह संभव नहीं है, फिर भी हम तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ नैतिकता, सदाचार व श्रावकाचार के द्वारा कुछ हद तक अपनी सोच को बदल कर जीवन को शान्तिमय बनाने का प्रयास कर सकते हैं।

इस सोच के साथ ही युवराज अपने परिवार व समाज में यथायोग्य तत्त्व प्रचार-प्रसार में अपना योगदान करता रहता था। स्नेहा तो अपना बालिका संस्थान संचालित कर ही रही थीं जिसके माध्यम से बालिकाओं में पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक संस्कार देने का प्रयास युवराज के साथ पूरी तन्मयता से कर रही थी।

सहज का भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयन हो गया था, बहुत ही जिम्मेदारी के पद पर होते हुये भी परिवार से प्राप्त संस्कारों के अनुसार तत्त्वज्ञान का अभ्यास व यथासंभव नई पद्धति से प्रचार में भी योगदान करता था।

मुक्ति स्नातकोत्तर करने के बाद अब विद्यावारिधि की उपाधि की तैयारी कर रही थी। वह उच्च शिक्षा के साथ ही बालिका संस्थान के संचालन में भी अपना योगदान करती थी।

सहज का मंगल परिणय सागर के सेठ लालचन्दजी के ही चचेरे भाई की बेटी आस्था के साथ जैनाचार के अनुसार सम्पन्न हुआ था। आस्था भी इस परिवार में आकर अपने परिवार से जिन संस्कारों का बीजारोपण करके आई थी उनका अंकुरण यहाँ होने लगा था।

सेठ लालचन्दजी के मंगल परिणय के 50 वर्ष हो चुके थे अतः उनकी भावना हुई कि एक बार सभी परिचितों, रिश्तेदारों को आमंत्रित कर विधान किया जाये। परिवार में विचार-विमर्श करने पर राजीव-सचिन ने कहा – "हम चाहते हैं कि एक दिन रविवार का ही कार्यक्रम रखा जाये जिससे सभी रिश्तेदार सपरिवार सम्मिलित हो सकें। विधान भी अच्छा हो और सभी पारिवारिक माहौल में धार्मिक शिक्षा भी ले जायें। विषय ऐसे हों जिससे कि बिल्कुल नये लोगों को भी अच्छा लगे।"

कार्यक्रम का नाम रखा गया 'मध्यान्तर के बाद'। प्रातः मंगल शान्ति विधान एवं दोपहर में दो घंटे की 'परिवार-संवाद' जिसमें रिश्तेदारों के अलावा सभी साधर्मी आमंत्रित होंगे और संवाद के बाद पापाजी-मम्मीजी का स्वागत परिवार के सदस्यों के द्वारा किया जायेगा।

संवाद के लिए बहुओं की तरफ से सुझाव आया कि हम सहज-आस्था को सपरिवार आमंत्रित करते हैं; तो युवराजजी-स्नेहाजी, मुक्तिजी

आ जायेंगे तब फिर अलग से विद्वान भी नहीं बुलाना और न ही कोई व्यवस्था करना और सबसे बड़ी बात है कि सभी अच्छे वक्ता हैं, उनकी भावनायें युवावर्ग को धर्म प्रचार व पारिवारिक एकता हेतु प्रेरणा देने की ही है।

''हाँ–हाँ युवराजजी का तो एकसूत्री कार्यक्रम है कि संयुक्त परिवार हों, विधर्मी विवाह न हों, बच्चों को तत्त्वज्ञान के संस्कार दिये जायें। सहज–मुक्ति भी बहुत अच्छा बोलते हैं मैंने उनके यू–ट्यूब पर भाषण सुने हैं और स्नेहाजी तो बालिकाओं की विशेषज्ञ ही हैं।'' अनीशा ने कहा।

सभी को यह सुझाव बहुत अच्छा लगा। सभी को निमंत्रण देने से पहले युवराज और सहज को ही सेठ लालचन्दजी ने निमंत्रण देकर स्वीकृति लेकर 20 सितम्बर 2020 रविवार का कार्यक्रम तय किया और उसके बाद सचिन और राजीव को सभी को निमंत्रण देने का कार्यभार सौंपा गया।

कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए सचिन की ससुराल से सतीशजी दोनों बेटे–बहुओं, पोते–पोतियों तथा अपने मित्र प्रो. जयन्तजी–ऋतुजी के साथ आये, सचिन के आग्रह पर सौरभ–सुनाक्षी भी आये, नागपुर से अनीशा के पीहर से सरलाजी अनिकेत व सोनम, जबलपुर से सुरक्षा का पूरा परिवार उपस्थित हुआ।

प्रातः मंगलगान पूर्वक भक्तिभाव से 'मंगल शान्ति विधान' सम्पन्न हुआ। दोपहर ठीक दो बजे से ''परिवार–संवाद'' प्रारंभ हुआ। कार्यक्रम का संचालन सेठ परिवार की लाड़ली बेटी आस्था जैन ने करते हुये पण्डित ज्ञानचन्दजी की अध्यक्षता व सागर समाज के अध्यक्ष के मुख्यातिथ्य में संवाद सभा प्रारंभ की। वक्ता के रूप में श्री युवराज, श्रीमती स्नेहा जैन, श्री सहज जैन व मुक्ति जैन को मंचासीन किया गया।

मंगलाचरण हेतु सेठ लालचन्दजी के पोते-पोतियों को ही आमंत्रित किया गया, आपके तीन पोते-पोतियाँ तो संस्थानों में ही अध्ययन कर रहे थे।

मंगलाचरण करने से पूर्व चिरंतन ने कहा कि "मैं मंगलाचरण से पूर्व अपने दादाजी को सादर प्रणाम करते हुये निवेदन करना चाहता हूँ कि मैं दादाजी की भावना से ही संस्थान में अध्ययन करने गया। जहाँ मैंने इस वर्ष मोक्षमार्गप्रकाशकजी के प्रथम अध्याय का अध्ययन किया। मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ के प्रारंभ में ही अरहंतादि से प्रयोजनसिद्धि में पेज नं 7 पर 5 बिन्दु दिये गये है, यह मंगलाचरण तदनुसार ही मैंने बनाया है; इसमें कोई भी गलती हो तो कृपया क्षमा कीजियेगा।" सभी ने करतल ध्वनि से स्वागत किया।

श्री जिनवर का रूप है मनहर, निज वैभव दर्शाता।
श्री जिनवर का रूप निहारे, वह निज दर्शन पाता।
पद्मासन थिर मुद्रा कहती, निज में ही जम जाओ।
नाशादृष्टि प्रभु की लखकर, दृष्टि निज पर लाओ।।
जिन को लख जो निज को ध्याता, वह निज वैभव पाता।।1।।

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह से विरहित रूप तुम्हारा।
पर निरपेक्ष वृत्ति को लखकर कर्मशत्रु भी हारा।
जन्म मरण से रहित प्रभु तुम, भक्त अमर हो जाता।।2।।

स्याद्वादमय प्रभु की वाणी, वस्तु स्वरूप बताती।
सप्त तत्व, षट् द्रव्य बताकर, निज महिमा दर्शाती।।
जिनवर सम निज वैभव लखकर, भेदज्ञान हो जाता।।3।।

मात-पिता के निकट में आकर, ज्यों शिशु प्रमुदित होता।
त्यों प्रभुवर के आ समीप में, भक्त रोमांचित होता।।
चरणाबुंज स्पर्श करे तो, मोह तिमिर भग जाता।।4।।

अन्तर्मुख मुद्रा लख प्रभु की, जो अन्तर्मुख होता।
झलके ज्ञेय विविध रूपों में, पर न प्रभावित होता।।
जिनवर का अनुकरण करे जो, वह जिनवर बन जाता।।5।।

छोटे-छोटे बालकों द्वारा भक्तिभाव पूर्वक किये मंगलाचरण को सुनकर सभा हर्ष विभोर हो गई और जोरदार करतल ध्वनि से उनका उत्साहवर्धन किया। मंचासीन सेठ लालचन्दजी-विमलादेवी के हर्षाश्रु प्रवाहित हो रहे थे, परिवार के अन्य सदस्य भी बालकों की इस प्रस्तुति से प्रमुदित हो रहे थे।

आस्था ने कहा - "अभी आपने बालकों की प्रस्तुति देखी, यह हैं संस्कार। आज बाजार भाव बढ़ रहे हैं, लोगों के पास पैसा और साधन बढ़ रहे हैं, बिल्डिंग की ऊँचाई बढ़ रही है, शहरों और गाँवों का विस्तार बढ़ रहा है परन्तु सर्वत्र नैतिकता, मानवता, अहिंसा, धर्म के संस्कार कम होते जा रहे हैं।

मैं इस अवसर पर सेठ परिवार और सागर के उन साधर्मियों को धन्यवाद देना चाहूँगी, जिन्होंने जैन संस्कृति और संस्कारों की कीमत जानते हुये लौकिक प्रलोभनों में न पड़कर संस्थानों में पढ़ने के लिए अपने बच्चों को भेजा; जिससे यह बालक एक सुरभित पुष्प बनकर अपनी सुगंध से परिवार व समाज को लाभान्वित करेंगे।

आज पारिवारिक-सामाजिक समस्याओं पर विचार करने हेतु इस अवसर पर संवाद आयोजित किया है। संवाद इक तरफा नहीं होता। संवाद में आपकी भी पूरी सहभागिता चाहिये। आपकी ओर से आये हुये प्रश्नों या समस्याओं पर वक्ता अपने विचार प्रस्तुत करेंगे; तो संवाद सार्थक होगा।

अब संवाद के प्रथम वक्ता के रूप में सुश्री मुक्ति जैन को आमंत्रित

कर रही हूँ, जो संस्कृत साहित्य में गोल्ड मैडल प्राप्त कर चुकी हैं वे ''शील का महत्त्व'' विषय पर आप सभी के साथ संवाद करेंगी।''

''जय जिनेन्द्र। परमादरणीय अध्यक्ष महोदय – मंचासीन आदरणीय महानुभाव एवं सभी सभासदो! इस 'संवाद' के अंतर्गत मेरा विषय है 'शील का महत्त्व'। इस सभा में उपस्थित हुये अधिकांश प्रौढ़ व वृद्धवर्ग किसी न किसी रूप में शील के महत्त्व से परिचित होगा। शीलवती सतियों व सेठ सुदर्शन की कहानियाँ भी पढ़ी सुनी होंगी जो शील के महत्त्व को बतलाने वाली हैं। दशलक्षण पर्व पूजन में हम पढ़ते हैं 'शील बाढ़ नौ राख'। शील की नौ बाढ़ों के द्वारा रक्षा कीजिये।''

''बहिनजी! कृपया पहले यह बताइये कि शील का क्या मतलब है?'' अनीशा ने प्रश्न किया।

''शील का सामान्य अर्थ तो स्वभाव, नैतिक सदाचरण, अच्छा व्यवहार होता है। हमारे शास्त्रों में भी इन अर्थों में प्रयोग हुआ है, परन्तु यहाँ पर हम शील अर्थात् लड़के-लड़कियों का पारस्परिक मर्यादित व्यवहार और उसकी पूर्ति के लिए ही सात्त्विक वेशभूषा, बोलचाल, खान-पान आदि गर्भित है।

आज का सारा वातावरण शील के विरुद्ध ही चल रहा है, चाहे कोई भी पिक्चर हो, धारावाहिक हो या किसी भी वस्तु का विज्ञापन हो वह सब शील के विरुद्ध दिखाई देते हैं; यहाँ तक कि तन ढ़ँकने वाले कपड़ों के विज्ञापन भी अर्द्धनग्न चित्रों के साथ प्रदर्शित किये जा रहे हैं।

आज का जो पहनावा है, वह भी शील के विरुद्ध ही है। आज की जो शिक्षा है, वह भी सह-शिक्षा है, लड़के-लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं, इण्टरनेट के माध्यम से वे तरह-तरह के कार्यक्रम व सूचनायें प्राप्त करते हैं; जिसके कारण वे हाथ मिलाना, गले लगना, एक दूसरे को

ताली देना, धक्का मारना आदि से प्रारंभ होकर शारीरिक आकर्षण में बंधते चले जाते हैं और हृदय में वासना के रूप में जमते हुये संस्कार लोक में 'लव' या 'प्रेम' के रूप में सामने आते हैं, जिसके फलस्वरूप धर्म, जाति, परिवार का ध्यान रखे बिना वह वासना में अंधे होकर माता-पिता को छोड़कर भागते हैं और फिर जीवन भर रोते-रुलाते हैं।"

"शील विरुद्ध आचरण क्या लड़के-लड़कियाँ ही कर रही हैं ? क्या सारा उपदेश उनके लिए ही है ?" सुरक्षा ने पूँछा।

"नहीं; यह शील विरुद्ध आचरण लड़के-लड़कियों का ही हो रहा हो ऐसा नहीं है, आज की महिलायें भी अपने शरीर को प्रदर्शनी बनाकर पारदर्शी साड़ियाँ पहिन कर वैवाहिक व अन्य प्रसंगों में जा रही हैं, जींस आदि टाइट कपड़े स्वयं पहिन रहीं हैं व आधुनिकता की दौड़ में अपनी बालिकाओं व बालकों को भी ऐसे ही कपड़े पहिना रही हैं, जो शरीर दिखाने वाले हों, यह सब जैनाचार व भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है।"

"जब लड़के-लड़कियाँ समान हैं, तब हम क्यों भेदभाव करके लड़कियों को ही पहनावा आदि सिखाना चाहते हैं। हम स्वतंत्र हैं, हमारी जो इच्छा हो सो पहिनें।" सोनम ने कहा।

"बहुत अच्छा; आजकल अधिकांश लड़कियाँ इस प्रकार का ही सोचती हैं। मेरी आयु की बालिकायें कॉलेज में पढ़ती हैं, कोई-कोई अच्छी सर्विस में लग गई हैं, तो वह सोचती हैं कि हम लड़कों से किस बात में कम हैं; जब हम एक ही कॉलेज में पढ़ सकते हैं, उन जैसा काम कर सकते हैं, तो उन जैसे कपड़े क्यों नहीं पहिन सकते ? या फिर शहर की अन्य बालिकायें जिस प्रकार का पहनावा पहिनती हैं आधुनिक कहलाती हैं; तो मैं क्यों नहीं ऐसा कर सकती ? हम क्यों नहीं रात को अकेले घूम सकते ?

प्यारी बहिनो! यह सोच बहुत गलत है। जिनवाणी कहती है 'सभी जीव बराबर हैं' तो क्या मनुष्य, पशु जैसा व्यवहार करने लग जायें या पशु, मनुष्य के समान हो जायेंगे?

भारत के सभी नागरिक समान हैं तो क्या सभी प्रधानमंत्री बन जायेंगे?

परिवार के सदस्य सभी समान हैं तो क्या हमारा पहिनावा, आयु, खान-पान एक सा हो सकता है? नहीं।

सभी जीव समान हैं का अर्थ मात्र इतना ही कि वे जीव हैं, हम जीव हैं, हमारे सुख-दु:ख समान हैं। भारतीय समान हैं अर्थात् हमें समान रूप से मतदान करने, शिक्षा प्राप्त करने, व्यापार करने, धर्म करने का अधिकार है, पर प्रधानमंत्री और हम समान हो गये ऐसा नहीं है।

इसी तरह लड़के-लड़कियाँ समान हैं इसका अर्थ मात्र इतना है कि हम लिंग भेद के आधार पर उन्हें शिक्षा प्राप्त करने, भोजन करने, पारिवारिक अधिकारों में भेद न करें; हमारी संतान चाहे बेटा हो या बेटी सबको समान समझें। एक के जन्म पर मिठाई बाँटें और एक के जन्म पर रोयें, यह सही नहीं है। दोनों ही एक ही माता-पिता से उत्पन्न हुये हैं, दोनों से मिलकर ही परिवार चलता है, इसलिए लिंगभेद न करें। परन्तु जो अन्तर है, वह तो है ही।

सरकार ने कहा लड़का-लड़की समान हैं, तो आप क्या कोर्ट में जाकर ऐसा कह सकते हैं कि हम पति-पत्नी समान हैं इसलिए एक संतान मेरे गर्भ से होगी और दूसरी संतान को पतिदेव को जन्म देना होगा।

आप कह सकते हैं ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि हमारी शारीरिक संरचना प्रकृति द्वारा निर्मित है, यह किसी कोर्ट के निर्णय के अनुसार नहीं है।

बस! यही तो हमें कहना है कि हम एक माता-पिता की संतान होने से समान हैं, परन्तु शारीरिक संरचना ही नहीं, भावनाओं में भी अंतर होने से असमानता भी है; उसे भी समझना ही चाहिये और इसीलिये विषमलिंगी से दूरी होना आवश्यक है।

बहिनो! हमारा शरीर प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। यह मनुष्य जन्म हमें विषयों में फँसने और दूसरों को फँसाने के लिए नहीं मिला है। यह सुन्दर शरीर, आप धर्म साधन में लगायें, पारिवारिक सेवा में लगायें, इस शरीर का उपयोग शील धर्म का पालन करते हुये अशरीरी होने की भावना में लगायें तो सार्थक होगा। आचार्यदेव शील की महिमा बतलाते हुये लिखते हैं –

शीलं सौख्यकरं प्रमोदजननं शीलं कुलोद्योतनं,
शीलं सार विभूषणं गुणकरं शीलं लक्ष्मीकरम्।।
शीलं स्वव्रतरक्षणं शुभकरं शीलं यशः कारणं,
तस्माद् भव्यजना! जिनेन्द्र कथितं शीलं श्रियन्तु त्रिधा।।

शील की भावना बंधन नहीं है, वह तो सुखकर है, स्वयं व अन्य को हर्ष प्रदान करने वाला और कुल का यश फैलाने वाला है, शील ही सच्चा आभूषण है, गुणों का भण्डार है और लक्ष्मी देने वाला है, शील हमारे अन्य सभी व्रतों का रक्षक, कल्याणकारी व यश का कारण है इसलिये हे भव्यजनो! जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये शील को धारण करो।"

"यहाँ हम क्या शील का अर्थ ब्रह्मचर्य मात्र से ही लें या आपने जो अन्य अर्थ बताये वह भी समझना चाहिये।" सरिता ने प्रश्न किया।

"शील का अर्थ सामान्यतः अच्छे स्वभाव को भी कहा जाता है, इसके अनुसार हम यदि अपने परिवार, समाज, व्यापार, सर्विस में

यथायोग्य विनम्रता, सरलता, उदारता, कृतज्ञता, सहयोग आदि पूर्वक व्यवहार करते हैं, अन्याय-अनीति से बचते हैं, सत्यभाषी, मृदुभाषी, मितभाषी कर्तव्यनिष्ठ होते हैं तो भी हमें उक्त फल मिलेंगे।

शील का मुख्य अर्थ तो स्त्री-पुरुषों का परस्पर काम-वासना से आकर्षित न होने से लेना चाहिये और इसीलिये हम अपने कपड़ों, अपने वचनों, अपने श्रृंगार आदि पर ध्यान देते हुये सात्त्विक रहेंगे तो सुरक्षित रहेंगे।''

''मुक्तिजी! तो आप क्या चाहती हैं कि सभी लड़कियाँ ब्रह्मचर्य व्रत लेकर घर में बैठ जायें।'' अस्मिता ने अपनी बात रखी।

''बहिनजी! निर्दोष ब्रह्मचर्य व्रत हमारी बहनें ही क्या यदि हमारे भाई भी ले लें तो इसमें क्या आपत्ति है? इससे तो उनका जीवन भी पवित्र होगा और समाज भी उनसे लाभान्वित होगी; परन्तु मैं ब्रह्मचर्य व्रत लेने की बात नहीं कर रही हूँ, मैं मात्र शरीर के प्रदर्शन, शरीर के आकर्षण, अनैतिक संबंध, भाई-बहिनों अर्थात् लड़के-लड़कियों के अमर्यादित व्यवहार के निषेध की बात कर रही हूँ।

हमारी भूमिका अभी ब्रह्मचर्य व्रत लेने की नहीं है; तो कोई बात नहीं, लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं है कि हम ऐसे कपड़े पहिने, जिनमें शरीर दिखता हो, हम लड़कों के गले लगे फिरते फिरें, हम उनके साथ ही मोटर साइकिल पर बैठकर फर्राटे मारते फिरें, हम होटलों में जाकर उनके साथ पार्टियाँ करें, फिल्मी गानों पर जिनके अर्थ पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका के हैं नाचें-गायें, हर हीरो को देखकर मन ललचायें।

हमारे आदर्श यह हीरो नहीं हैं, हमारे आदर्श भगवान महावीर, आचार्य कुन्दकुन्ददेव हैं, सती सीता, अंजना, अनंतमती, चंदनबाला, सेठ सुदर्शन हैं। हम उनके चरित्र पढ़ें और अपना चरित्र गढ़ें।

हीरो–हीरोइन जो चरित्र फिल्मों में प्रदर्शित करते हैं, वह चरित्र तो वह स्वयं अपने घरों में नहीं चाहते, उनके बच्चे ऐसा व्यवहार करें, ऐसा वे नहीं चाहते तो यदि हम मनोरंजन के लिए कोई धारावाहिक देखते भी हैं तो हम अपनी संस्कृति उसके अनुसार क्यों करना चाहते हैं? यदि आप सुख–शान्तिमय जीवन चाहते हैं, सुरक्षित रहना चाहते हैं तो आपको शील का पालन करना चाहिये।''

''मुक्तिजी कपड़े पहिनने, मिलने–जुलने संबधी सभी पाबंदियाँ लड़कियों पर ही क्यों लगाई जाती हैं?'' सोनम ने प्रश्न किया।

''बहुत बढ़िया प्रश्न है। भाभीजी मैंने अपने वक्तव्य में कब कहा कि लड़कियों के लिए ऐसा करना चाहिये। शील दोनों के लिए आवश्यक है। भाई भी हर किसी लड़की के पीछे न पड़ें, हर किसी का मोबाइल नंबर लेकर फालतू की चैटिंग न करें, वे भी ऐसे फटे व तरह–तरह की डिजाइन वाले या जिन टी–शर्ट आदि पर शील विरुद्ध वाक्य लिखे रहते हैं या चित्र बने रहते हैं वह भी न पहिनें; यह दोनों के लिए ही है।

धर्म लड़का–लड़की के लिए अलग नहीं है। इसलिए मैं सभी भाभियों से भी कहना चाहूँगी कि आप स्वयं ऐसी साड़ी–ब्लाउज भी न पहने, जो पारदर्शी हों, महिला संगीत आदि के नाम पर सभी के सामने भोंडे नृत्य न करें, बारातों में नृत्य न करें। आप बचपन से ही अपनी संतान को चाहे वह लड़का हो या लड़की मर्यादित वस्त्र पहनने की ही आदत डालें। मात्र दिखावे के लिए मँहगे पर छोटे–छोटे कपड़े 5 साल के बच्चों को भी न पहिनायें और अपने लड़के–लड़की दोनों को ही परस्पर की मर्यादा समझायें।

रिश्ते में जो भाई–बहिन लगते हों उन्हें भी अमर्यादित आचरण करने अर्थात् गले लगने, धक्का मारने, हाथ मिलाने, स्कूल–कॉलेज मुहल्ले

में किसी भी लड़के की ओर देखकर हँसने, अनर्थक हँसी–मजाक करने से बचने की शिक्षा दें अन्यथा आपने अखबारों में पढ़ा होगा कि कितने नजदीकी रिश्ते भी बदनाम हो गये हैं, इन सबके पीछे शुरुआती गलती माता–पिता की ही होती है; यदि हमने शुरुआत में ही प्रेम से समझा कर संस्कार दिये हों तो कभी भी ऐसी परिस्थिति नहीं बनती।''

''मुक्तिजी! हम तो अपने बच्चों को भारतीय संस्कृति के अनुसार ही कपड़े पहिनायें; पर दूसरे लोग अपने सामने यदि शरीर का प्रदर्शन करने वाले कपड़े पहिनकर आ जायें, आते ही हैं कॉलेज में, ऑफिस में, बाजार में, शादी आदि के कार्यक्रमों में इस प्रकार लड़कियाँ, लड़के, महिलायें मिलती हैं तब हम क्या करें?'' अस्मिता ने पूँछा।

''भाभीजी! हम अपना लोटा छानकर ही पानी पी सकते हैं, सारे कुँएं का पानी तो छान नहीं सकते। अब यदि ऐसी परिस्थिति बनने के पूर्व ही हम स्वयं और बच्चों को संस्कार दें कि यह शरीर तो मात्र खून–माँस, हड्डियों का पिण्ड है, अपवित्र है, बस यह चमड़ी की पैकिंग ही अच्छी दिख रही है यदि पैकिंग से अंदर का माल थोड़ा भी लीक हो जाये तो हम इसे देख भी नहीं सकेंगे, महा अपवित्र पदार्थों की रचना यह शरीर है – ऐसा विचार कर अन्य का शरीर भी हमारे लिए आकर्षण का केन्द्र नहीं है। वह राग करने लायक नहीं है।

दुर्घटना किसी की ओर से हो नुकसान दोनों को होगा। अनेक लड़के–लड़कियाँ तो इन आपसी प्रेम के चक्कर में अध्ययन भी नहीं कर पाते और अपना जीवन ही खराब कर लेते हैं।

प्रिय भाई और बहिनो! शील या चारित्र ऐसा धन है, जिसे प्राप्त करने पर अद्भुत समता व शान्ति आती है जबकि इसके नष्ट होने पर मानो सर्वस्व नष्ट हो जाता है। जैसा कि कहा भी है –

When wealth is lost, nothing is lost;
when health is lost, something is lost;
when character is lost, all is lost.

धन गया, कुछ नहीं गया।
स्वास्थ्य गया, कुछ गया।
चरित्र गया, सब कुछ गया।

मैंने जो अभी बात रखी है वह परिवार में रहने व कॉलेज में पढ़ने या नौकरी करने वाली बहिनों और भाइयों की अपेक्षा से ही कही है; यह किसी व्रत या त्याग की अपेक्षा से नहीं है। हमारा उद्देश्य श्रावकाचार को घर-घर फैलाना है। धन्यवाद।''

जोरदार करतल ध्वनि से मुक्ति के व्याख्यान का स्वागत सभी ने किया। सोनम भी मुक्ति के तर्कों से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकी।

''अभी आपने मुक्तिजी से हमारे जीवन में शील की आवश्यकता विषय पर सुन्दर चर्चा सुनी। बहिनो! हम मँहगा आईफोन लाकर उस पर तुरन्त ही कवर चढ़ाते हैं, मिठाई बनाकर तुरन्त ढ़ँकते हैं। क्यों? उनकी सुरक्षा के लिए। तो फिर क्या हमारा शरीर उस मोबाइल से भी गया बीता है, जो हम स्लीबलैस टॉप या ब्लाउज पहिनकर सड़कों पर निकलते हैं।

धूप से शरीर खराब न हो जाये, इसके लिए पूरा शरीर आप ढ़ंक लेते हैं, तो फिर हमारे शरीर से किसी की नियत खराब न हो जाये, हमारा और दूसरों का मन खराब होकर जीवन ही खराब न हो जाये, उसके लिए सात्त्विक वस्त्र पहिनने से संकोच क्यों करते हैं? सोचियेगा।'' आस्था ने संचालन करते हुये टिप्पणी की।

''अब मैं आमंत्रित करती हूँ, सहज जैन को जो कि आज के युवा वर्ग के मस्तिष्क में उठने वाले अनेक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करेंगे।''

सहज जैन ने अपनी चर्चा प्रारंभ करते हुये कहा "आप और हम सब एक लौकिक प्रसंग पर अलौकिक कार्यक्रम में उपस्थित हुये हैं। यहाँ एकत्र हुये कुछ सदस्य रुचिपूर्वक श्रवण करने आये हैं तो कुछ सेठ साहब के यहाँ पर अपनी रिश्तेदारी निभाने के लिए भी आये हैं। जिससे कि उनके यहाँ जब कोई वर्षगाँठ मनाई जाये तो सचिनजी भी सपरिवार आवें।" सहज ने मुस्कराते हुये बात पूरी की।

"जो हमारी उम्र के युवा साथी हैं उनको ध्यान में रखकर ही अपनी बात करूँगा। सबसे पहली बात तो यह कि जीवन में धर्म की क्या आवश्यकता है? क्योंकि हमारे अनेक युवा साथी तो यही मानते हैं कि धर्म तो नरक से बचने और स्वर्ग-मोक्ष जाने के लिए किया जाता है; पर कोई यह तो बताये कि किसी ने स्वर्ग-नरक देखा है? मोक्ष जाने पर किसी को वहाँ से पहुँचने का या वहाँ के मौसम के समाचार देने का फोन आया या पत्र आया यदि ऐसा नहीं है तो भइया! हमें तो स्वर्ग-मोक्ष दिखता नहीं है, फालतू में ही धर्म-कर्म के चक्कर में हमें नहीं उलझना। आप लोगों में से भी कोई ऐसा सोचते होंगे या आपके मित्रगण सोचते होंगे।"

"सोचते क्या, हम तो यही मानते हैं; इसलिये हमारा तो कभी मंदिर जाने का भी मन नहीं होता।" अनिकेत ने कहा।

"प्राथमिक दृष्टि से ऊपर-ऊपर सोचा जाये तो हमारे इन बुद्धिजीवियों का तर्क जबरदस्त लगता है, जिसे संस्कृत में कहते हैं 'अविचारितं रम्यं' या 'दूर के ढोल सुहावने'। भाई! जो दिखता नहीं है, वह है नहीं। जो दिखता है बस उसका आनंद लो, भविष्य के चक्कर में वर्तमान क्यों गंवायें; नहीं दिखने वाले के पीछे भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार कर त्याग करना, पूजन-पाठ करना, दान देना कुल मिलाकर कहें तो धर्म की क्रियायें करना निरर्थक है।

पर भाइयो! जो दिखे उसे ही यदि स्वीकार करेंगे, तो मुझे अपने परदादा नहीं दिखते तो वह थे या नहीं? आपमें से अनेक लोगों ने अमेरिका नहीं देखा, तो है या नहीं? पर हम परदादाजी या अमेरिका को न दिखते हुये भी किसी के कहने या पुस्तक में लिखे होने से स्वीकार करते हैं या नहीं तो फिर हमारे वीतरागी सन्तों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में इन सबका वर्णन है; तो वह स्वीकार्य क्यों नहीं हैं?

दूसरी बात – यदि कोई व्यक्ति 1 हत्या करे तो उसे फाँसी की सजा होगी और 10 हत्यायें करे तो 10 फाँसी होंगी कि 1 ही होगी? यदि 1 ही होगी तो क्या यह न्याय कहलायेगा?

यदि कोई व्यक्ति 10 हजार रुपया दान दे या कोई 1 अच्छा काम करे तो 1 माला पहनायेंगे पर वही 10 लाख रुपये दे तो 100 मालायें तो नहीं पहनाईं जायेंगी; तो यह भी अन्याय हुआ?

भाइयो! यहाँ सजा देने या स्वागत करने में हमारी मर्यादा हो सकती है, हमें समस्या हो सकती है; पर प्रकृति में अन्याय नहीं है, पाप करने वाले को उन 10 हत्याओं या चोरी करने, लूटने, शराब पीने, झूठ बोलने, माँस खाने, जीवों को मारने और इनके बारे में सोचने का फल नरक में जाने के रूप में और दान देने, सहयोग करने, पूजन करने, भोजन कराने, परोपकार करने आदि व सबका भला सोचने वालों के लिए फल देने के लिए प्रकृति ने स्वर्ग की व्यवस्था की हुई है और यह होना ही चाहिये अन्यथा कोई भी भले कार्य करेगा नहीं और बुरे काम से डरेगा नहीं। इस तरह स्वर्ग–नरक का अस्तित्व सिद्ध होता है।" सभा में जोरदार तालियाँ गूँज उठीं।

"भाईसाहब! सबको धर्म करना चाहिये, यही उपदेश दिया जाता है; पर धर्म क्यों करना चाहिये? कृपया यह तो समझाइये।" अमित ने अपनी बात रखी।

"बहुत अच्छी बात, आओ! हम इस पर विचार करते हैं, धर्म क्यों करना?

धन और पद के द्वारा हमें लौकिक सुविधायें ही प्राप्त होती हैं, लौकिक साधन व तत्संबंधी सुख ही प्राप्त होता है, यदि हम अलौकिक सुख चाहते हैं, आत्मिक सुख चाहते हैं, अनंतकाल तक के लिए सर्व बंधनों से मुक्त होना चाहते हैं तो ये कार्य इस धन के द्वारा नहीं हो सकते, उनका साधन धर्म ही है।

सुख आत्मा में है, तो उसकी प्राप्ति का साधन भी आत्मा में ही है, उस आत्मा को जानना ही वास्तव में धर्म है। धर्म अर्थात् सुख के साधन की प्राप्ति। जैसे कि आमरस के लिए आम के फल की प्राप्ति। फल ही सच में आम है, परन्तु जिस पेड़ पर आम लगते हैं, उसे भी आम कहा जाता है। इसी तरह जहाँ हमें सुख और सुख के संग्रहालय रूप आत्मा की बात सुनने, समझने मिलती है, उन साधनों को भी धर्म कहा जाता है। तो जिस तरह से आम रस पाने के लिए हमें आम का पेड़ और फिर आम का फल चाहिये उसी प्रकार सच्चा सुख पाने के लिए सच्चे देव-शात्र-गुरु और फिर उनके माध्यम से आत्मा को समझने रूप धर्म भी चाहिये ही है।"

"धर्म और सुख के बीच में ये देव-शास्त्र-गुरु कहाँ से आ गये?" सौरभ ने प्रश्न किया।

"मित्रो! मैं जिस पद पर हूँ वहाँ पर मेरा कोई एक 'आइडियल' अर्थात् आदर्श भी है, जिस जैसा मैं बनना चाहता हूँ। उस जैसा बनने के लिए पुस्तकें भी हैं और उन पुस्तकों को समझाने वाले, मेरे आदर्श जैसा बनने के प्रयास में लगे हुये मेरे टीचर/अध्यापक भी हैं। ऐसा ही आपका भी कोई न कोई होगा? चाहे कोई सी.ए. हो, डॉक्टर हो, नेता हो खिलाड़ी हो सभी का कोई न कोई एक आइडियल, उसमें सफल होने

के लिए साहित्य और समझाने वाले टीचर होते ही हैं। आप सबके भी यह तीनों होंगे कि नहीं?"

"जी हाँ हमारे भी यह तीनों हैं।" नीचे से आवाज आई।

"बस! तो इन तीनों को ही धार्मिक क्षेत्र में जो हमारे आदर्श हैं उनको देव कहते हैं, उन जैसा बनने के लिए जो पुस्तकें आचार्यों ने लिखीं, वे शास्त्र कहलाती हैं और जो हमें ये सब बताते हैं और स्वयं देव बनने के मार्ग पर चल रहे हैं; वे गुरु कहलाते हैं।

मित्रो! अभी तक हमने धन-दौलत कमाने, पद पाने के लिए लोक में आदर्श, पुस्तकें और अध्यापक खोजे हैं, बनाये हैं, उनका ही सम्मान किया है और हमें वह उपलब्धियाँ भी हुई हैं परन्तु वे सब उपलब्धियाँ राग-द्वेष बढ़ाने, अहंकार पैदा करने, चिन्ता-तनाव पैदा करने वाली हैं; उन उपलब्धियों से कभी हमारी तृष्णा, आकुलता, इच्छा समाप्त नहीं होती। तनाव रहित, समतामय व सुखमय जीवन जीने के लिए हमें राग-द्वेष, क्रोध, मान, लोभ आदि दोषों से रहित होना होगा; यदि हम चाहते हैं कि हम भी निर्दोष हों; तो जो निर्दोष महापुरुष हैं, वही हमारे आदर्श होंगे।

मित्रो! लोक में देव अर्थात् भगवानों के नाम पर, धर्म के नाम पर भीड़ लगी हुई है; जिस तरह बाजार में जब एक जैसी वस्तुओं को कोई सस्ता, कोई मँहगा बेचने वाली दुकान हो तो सजगता बहुत आवश्यक है कि जिससे हम ठगे न जायें। इसी तरह हमें धर्म के समझने के लिए भी सावधानी आवश्यक है।

लोक में कोई धागा बाँधने, कोई कहीं की पूजा करने, कोई किसी के नाम का व्रत रखने, कोई मंदिर बनाने व कलश, छत्र चढ़ाने आदि को धर्म कहकर हमारी श्रद्धा-आस्था को लूट रहे हैं; यदि इन किसी भी देवी-देवताओं को पूजने से स्वस्थ हो जाते होते; तो अस्पतालों की क्या

आवश्यकता है ? यदि किसी के वरदान से ही दुकान चलती होती; तो दुकान खोलने व अच्छा माल रखने की क्या आवश्यकता है ? यदि किसी के आशीर्वाद से ही पास होते हों; तो विद्यार्थी को अच्छे विद्यालय मे जाने व घंटों पढ़ने की क्या आवश्यकता है ?

मित्रो ! हमारा आदर्श वही होना चाहिये जो समस्त दोषों से रहित हो, जो पक्षपात रहित हो, जो किसी के चढ़ावे पर प्रसन्न होकर वरदान न देता हो और न ही जो किसी के मंदिर न आने पर नाराज होकर फैक्ट्री में आग लगाता हो।

मैं आपसे ही पूँछता हूँ कि आप अपने शहर में कैसा अधिकारी चाहेंगे; जो मिठाई का डिब्बा लेकर अपराधी को छोड़ दे और जो किसी भी कारण से उस अधिकारी को न जानता हो तो उसके साथ अन्याय होने दे, उसके साथ न्याय न करे ?

भाभीजी ! आपसे वैसे मेरा परिचय नहीं है, क्योंकि मैं पहली बार यहाँ आया हूँ, आप ही बतायें कि आप ऐसा अधिकारी पसंद करेंगी ?'' सहज ने सोनम से पूँछा।

''हम ऐसा अधिकारी पसंद नहीं करेंगे; वह तो रिश्वतखोर अधिकारी है, अधिकारी तो निष्पक्ष होना चाहिये।'' सोनम ने कहा।

''भाभीजी ! आपकी बात बिल्कुल सही है, धन्यवाद। जब हमको एक अधिकारी निष्पक्ष चाहिये तो भगवान निष्पक्ष क्यों नहीं ? अधिकारी निर्दोष चाहिये; तो भगवान निर्दोष क्यों नहीं ? हम कैसे उसे भगवान मान सकते हैं जो थोड़े से चढ़ावे में या एक पूजन या अभिषेक करने मात्र से हमारे अपराध माफ कर दे, हमें आयकर के छापे पड़ने से बचा ले, हमें बेटा-बेटी दे दे और न पूजने से हमारा नुकसान करवा दे। यदि वह ऐसा करता है; तो वह भगवान के रूप में मुझे स्वीकार्य नहीं हैं; आप अपना स्वयं विचार कर निर्णय कर सकते हैं।''

सहज की तर्कसंगत बातों को सुनकर अनीशा, सुनाक्षी, सोनम, अनिकेत, सौरभ, अमित जैसे युवक भी सोच में पड़ गये कि हम अभी तक जो समझ रहे थे, मान रहे थे उससे बिल्कुल हटकर ही बात है; समझने व स्वीकार करने योग्य है, सारी ही सभा दत्तचित्त होकर सुन रही थी।

''पर यह तो जैनों के भगवान की बात हुई'' सुनाक्षी ने खड़े होकर अचानक प्रश्न किया, फिर झेंपकर चुपचाप बैठ गई।

''भाभीजी! अभी इन भाभीजी ने बताया था न कि निष्पक्ष अधिकारी चाहिये, तो वह जैन अधिकारी की बात थी या ब्राह्मण या मुसलमान या एक सामान्य अधिकारी की बात थी?''

''अधिकारी तो अधिकारी होता है, वह जातियों में थोड़े ही बँटा होता है। हम उसे अपने परिचय के कारण बाँट लें वह अलग बात है।'' सुनाक्षी ने कहा।

''बहुत बढ़िया भाभीजी! आप जैसी समझदार महिला हमारी भाभीजी हैं, इसकी मुझे खुशी है।'' सभी इस बात को सुनकर हँसने लगे।

''भाभीजी! जब अधिकारी किसी जाति का नहीं, बस अधिकारी होता है, तो भगवान भी केवल भगवान होते हैं, अब हम अपनी मान्यता के अनुसार किसी भी जाति-धर्म का कह दें। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है। जिसने जैन परिवार में जन्म लिया हो वह जैन भी हो यह आवश्यक नहीं है और जिसने जैन परिवार में जन्म नहीं लिया वह जैनधर्म स्वीकार नहीं कर सकता ऐसा नहीं है। धर्म, कुल परंपरा के अनुसार नहीं चलता। धर्म किसका? जो धारण करे उसका। मैं धारण करूँ तो मेरा और आप सब धारण करें तो आपका।

जो राग-द्वेष-भूख-प्यास जन्म-मरण-भय-पसीना आदि 18 दोषों

से रहित हैं, लोकालोक के ज्ञाता होते हुए भी जो भक्तों से राग नहीं करते और जो नहीं मानने वालों पर नाराज नहीं होते तथा जो सभी को अपने जैसा बनने का मार्ग निष्पक्ष व निरपेक्ष होकर बताते हैं, वे ही हमारे आदर्श हैं, वे ही हमारे भगवान हैं। उन्होंने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीत लिया इसलिये वे 'जिन' कहलाते हैं और उनके मानने वाले 'जैन' कहलाते हैं, भले ही उन्होंने किसी भी परिवार में जन्म लिया हो।

वे जिन इस काल में 24 हुये हैं, जिन्हें 24 तीर्थंकर कहा जाता है, वे सभी एक जैसे गुणों वाले हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है, उनमें भेदभाव करना हमारी अज्ञानता है। यदि हम आत्मा को जानना चाहते हैं, धर्म समझना चाहते हैं, सुखी होना चाहते हैं; तो शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिये।''

''आप कह रहे हैं कि आत्मा जानना चाहिये; पर आत्मा है कहाँ जिसे जान सकें?'' अनिकेत ने प्रश्न किया।

''यह प्रश्न भी हमारे युवकों को बहुत परेशान करता है। बुजुर्गों को प्रश्न नहीं होता, पर सच यह है कि वे भी आत्मा कहाँ है? कैसा है? जानते नहीं हैं बस जिनवाणी में लिखा है, पण्डितजी या महाराजजी कहते हैं कि आत्मा है, तो आत्मा भी होता होगा; क्योंकि यदि ऐसा कहेंगे कि आत्मा नहीं है; तब तो महाराजजी की बात का विरोध करके नरक जायेंगे और डंडे पड़ेंगे; इसलिए डंडे के डर से भले वह आत्मा दिखता नहीं है, पर बोले जाते हैं कि आत्मा है। युवकों को नरक का डर नहीं है, इसलिये वह प्रश्न कर लेते हैं।'' सहज ने मुस्कराते हुये यह बात प्रस्तुत की और सभा में भी हास्य कणिका बिखर गईं।

''भाईसाहब आप, जिन्होंने प्रश्न किया है, हाँ आप, आपका शुभ नाम जान सकता हूँ? प्लीज भाईसाहब आप मंच पर आ जाइये और

माइक से बोलिये। अरे आइये न, संकोच मत कीजिये। सभी परिवार के ही सदस्य यहाँ बैठे हैं।''

अनिकेत मंच पर आकर ''जी मेरा नाम अनिकेत है।''

''आप कहाँ से पधारे हैं? बुरा न मानिये मेरा परिचय नहीं है; इसलिये जानकारी के लिए पूँछ रहा हूँ।''

''मैं नागपुर से आया हूँ।''

''आपकी श्रीमतीजी भी आई हैं।

''जी हाँ, आई हैं न, मम्मी भी आयी हैं।''

''बहुत अच्छा सभी का स्वागत। अच्छा तो, भाभीजी आई हैं, वे कहाँ हैं?''

अनिकेत, सोनम की ओर इशारा करते हुये बोला कि ''वह बैठी हैं।''

''ओ हो, इतनी बुद्धिमती भाभीजी के भाईसाहब आप जैसे बुद्धिमान ही हो सकते हैं। सॉरी, भाईसाहब तो आप मेरे हैं उनके तो श्रीमानजी हैं।'' सभा में हँसी का फव्वारा फूट पड़ा।

''अनिकेत भाईसाहब! मैं आपसे पूँछता हूँ कि आप कृपया सभा को बतायें कि यहाँ क्या चल रहा है? और आपको कैसे लग रहा है?''

''यहाँ पर आदरणीय लालचन्दजी बाबूजी की 50 वीं शादी की सालगिरह पर 'संवाद-सभा' चल रही है। यह प्रयास मुझे बहुत अच्छा लगा है। मैं मंदिर नहीं जा पाता; सॉरी, झूठ क्यों बोलूँ जाता नहीं हूँ, स्वाध्याय तो बहुत दूर की बात है। मेरी मम्मी बहुत कहती हैं; पर मैं उनकी बात मानता नहीं हूँ; पर आज की सभा से लगा है कि यह संवाद मेरे जीवन का 'टर्निंग प्वाइंट' बन सकता है।'' सभा ने जोरदार तालियाँ बजाकर अनिकेत की बात का स्वागत किया। अनिकेत अपने आसन की ओर जाने लगा।

''नहीं, अभी आप जाइये नहीं। जब मेरे पास आ ही गये हैं, तो कृपया आप साथ न छोड़ें।'' सहज ने मुस्कराते हुये कहा।

''जीजाजी! आपने हमारा हाथ थामा है, कृपया अब आप हमें रास्ते में नहीं छोड़ना'' अनिकेत ने कहा। एक बार पुनः करतल ध्वनि हुई।

''चलो ठीक है हम साथ-साथ चलने का प्रयास करेंगे। अनिकेतजी! यहाँ यह सभा चल रही है, सभा अच्छी चल रही है, आप नागपुर रहते हैं, वो सामने जो सुन्दर विचारों वाली, सुन्दर महिला बैठी हैं वह आपकी पत्नी हैं, यह सब किसने जाना?''

''यह सब मैंने ही जाना है, किसी ने कुछ नहीं बताया।'' अनिकेत ने हँसते हुये कहा।

''अच्छा किसी ने बताया नहीं है, आपने ही जाना है, पर आप कौन हैं?''

''जीजाजी आप मजाक कर रहे हैं अभी तो बताया मैं अनिकेत और मैंने ही यह सब जाना।''

''आप अनिकेत हैं, आपने ही सब जाना, तो आप माने कौन? यह कपड़े? यह गोरा शरीर? यह नाक, कान? कौन?''

''कपड़े तो नहीं जानते। और और.. बस मैंने जाना इतना ही पता है।''

''ठीक है अनिकेतजी! धन्यवाद आप अपनी जगह बैठिये। देखिये कपड़े तो नहीं जानते; पर यह जो गोरा-काला शरीर है वह भी नहीं जानता। देखो, देखो वह भाभीजी अपने पतिदेव के चिंतन में लग गईं कि वह कितना अच्छा बोले; इसलिए मैं जो बोल रहा हूँ तो वह मेरी बात नहीं सुन पाई।'' सहज ने सोनम की ओर इशारा करते हुये कहा ''क्यों भाभीजी मैं सही कह रहा हूँ न?''

सोनम और सभा हँसने लगी।

"भाभीजी! क्यों नहीं सुन सकीं? क्योंकि उनका शरीर तो जहाँ था वहीं है, आँख, नाक, कान, सब उसी जगह हैं पर दिमाग, श्रीमानजी की ओर चला गया, इसका मतलब दिमाग से ज्ञान होता है, आँख–नाक–कान से नहीं; ऐसा हम कह सकते हैं। यह दिमाग कहाँ रहता है? क्या यह सिर हमारा दिमाग है?"

"हाँ फूफाजी! यह सिर ही तो दिमाग है, इसमें ही तो हमें सब चीजें याद रहती हैं।" अन्वय बीच में ही बोल पड़ा; तो सभी हँसने लगे।

"अरे वाह! सेठ परिवार के तो बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ भी सुबहान अल्ला। पर आप सब गंभीरता से सोचिये कि जब कहा जाता है कि किसी का मरण हो गया तो क्या सिर, दिमाग कहीं चला जाता है? सिर और नाक, कान सब वहीं रहते हैं पर हमें ज्ञान नहीं होता। क्यों? क्योंकि ज्ञान इन सबसे नहीं होता, इनके माध्यम से ज्ञान करने वाला कोई दूसरा है, जिसके निकल जाने पर मृत्यु कही जाती है। वह निकलने वाला ही जीव है, आत्मा है, वह आँखों से नहीं देखा जा सकता, उसे हम जिस तरह पेट दर्द होने और दर्द मिटने को आँखों से नहीं देख सकते, छूकर नहीं देख सकते; मात्र 'फील' कर सकते हैं, इसी तरह हम ज्ञानस्वभावी आत्मा को अनुभव कर सकते हैं।

मित्रो! कितनी विचित्र बात है कि हम स्वयं ज्ञानस्वभावी आत्मा हैं; पर हमारे ज्ञान में वह आत्मा नहीं है। इसलिये विद्वानों ने कहा है कि **सबके आत्मा में ज्ञान है; पर धन्य तो वे हैं जिनके ज्ञान में आत्मा है।** अंत में मैं एक भजन की कुछ पंक्तियाँ बोलना चाहता हूँ आप सभी दोहराइयेगा –

आत्मा हूँ आत्मा हूँ आत्मा हूँ आत्मा।
मैं सदा ज्ञायकस्वभावी आत्मा।।
गोरा-काला जो भी दिखता चाम है।
मोटा-पतला होना इसका काम है।।
सब शरीरों से रहित मैं आत्मा।।

जय जिनेन्द्र, धन्यवाद।''

सभी ने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक करतल ध्वनि और भगवान महावीर स्वामी की जयकार के साथ सहज के विचारों का स्वागत किया।

''हमारे सभी युवा साथियों की अनेक शंकाओं का समाधान इस संवाद से हुआ होगा। हम इस संवाद से सभी प्रश्नों के उत्तर खोज सकेंगे - ऐसा तो नहीं है; पर हमारे मन में सत्य समझने की प्यास जगे, धर्म समझना चाहिये ऐसी भावना बने, स्वाध्याय हमारी दिनचर्या में सम्मिलित हो, बस इतना ही हमारा प्रयास है।

अब आप सभी से निवेदन है कि आधा घंटे का अंतराल है। हम सभी को लगना चाहिये कि हम किसी शिविर में ही नहीं आये हैं, विवाह की वर्षगाँठ भी मना रहे हैं; अत: आप सेठ परिवार की ओर से अल्पाहार के लिए सादर आमंत्रित हैं, आधा घंटे बाद दूसरा सत्र प्रारंभ होगा।'' आस्था ने सूचना दी।

अल्पाहार के समय पूरी समाज इस प्रकार के कार्यक्रम की सराहना कर रही थी। अनिकेत-सोनम, सौरभ-सुनाक्षी, प्रसून-अस्मिता, मयंक-शुभांशी आदि सहज, मुक्ति, आस्था के पास आकर परिचय कर रहे थे और दोनों के ही व्याख्यान की हृदय से प्रशंसा कर रहे थे।

०००

23

संवाद के दूसरे सत्र का प्रारंभ करते हुये आस्था ने कहा – ''परिवार व समाज, स्त्री–पुरुष से मिलकर ही बनता है; पर अधिकांशतः देश में महिला को दोयम दर्जे का मानकर मात्र पुरुष की अनुचारिणी के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसके कारण आज की पीढ़ी इस व्यवस्था को स्वीकार न करके अतिवादी हो गई है; जिसके फलस्वरूप देश व समाज में अनेक विकृतियाँ आ रहीं हैं; परन्तु जैनधर्म में विशेषकर गृहस्थ धर्म के पालन में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

हम इस संवाद में इसी विषय पर चर्चा करेंगे कि 'श्रावकाचार के पालन में महिलाओं की क्या भूमिका है।' इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए मैं सादर आमंत्रित कर रही हूँ – श्रीमती स्नेहा जैन को। श्रीमती स्नेहा जैन अपने संस्थान में बालिकाओं को तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार का ज्ञान कराकर एक योग्य महिला बनाने हेतु प्रयासरत हैं। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे श्रीमती स्नेहा जैन की बहू बनने का अवसर प्राप्त हुआ है, मैं भी आपसे निरन्तर कुछ न कुछ सीखती ही रहती हूँ कृपया वे आयें और हम सभी को लाभान्वित करें।''

''आप सबने सुना है कि पुरुष और महिला, परिवाररूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। मैं आपसे पूँछना चाहती हूँ कि गाड़ी में कौन–सा पहिया पंचर हो फिर भी गाड़ी अच्छी तरह से चलती रह सके ? या एक पहिया साइकिल का और एक ट्रेक्टर का हो तो क्या गाड़ी सही चल सकेगी ?'' स्नेहा ने सपनाजी की ओर इशारा करके पूँछा।

''कोई–सा भी पहिया पंचर नहीं होना चाहिये न ही हवा कम होना चाहिये, जब दोनों ही पहिये सही व एक जैसे होते हैं, तभी गाड़ी सही

चल सकती है, यदि ऐसा नहीं हुआ तो गाड़ी तो सड़क किनारे गड्ढे में पड़ी मिलेगी।'' सपनाजी ने हँसते हए जवाब दिया।

''बिल्कुल सही बात, बस! इसी तरह से परिवाररूपी गाड़ी में यदि एक भी पहिया कमजोर हो तो वह परिवार अच्छा नहीं चल सकता। इसलिये यह तो समझ ही लीजिये कि महिलाओं की भी परिवार में सुख-शान्ति लाने में भूमिका किसी भी रूप में कमजोर नहीं है। पुरुष न्यायपूर्वक कमाकर लाये और महिला विवेकपूर्वक भोजन बनाकर, वात्सल्यपूर्वक खिलाये तभी सही पोषण मिलता है। पुरुष यदि बाहर का कार्य सम्हाले, तो महिला घर पर रहकर बालकों को संस्कार देने व घर को सम्हालने के लिए समर्पित हो तभी जैन परिवार कहला सकता है।

आज बहिनों ने आधुनिकता/भौतिकता की चकाचौंध में अपनी भूमिका, श्रावकाचार के संस्कार देने व श्रावकाचार के अनुसार घर सम्हालने की जगह पुरुषों की ही तरह पद-पैसा पाने की प्रतियोगिता में बदल दी है, जिसके कारण अब जैन परिवार श्रावकाचार रहित होते जा रहे हैं। संसाधन बढ़ रहे हैं परन्तु कहीं पर भी श्रावकाचार नहीं है, रसोई में स्वच्छता कदाचित् दिखती है; पर शुद्धता नहीं है।''

''आप बार-बार श्रावकाचार शब्द का प्रयोग कर रही हैं; पर यह श्रावकाचार क्या कहलाता है? पहले यह तो बताइये।'' सोनम ने पूँछा।

''मैं यहाँ शास्त्रों की भाषा और परिभाषायें न बताकर सामान्य भाषा में ही बताने का प्रयास करूँगी; जिन्हें विशेष जानना हो वे आदरणीय पण्डित ज्ञानचन्दजी की सभा में जायें तो स्पष्टता होगी। श्रावक शब्द में तीन अक्षर हैं 'श्र' अर्थात् श्रद्धावान, 'व' विवेकवान और 'क' क्रियावान। जो श्रद्धावान, विवेकवान व क्रियावान हो उसे 'श्रावक' कहते हैं; और श्रावक के आचार, आचरण को श्रावकाचार कहते हैं।

इसमें यह भी ध्यान रखने योग्य है कि जो देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा करने में भी विवेक रखे और जो भी पूजन, स्वाध्याय, आहार, विहार, पहनावा, बोलचाल की क्रिया हो उसमें भी विवेक रखे वही श्रावक है। सामान्यतया गृहस्थ को श्रावक कह देते हैं, पर हर गृहस्थ श्रावक हो सच में ऐसा नहीं है।''

''श्रावक के कार्य तो हर जैन घर में होते ही हैं, आप इस संवाद के माध्यम से युवा वर्ग को क्या संदेश देना चाहती हैं ?'' अनीशा ने प्रश्न किया।

''हमारा श्रावकाचार वैज्ञानिक व अहिंसक है; परन्तु आज के युवा–युवतियों को सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा गया, आचार्यों द्वारा लिखा गया श्रावकाचार ढकोसला लगने लगा है। हमें जिन मंदिर जाकर पूजन करना, स्वाध्याय करना, संयमित जीवन जीना बंधन व व्यर्थ लग रहा है। आज पानी छानकर पीना, घर पर ही आटा–मसाले तैयार करके दिन में ही शुद्ध, सात्त्विक, स्वादिष्ट भोजन बनाकर करना, अतिथियों को कराना कष्टकर लगने लगा है।

भोग सामग्री के लिए हमारे पास पर्याप्त धन है, यदि नहीं है; तो बैंक से लोन लेने के लिए तैयार बैठे है, पर दान करना कष्टकर लगने लगा है। हम श्रावक के षट् आवश्यकों, रात्रि भोजन त्याग, छानकर पानी जैसे कार्यों से दूर मात्र विलासिता का जीवन जीने की आदी होते जा रहे हैं।

हमारे दादा–परदादा के समय जो इन सबका पालन किया जाता था, उसका मुख्य कारण उस समय की महिलायें अर्थात् दादी–परदादी थीं। वे परिवार के खान–पान की सभी व्यवस्थायें इस तरह करती थीं कि मात्र स्वयं के जीवन के लिए ही नहीं, सभी के लिए श्रावकाचार का पालन कराने में सहायक बनती थीं। पहले की महिलायें दिखावे से दूर शुद्धता पर ध्यान देती थीं, स्वयं परिश्रम करती थीं, इसलिये भोजनालय

शुद्ध रहता था; अत: शुद्ध भोजन करने वालों का मन भी शुद्ध अर्थात् पवित्र रहता था संतोष, सरलता, सहयोग, यह आभूषण थे।

आज सब धन कमाने की होड़ में लग गये हैं। क्या बिडंबना है, धन कमाने के लिए दूसरों के यहाँ महिलायें नौकरी करती हैं, परेशानी उठाती हैं, बच्चों से दूर रहती हैं, उद्दण्ड लोगों के कटाक्ष सहन करती हैं, बसों में धक्के खाती हैं और अनैतिक लोगों के स्पर्श के दण्ड को भोगती हैं, फिर घर में नौकर लगाकर, होटलों में भोजन कर, बीमारी में अभक्ष्य दवाइयाँ खाकर, बच्चों को नौकरानियों के सहारे बड़ा कर व कोचिंग के भरोसे पढ़ा कर, मेहनत से कमाये धन को खर्च करती हैं।

आपको नहीं लगता कि हमारी बुद्धि कितनी भ्रष्ट हो गई है; कि घर पर हम हजारों रुपये की 'आरो मशीन' पानी साफ करने लगा सकते हैं; परन्तु पानी छानने के लिए ढ़ंग का कपड़ा नही ला सकते ? हम पानी यदि दूषित है तो उसे उबालने का परिश्रम नहीं कर सकते। ध्यान रखें आरो मशीन पानी को स्वच्छ कर सकती है, पर शुद्ध नहीं। बाजार के मसाले आदि कदाचित् स्वच्छ दिख सकते हैं; पर वे शुद्ध नहीं हैं; क्योंकि उसमें अहिंसा, दया का पालन नहीं हुआ है। शुद्धता – अहिंसा, दया के परिणामों के साथ की गई स्वच्छता में है।

विज्ञान की बदौलत प्राप्त मशीनें काम जल्दी कर सकती हैं, कदाचित् स्वच्छता ला सकती हैं; पर शुद्धता नहीं। यह ध्यान रखें श्रावकाचार – जीव रहित पानी या भोजन करने की बात नहीं कहता है; बल्कि जीवों को सुरक्षित निकालकर उपयोग करने की बात करता है।

जिन शुद्ध भोजनालयों में आप सपरिवार पार्टी देने या रविवार को हम बाहर खाते हैं और गर्व से दूसरों से कहते हैं, उन होटलों की रसोई को देखें, उन बनाने वालों को देखें, वह सामग्री कहाँ से आती है ? उसका पता करें; तब पता चलेगा कि उस शुद्ध भोजन की कितनी शुद्धता है ?

आप मात्र वातानुकूलित डायनिंग हॉल में बैठकर म्यूजिक सुनते हुये, सुन्दर प्लेटों में आये हुये भोजन को बिना विचारे खाकर चले आते हैं। वह भोजन कितना अशुद्ध है? रात में व अविवेक पूर्वक बनने से कितनी हिंसा हुई है? जमीकंद होने व रात्रि भोजन करने से भी वह कितना दोषपूर्ण है? अत: ऐसे भोजन का भाव पाप बंध का ही कारण है, साथ ही ऐसा भोजन अनेक बीमारियों का कारण है, जबकि श्रावकाचार के अनुसार बनाया गया भोजन दया की प्रधानता होने से पुण्य कारक तो है ही; साथ ही स्वास्थ्य व धन का रक्षक भी है।

पाप करके कमाना व पाप में ही व्यय करना यह कौन-सी बुद्धिमानी है?''

''ऐसा तो सारे ही देश में चल रहा है। इस संबंध में हम क्या कर सकते हैं?'' सुरक्षा ने पूँछा।

''यदि हम श्रावकाचार का पालन करना चाहते हैं, तो बहिनो यह सब आपके ही हाथ में है। अकेले पुरुष को श्रावकाचार का पालन करने में कठिनाई है और करेंगे भी तो अकेले उनको ही पुण्य होगा पर एक महिला श्रावकाचार का पालन करती है; तो पूरे परिवार को पालन कराने के भाव से वह अधिक पुण्यार्जन करती है।

'जैसा खावे अन्न-वैसा होवे मन' की कहावत के अनुसार दया से भीगे हुये परिणामों से, यत्नाचार पूर्वक बनाये व वात्सल्य से परोसे गये भोजन से, भोजन करने वाले के परिणाम भी दया व वात्सल्य के परिणामों से भीगते हैं और होटलों के भोजन में तो खाने वाला भी पैसा देख रहा है कि कितने की थाली है? बनवाने वाला और परोसने वाला भी पैसा ही देख रहा है; तो जो ऐसा भोजन करेगा उसके चित्त में बस कैसे भी धन कमाने के ही भाव आते हैं, धर्म समझने व करने के भाव नहीं आते।

इसलिए इस पवित्र श्रावकाचार के पालन में महिलाओं का ही सर्वाधिक योगदान है। माता को बच्चों की पहली पाठशाला कहा जाता है। बचपन से दिये गये संस्कार पूरे जीवन में रहते हैं। इसलिये मैं आपसे निवेदन करना चाहूँगी कि आप अपनी भूमिका को समझें, आप बच्चे का 'कैरियर' बनाने से अधिक उसका "कैरेक्टर" बनाने का प्रयास कीजिये।"

"बहिनजी! आप कोई ऐसे 'टिप्स' दीजिये कि महिलायें किस तरह जीवन में श्रावकाचार के पालन करने-कराने में सहभागी बनी रही सकती हैं? बच्चे को जन्म से लेकर क्या संस्कार दिये जायें, जिससे कि वह एक योग्य श्रावक बन सके।" शुभांसी ने कहा।

"बच्चे को संस्कारित करने में महिला का महत्त्वपूर्ण योगदान है इसलिये जब कोई भी महिला गर्भवती हो, तभी से उसे मंदिर में शान्तिपूर्वक पूजन करना, मेरी भावना, आलोचना पाठ, सामायिक पाठ, महापुरुषों, सतियों के जीवन चरित्र आदि को पढ़ना चाहिये। सदैव प्रसन्न रहकर धर्ममार्ग पर चलने व देश भक्ति आदि की सात्त्विक भावनायें बनाना चाहिये।

बच्चे के जन्म के 45 दिन बाद जब बच्चे को मंदिर ले जायें, तब से विशेष परिस्थति को छोड़कर बच्चे को प्रतिदिन मंदिर ले जायें, मद्य-मांस-मधु, जमींकंद व रात्रि भोजन का भी प्रयोग किसी प्रकार से न हो इस बात का ध्यान रखें। छोटे से बच्चे को भी इस प्रकार की ही आदतें डालें कि रात में कुछ न खिलाना पड़े। जिनवाणी में तो रात्रि में सभी प्रकार के आहार का निषेध है; परन्तु कदाचित् अत्यावश्यक हो तो भी बच्चों को दूध-फल आदि ही दें; पर अन्न का भोजन किसी भी रूप में न दें।

जब बच्चा बोलने लग जाये, समझने लगे तब उसे पाठशाला भेजें

अथवा घर पर ही णमाकोर मंत्र आदि सिखायें, स्तुति याद करायें। तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार को प्रेम से समझायें; थोपें नहीं। हम घर पर वह स्कूल से कौन-सी अंग्रेजी की कवितायें सीखकर आया है इसके प्रदर्शन में न लगकर, धार्मिक कवितायें व कहानियाँ बच्चे से सुनवायें।

आज तो बहुत से साधन उपलब्ध हैं, उन पर धार्मिक, पौराणिक कहानियों, गीतों के वीडियो उपलब्ध हैं; वे दिखायें।

बच्चों को मर्यादित समय तक उनके योग्य कार्यक्रम ही टी.व्ही. पर देखने व वाट्सएप आदि चलाने की अनुमति दें।

परिवार में सभी मंदिर जायें, समयानुसार पूजन व स्वाध्याय करें एवं सभी दिन में ही भोजन करें, इस प्रकार से व्यवस्था करें क्योंकि बच्चे जो देखते हैं, वह आसानी से सीखते हैं।

वर्तमान में हमारे पुण्योदय से देश भर में अनेक संस्थान चल रहे हैं, जहाँ पर बालक-बालिकाओं को धार्मिक संस्कारों के साथ उच्च लौकिक शिक्षा दी जाती है, वहाँ अपनी संतान को पढ़ने भेजें।

आज अधिकांशत: महिलायें भी सर्विस या अन्य व्यवसाय करती हैं, ऐसे में हमें जो आधुनिक साधन मिक्सर आदि मिले हैं, उनका लाभ लेते हुये मर्यादित मसाले आदि तैयार कर सकते हैं।

यू-ट्यूब आदि से नये व्यंजनों की रैसिपी सीखकर, जैनाचार के अनुसार व्यंजन बनाकर परिवार के सदस्यों को खिलायें; तो बच्चों को बाजार जाकर खाने का मन ही नहीं होगा।

अपनी सहेलियाँ व संगठन जैन परिवारों के ही बनायें उनके साथ ही पिकनिक यात्रा आदि रखें तो पिकनिक पर घूमने-फिरने व मस्ती करते समय भी मर्यादा बनी रहेगी व खान-पान का ध्यान रखा जा सकेगा।

बच्चों के वैवाहिक संबंध साधर्मी परिवार में एवं दिन में ही करें। जन्मदिन आदि मनाना ही हो तो बच्चों को मंदिर ले जाकर दर्शन-पूजन करायें, दान करायें, सत्साहित्य पढ़ने को दें और घर पर निर्मित मिष्ठान्न ही खिलायें व मित्रों को खिलाने के लिए दें।

परिवार में अनावश्यक भोग सामग्री की माँग न करें, जिससे श्रीमानजी को कैसे भी धन कमाने की भावना बने।

परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति वात्सल्य, सहयोग बनाये रखें इससे धर्म की प्रभावना होती है। यदि हम शुद्ध भोजन करते हैं, स्वाध्याय सभा में जाते हैं; परन्तु सास-ससुर की सेवा नहीं करते, जेठ-जेठानी से लड़ते हैं या सहयोग नहीं करते तो धर्म की भी अप्रभावना ही होती है।

इस तरह महिलायें श्रावकाचार के पालन कराने में जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त अपनी सक्रिय भूमिका अदा कर सकती हैं।

मैं आगम के साक्षी पूर्वक कहना चाहती हूँ कि आप पूर्व पुण्योदय से, नौकरी करके जो पैसा कमाकर साधन जुटायेंगी, वह श्रावकाचार का पालन न करने से पाप व असंतोष का ही कारण होंगे; परन्तु यदि आप धन न कमा कर सच्चे मन से श्रावकचार का पालन करेंगी, करायेंगी, तो आपको धर्म प्रभावना की भावना से शान्ति, निराकुलता, संतोषरूपी धन तो तत्काल मिलेगा साथ ही जो पुण्यबंध होगा, उससे साधन-सामग्री भी मिलेगी और इसी भावभूमि में ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी रत्न भी उत्पन्न हो सकेंगे, जो हमारे जन्म-मरण का अभाव करने वाले होंगे; अत: आप अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुये दूसरों के भी पुण्य में कारण बने, पाप में कारण न बनें; इसी भावना से विराम लेती हूँ।''

इस भावपूर्ण व्याख्यान से पूरी सभा मंत्रमुग्ध हो गई।

''पुरुष मात्र अपने को धर्म में लगाते हैं; परन्तु महिला अपने को,

अपने बच्चों को, अपने पति व सास-ससुर ही नहीं पूरे परिवार को धर्ममार्ग में लगा सकती है। सभी बहिनें सोच सकतीं हैं कि हमारी कितनी बड़ी जिम्मेदारी है, इसलिये अपने आपको धन कमाने की मशीन न बनाकर, धर्म प्रकट करने व धर्म का प्रचार करने की मशीन बनायें; तो हमारा जीवन धन्य होगा। आदरणीया स्नेहाजी का हार्दिक धन्यवाद।'' आस्था ने संचालन करते हुए कहा।

सभी ने करतल ध्वनि से अभिवादन किया।

''अब मैं आमंत्रित कर रही हूँ आदरणीय युवराजजी को; जो हमारे घर के तो राजा ही हैं; पर नाम युवराज ही है, वह आयें और एक अच्छे परिवार रूपी संस्था का क्या स्वरूप है? इस पर प्रकाश डालें।''

''मैं इस सभा में एक अच्छे परिवार के संबध में चर्चा करूँगा; क्योंकि आज परिवार टूटते जा रहे हैं, सिमटते जा रहे हैं, बिखरते जा रहे हैं, जिससे सामाजिक व्यवस्था भी प्रभावित हो रही है।

एक अच्छा परिवार कैसा हो? यदि यह प्रश्न मुझसे पूँछा जाये तो मैं कहूँगा कि एक अच्छा परिवार जैसा सेठ लालचन्दजी का है ऐसा होना चाहिये। 3 पीढ़ियाँ एक साथ रह रहीं हैं। दो भाइयों का एक साथ रहना, देवरानी-जेठानी का बहिनों जैसा व्यवहार करना, स्नेह व सहयोग बनाये रखना, आज के वातावरण में एक आश्चर्यचकित करने वाली घटना होती जा रही है। आपके पोते-पोतियाँ भी आपकी भावना के अनुसार संस्थान में पढ़ने गये हैं। इस सभा की ओर से मैं सेठ लालचन्दजी व श्रीमती विमलादेवी को हार्दिक शुभकामनायें देता हूँ कि आपका परिवार इसी प्रकार स्वस्थ-प्रसन्न रहते हुये लौकिक-लोकोत्तर मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ता रहे।'' सभी ने करतल ध्वनि से इस बात की सराहना की।

"परिवार का मतलब क्या होता है?" अनिकेत ने प्रश्न किया।

"परिवार दो शब्दों से बना है परि+वार अर्थात् चारों ओर से ढ़ँकना, आच्छादित करना। जो हमें हर दु:ख की परिस्थिति से, प्रतिकूलताओं से दूर रखता है, आच्छादित करता है, हमें ढ़ँककर सुरक्षा प्रदान करता है, वह हमारा परिवार है। आज की भाषा में कहें तो परिवार हमारा सुरक्षाचक्र है जो हमें बुरे कार्यों से बचाता है, मिथ्यामार्ग पर जाने से हमें रोकता है और जो हमें सुख के मार्ग पर न्याय–नीति–धर्म के मार्ग पर चलने के लिए सुरक्षित वातावरण प्रदान करता है। परिवार में हमारा तन–मन –धन तीनों ही सुरक्षित रहते हैं। परिवार के सदस्य दादा–दादी, माता–पिता, ताऊ–ताई, चाचा–चाची आदि होते हैं।

पर आज यह परिवार टूट रहे हैं, आज हम दो और हमारा एक की अवधारणा बढ़ती जा रही है। आज के युवक के परिवार में उसके माता–पिता भी शामिल नहीं हैं; तो फिर दादा–दादी तो बहुत दूर हो गये। हम अपने आपको बुद्धिमान समझते हुये 'फ्रीडम' के लिए परिवाररूपी सुरक्षा की मजबूत दीवाल तोड़ रहे हैं, इसका अर्थ हुआ कि नासमझी में हम अपने सुरक्षाचक्र को ही तोड़ रहे हैं।

जिस तरह सीताजी ने लक्ष्मण रेखा की सुरक्षा को तोड़ा तो अपहरण हो गया; इसी तरह हम भी परिवाररूपी सुरक्षाचक्र को तोड़ रहे हैं, तो हमारे विचारों का, हमारे आहार का, हमारे शील व सदाचार का अपहरण हो रहा है और फलस्वरूप भयंकर अशान्ति फैल रही है। जिस प्रकार मदिरा सेवन करने वाला मात्र अपने में मस्त है, धन–परिवार–सम्मान सब बिगड़े तो बिगड़े, वही स्थिति यहाँ हो रही है। धन व धर्म दोनों ही बिगड़ रहे हैं; पर हमें विचार ही नहीं है।

अलग–अलग रहने पर धन कैसे बिगड़ता है इस संबध में आप सभी

व्यापारी वर्ग से हैं इसलिए पूरा हिसाब लगा सकते हैं कि जब दो–तीन भाइयों या माता–पिता व पुत्र का परिवार एक साथ रहता हो तब और जब वे अकेले रहते हों तब, पूरा खर्च जोड़कर देखेंगे तो मालूम चल जायेगा कि खर्च में कितना अन्तर आता है, कितने अनावश्यक व दोहरे खर्च बढ़ते हैं, इस तरह हम धन बिगाड़ते हैं।

और धर्म अर्थात् धार्मिक आयोजनों में सहभागी बनने की अपेक्षा देखें तब भी सामूहिक परिवार में कभी छोटा भाई का परिवार तो कभी बड़े भाई का परिवार तो कभी माता–पिता, परिवार के अन्य सदस्यों के भरोसे घर–व्यापार छोड़कर स्वाध्याय/शिविर/यात्रा में चले जाते हैं; परन्तु यदि अकेले रहते हैं तो कहीं पर आने–जाने की पराधीनता हो जाती है, मकान खाली छोड़कर जाने की चिन्ता बनी रहती है।

आज तो दो–तीन भाइयों वाली बात ही नहीं रह गई, अधिकतर एक बेटा, एक बेटी होती है, बेटी विवाह करके चली जाती है, अब बस माता–पिता रहते हैं, उनके साथ भी बेटा नहीं रहना चाहता तो माता–पिता को कितनी मानसिक पीड़ा होती है और बेटा–बहू भी स्वतंत्रता के नाम पर अनर्गल प्रवृत्ति और अनावश्यक रूप से घर की सुरक्षा की चिन्ता में परेशान रहते हैं।

भाइयो ! मैं कहना चाहूँगा कि यह परिवार की व्यवस्था चारों गतियों में से एकमात्र मनुष्य गति में ही है। पशुओं के कोई सास–बहू, जेठ–जेठानी, ननद–भाभी नहीं होते, नरक गति में तो पति–पत्नी भी का संबंध नहीं बनता क्योंकि सभी नपुंसक होते हैं, देवगति में भी देव–देवी ही होते हैं उनके पुत्रादि नहीं होते, बेटे–बहू, पोता–पोती नहीं होते; तो जो हमें इतना दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है कि हम इतने रिश्तों के साथ रहकर परस्पर सहयोग, समन्वय, स्नेह ले–दे सकें, एक दूसरे को प्रेरित कर हम धर्म मार्ग पर चल सकें, गिरते हुये को बचा सकें, दुःख में हम

सेवा करके दूसरों का दु:ख कम कर सकें उस अवसर को क्यों गँवाना चाहते हैं?

गाय का बछड़ा बीमार हो जाये तो वह कुछ नहीं कर सकती। उसकी पड़ोसी भैंस को भोजन न मिले तो वह गाय भोजन नहीं दे सकती; पर हमें यह अवसर है कि हम ऐसा कर सकते हैं तो हम इन कार्यों से क्यों बचना चाहते हैं?''

एक युवक ने प्रश्न किया ''सर! माता-पिता के साथ रहने में समस्या यह आती है कि वे समझते तो कुछ हैं नहीं, बस दिन भर पूँछ-पूँछ कर परेशान कर देते हैं। इसलिए अलग रहें तो दोनों को ही शान्ति रहती है।''

''आप यह बात बिल्कुल सही कह रहे हैं, कि माता-पिता बच्चों से पूँछते बहुत हैं। यह क्या है? वह क्या है? आदि।

मैं उन बुजुर्गों से कहना चाहूँगा कि हमें स्वाध्याय में अधिक मन लगाना चाहिए। कुछ समय बेटे-पोतों के साथ रहकर, घर पर कुछ धर्म चर्चा करके समय का सदुपयोग करना चाहिए। बाहर में क्या हो रहा है, टी.व्ही. पर क्या आ रहा है? देश में क्या हो रहा? ऐसी जानकारियों के लोभ से बचना चाहिये। उन जानकारियों से फायदा कुछ नहीं होता, राग-द्वेष ही बढ़ता है।

अब युवकों से कहना चाहूँगा कि आज के सब पढ़े-लिखे बेटे-बहू यही समझने लगे हैं कि समझदार तो बस वही हैं, माता-पिता तो गुजरे जमाने के हो गये, वह आज की बातों को क्या जानें। वह तो मानो बेवकूफ हैं। उनको यह समझ नहीं आता कि तुम्हारे जैसे होशियार बच्चों को जन्म देने वाले, तुम्हें पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाने वाले मूर्ख नहीं हैं। वे तुमसे कुछ चाहते भी नहीं हैं, वे तो मात्र अपनी प्यारी संतान की जबान

से दो बोल सुनने के लिए तड़पते हैं, तुम अपने आप कुछ बोलते नहीं तो वह कुछ भी प्रश्न पूँछकर, तुम्हारी आवाज सुनकर प्रसन्न होना चाहते हैं। पर बेटे उनकी इन भावनाओं को न समझ कर उन्हें बेवकूफ समझते हैं, तब उन बच्चों की होशियारी पर तरस आता है। इस संबंध में एक शैर आता है –

हम ऐसी किताबों को काबिले जब्ती समझते हैं।
जिन्हें पढ़कर बेटा बाप को खब्ती समझते हैं।।''

जिन माता-पिता ने आपको इस योग्य बनाया जिन्होंने आपको बोलना, चलना, खाना सिखाया आज वह नासमझ हो गये और आप समझदार हो गये; यह समझना ही नासमझी का सूचक है। आप अपनी लौकिक सफलता में इतने मशगूल हो रहे हैं कि माता-पिता से ही दूर होना चाहते हो। **अरे! वह सफलता किस काम की जो अपनों से दूर कर दे।**

मेरे भतीजे का एक छोटा-सा लड़का है, वह कुछ भी देखता है या कहीं आते-जाते देखता है तो तुरन्त पूँछेगा ''आप टां जालय? ट्यों जालय? ट्या टल्लय? ये ट्या है?''

हम सब उसके इन प्रश्नों को सुनकर खुश होते हैं और उत्तर देते हैं। परेशान नहीं होते, उसे भगाते नहीं हैं।

आपने एक कहानी पढ़ी-सुनी होगी कि एक पिता ने अपने बेटे से किसी बात को दो-तीन बार पूँछ लिया तो बेटा झल्ला उठा कि आपका तो दिमाग खराब हो गया है एक ही बात बार-बार पूछते रहते हैं।

पिता को यह सुनकर बहुत बुरा लगा, वह थोड़ी देर में अपने कमरे में से एक डायरी लेकर आता है और बेटे को देता है। बेटा डायरी खोलकर देखता है तो चार पेज में कौआ-कौआ लिखा है और चार पेज

में गधा–गधा लिखा है। वह डायरी देखकर कहता है कि "देखो मैंने कहा था न कि आपका दिमाग खराब हो गया है, बस कौये की तरह काँव–काँव करते हो वही एक ही बात पचासों बार लिख रखी है।"

तब पिता ने कहा – "बेटा यह तेरे बचपन के समय की डायरी है, तूने कौये को देखकर इतनी बार पूँछा और मैंने बताया, गधे को इतनी बार पूँछा और मैंने बताया, तुझसे तो मैंने बस तीन बार पूँछा और तूँ घबरा गया, मेरा दिमाग खराब बता दिया। मेरा दिमाग अब नहीं, तब खराब था जो तुझ जैसे नालायक को यह सब सिखाने में अपनी जिंदगी लगा दी।"

इतना कहकर डायरी लेकर पिता अंदर चला गया, तब बेटे को अपनी भूल का अहसास हुआ।

इसलिए मित्रो। मैं कहना चाहूँगा कि माता–पिता को कुछ समय दीजिये। वह मध्यान्तर के बाद की जिंदगी जी रहे हैं। मध्यान्तर के बाद अब उनकी उतनी ही जिंदगी हो, जितनी वे जी चुके ऐसा नहीं है, अतः मधुरता का व्यवहार करके उनके जीवन में मधुरता भर दो बस और उन्हें कुछ नहीं चाहिए।" तालियों की गड़गड़ाहट से सभास्थल गूँज उठा।

"ये बुजुर्ग लोग जहाँ चाहे गंदगी कर देते हैं; तो इन बच्चों को अच्छा नहीं लगता।" स्वरूपचन्दजी ने अपनी बात रखी।

"आपने जो बात कही है, वह बिल्कुल सही है कि आज के बच्चे ऐसा ही सोचते हैं। अपने दादा–दादी घर में हों तो बच्चे अपने दोस्तों को घर पर नहीं लाते, उन्हें शर्म आती है। इस संबंध में कहना चाहूँगा कि बेटे! जब आप पैदा हुये थे और कई वर्षों तक कपड़ों में ही मल–मूत्र का त्याग करते थे, तब आपकी मम्मी ने कभी भी कपड़े बदलने में देर

नहीं की। यदि भोजन कर रही थीं तो भोजन करना छोड़कर भी सफाई की। जब तुम बीमार पड़ गये तो माता-पिता ने रात-दिन जाग कर दवाई दी, ध्यान रखा।

बच्चो! वृद्ध और बालक को एक जैसा ही कहा जाता है। अब माता-पिता या दादा-दादी का शरीर काम नहीं कर रहा तो यह विचार करो कि इन्होंने मेरी बचपन में सेवा की है, इनका अपने ऊपर बहुत ऋण है, अब वह ऋण चुकाने का अवसर आया है, इसलिए इनकी सेवा करके इसी जन्म में चुका दो, यहाँ सब साधन हैं, नहीं तो अन्य गति में जाकर चुकाना पड़ेगा, तब बहुत मँहगा पड़ेगा।'' सदन एक बार पुनः करतल ध्वनि से गुंजायमान हो गया।

''आज के बच्चों को लगता है कि बुजुर्ग लोग हर बात में टोकते हैं, बहुओं को लगता है कि इससे उनकी स्वतंत्रता समाप्त होती है, इसलिये सबको छोड़कर स्वतंत्र रहना चाहिये।'' सपनाजी ने अपनी बात रखी जिसे सुनकर उनकी छोटी बहू अस्मिता शर्मिन्दगी का अनुभव कर रही थी।

''बहिनजी! आपकी ओर से हर घर की समस्या रखी गई है। इस संबध में पहले तो मैं माता-पिता से ही कहना चाहूँगा कि आपके बेटे-बहू स्वयं समझदार हैं, कमाने लगे हैं, आपने उनको बचपन से इतनी शिक्षायें दे दी हैं, अब उन शिक्षाओं का उनको प्रयोग करने दीजिये। अब भी छोटा बच्चा समझकर मत टोकिये। चलती गाड़ी में हर जगह ब्रेक लगाना, अच्छी बात नहीं है। बच्चों को अपने आप से निर्णय करने दीजिये और जब वह कुछ बात पूँछे तो आपको जो सही लगे राय देकर उन्हें स्वयं निर्णय करने दीजिये। सुभाषितकार ने कहा है -

लालयेत् पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताड़येत्।
प्राप्ते तु षोडसे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

अर्थात् पाँच वर्ष तक पुत्र को प्रेम से, दस वर्ष का होने पर ताड़ना देकर और सोलह वर्ष का होने पर पुत्र को मित्र के समान समझकर समझाना चाहिये। अब तो उनके भी बच्चे हो गये तो टोकना, समझाना बन्द करके उन्हें अपना काम करने दीजिये।

युवाओं से कहना चाहूँगा कि मित्रो! यदि वह टोकते भी हैं तो वह आपके हितैषी हैं, आपका अहित नहीं चाहते, उन्हें आपसे अत्यधिक प्रेम है, इसलिये उनको भय लगता है कि कहीं आपका बुरा न हो जाये, आप कोई मँहगी या अनावश्यक चीज न खरीद लायें; आप गलत व्यवहार न करें, जिससे आपका अपयश हो जाये; यह भय उन्हें टोकने पर मजबूर कर देता है। आप इसे इसी रूप में समझकर उन्हें अपना हितैषी माने।

मनीषियों ने कहा है कि 'भाग्यशाली को ही टोकने वाले मिलते हैं' वे 10 जगह टोकते हैं तो 5 जगह उनमें से निश्चित ही आपके लिए लाभदायक भी होती होंगी। आप उनके टोकने का भय रखेंगे तो अपने आप ही कुछ गलत काम नहीं होंगे।

वे आपके परिवार के बड़े सदस्य हैं, आप पहले से ही यदि उन्हें सूचना देकर कहीं बाहर जायें, समय बताकर जायें, बाजार से उन्हें कुछ जरूरत तो नहीं है पूँछकर जायें; तो बहुत कुछ तो टोकना अपने आप ही बन्द हो जायेगा। हम अपने आपको घर का मालिक और उनको अपना शरणार्थी मानकर रखते हैं, तो उन्हें हम कुछ भी नहीं बताते; जिससे वह पूँछते या टोकते हैं। बड़ों का सम्मान करोगे तो आपको भी सम्मान मिलेगा।"

"आप संयुक्त परिवार की बात कर रहे हैं पर आज बड़े परिवार हैं कहाँ जो मिलकर रहें? जो हैं वे भी मिलकर नहीं रह पाते, पता नहीं अब हवा-पानी ही सारा बदल गया है।" बालचन्दजी ने अपनी बात रखी।

"यह सही है कि पहले जैसे 5-7 भाई-बहिन और उनका परिवार ऐसा तो अब कहीं भी नहीं है। यदि परिवार में दो या तीन भाई हैं या माता-पिता और बेटा-बहू हैं तो भी यदि संभव हो तो एक साथ रहें। वैसे तो आज अधिकांशतः सर्विस में हैं तो वैसे ही एक साथ रहने का अवसर नहीं मिलता; पर व्यवसाय हो तो यदि आप एक साथ रहेंगे तो जैसा मैंने कहा कि धन और धर्म दोनों में ही लाभ मिलेगा, अपने बच्चों को खेलने-पढ़ने-लड़ने के लिए व सहयोग करने के लिए घर में ही मिलते रहेंगे, तो कहीं बाहर नहीं जाना पड़ेगा।

भाइयो ! लोक में छह द्रव्य हैं, उनमें विरोधी स्वभाव वाले भी हैं; पर अनादि से एक साथ रह रहे हैं, हाथों में पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं हैं पर एक साथ रह रहीं हैं, उनमें कोई कमजोर है, कोई ताकतवर, कोई छोटी है, कोई बड़ी; पर मिलकर रहती हैं और आवश्यकता पड़ने पर जब सब एकजुट हो जाती हैं तब उनकी ताकत से अच्छे-अच्छे लोग घबरा जाते हैं।

क्रिकेट में क्या सभी एक-सा खेलते हैं; पर जब जीतते हैं तो जीरो पर आउट होने वाला भी शतक लगाने वाले के साथ खड़ा होता है और विजेता टीम का ही सदस्य कहलाता है। इसी तरह दो भाइयों में या देवरानी-जेठानी में कोई अधिक काम करता हो, कोई कम करता हो, कोई अधिक कमाता हो, कोई कम कमाता हो; तो भी यदि हम एक साथ रहकर एक परिवार बनकर रहते हैं; तो उसकी ताकत कुछ अलग ही दिखाई देती है।

मैं इस अवसर पर बहिनों से विशेष रूप से कहना चाहूँगा, अधिकांशतः परिवार तोड़ने में आपको ही कारण माना जाता है; जबकि दोष पति-पत्नी दोनों का हो सकता है; पर इतना पक्का है कि यदि आप परिवार को जोड़कर रखना चाहें; तो आपके पति तो क्या ? कोई भी परिवार को

तोड़ नहीं सकता। बस इसके लिए थोड़ा सा धैर्य, त्याग, समझ व समझौता हो, आंतरिक स्नेह व उदारता हो; किसकी खिचड़ी में घी अधिक है यह देखने की आदत न हो तो आप संयुक्त परिवार बनाकर रह सकते हैं।

संयुक्त परिवार में शील की सुरक्षा है, मासिक धर्म आदि के समय परिवार को भोजन आदि की व्यवस्था है, बीमारी आदि के समय सहयोगी हैं, कहीं बाहर जाना है तो ताला लगाने की भी चिन्ता नहीं है, कुछ कार्य करने के लिए घर पर ही विचार-विमर्श के लिए योग्य सलाहकार हैं, पाप से बचाने के लिए वे ही हमारे रक्षक हैं, धर्म चर्चा करने के लिए साधर्मी हैं, इत्यादि बहुत सारे लाभ हैं।''

''भाईसाहब! आपकी भावना तो बहुत अच्छी है; मैं भी उज्जैन में परिवार न टूटें इसके लिए काम करता रहता हूँ; पर आज छोटे मकानों का होना या शिक्षा, विचार, व्यवसाय आदि की विविधिता से एक साथ 'एडजस्ट' करना दिनों-दिन मुश्किल होता जा रहा है।'' सतीशजी ने अपनी बात कही।

''हाँ! यह बिल्कुल सही है कि शिक्षा-विचार-व्यवसाय की परिस्थितियों में पहले से आज बहुत अंतर आया है, जिससे मनःस्थिति भी बदल रही है, ऐसे में 24 घंटे एडजस्ट करते रहना लोगों को असंभव सा लगता है; पर सच में तो इसका सबसे बड़ा कारण अपनों में अपनेपन की ही कमी है। हमें जिनके साथ अपनापन है, उनसे तो एडजस्ट करते ही हैं।

यदि बहुत चाहने के बाद भी एक साथ भोजन बनना व रहना संभव न हो तो भी पैसा-जमीन-सोना-चांदी को मुद्दा बनाये बिना, माता-पिता की आज्ञा से दो भाइयों का परिवार अलग रहने लग जाये; पर अपना स्नेह, बच्चों का पारस्परिक स्नेह व माता-पिता के प्रति अपनी जिम्मेदारी,

ईमानदारी से निभायें तो भी एक अच्छा परिवार कहलायेगा।

ऐसा परिवार बनने के लिये आवश्यक है कि हमें अपने माता-पिता के प्रति निरपेक्ष दायित्वबोध हो, उनके प्रति कृतज्ञता हो, अपने पुण्य पर भरोसा हो कि जितना मेरे भाग्य में है उतना ही मिला है, उतना ही मिलेगा; तो कभी ऐसी भावना नहीं हो सकती कि भइया-भाभी ने माल दबा लिया, माता-पिता ने भेदभाव किया और इस बात का विश्वास हो **'जिस जीव का, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस तरह से लाभ-हानि, यश-अपयश, रोग-नीरोग, जन्म-मरण, संयोग-वियोग भगवान ने देखा है; वह वैसा ही होगा, उसे टालने में कोई समर्थ नहीं है।** कोई कुछ भी चाहे, कोई कुछ भी कहे पर उनके चाहने के अनुसार कुछ नहीं होता, जो होना हो वही होता है।

और अंत में यह निर्णय हो कि – जिस प्रकार से किसी वृक्ष पर रात्रि विश्राम करने के लिए पक्षी अलग-अलग दिशाओं से आ जाते हैं और प्रातःकाल चले जाते हैं; उसी प्रकार परिवार रूपी वृक्ष पर भाई-बहिन, बेटे-बहू, पोते-पोती सब अपनी योग्यता से, अपना पुण्य-पाप, अपनी आयु लेकर आये हैं उनमें यह मेरा, यह पराये हैं; ऐसी कल्पना करना मिथ्या है; सच में तो सभी द्रव्य पूर्णतः स्वतंत्र हैं अतः मैं व्यर्थ भेद भाव करके, अपने पराये की भावना करके, राग-द्वेष कर करके, पाप बाँधकर नरक की तैयारी क्यों करूँ ? जब तक जीवन है या राग है तब तक हम एक अच्छे साधर्मियों की तरह जीवन व्यतीत कर, शान्ति के मार्ग में चलने की भावना भायें तो हमारा परिवार ही 'आत्मार्थी-परिवार' कहलायेगा। एक अच्छा अथवा आत्मार्थी-परिवार कैसा होना चाहिए यह मैं एक कविता के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा हूँ –

देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धानी, स्वाध्याय से भी हो प्रेम।
वृद्धजनों की सेवा-आदर, करना जिनका होवे नेम।।

प्रातःकाल मिलें जब परिजन, जय जिनेन्द्र ही वे बोलें।
भजन, गीत, संगीत चलाकर, भक्ति रस को जो घोलें।।

परिजनों से साधर्मीवत्, वात्सल्य का हो व्यवहार।
करें प्रशंसा इक दूजे की, सबसे मृदुमय हो व्यवहार।।

न्याय-नीति से पति कमाकर, जब भी निज घर में आवे।
शुद्ध-सात्त्विक, भोजन पत्नी, वात्सल्य युत करवावे।।

अन्याय-अनीति अरु अभक्ष्य के, साथ तजें जो तीन मकार।
हो सहयोग-सरलता सम, संतोष-समन्वय पंच सकार।।

जुबां और जीवन सुधर्ममय, ऐसा आत्मार्थी परिवार।
आत्मार्थी तो रहे चैन से, सुख-शान्ति पावे परिवार।।

इसी के साथ मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।"

युवराज ने अपनी बात पूरी की, सभा ने तालियों की गड़गड़ाहट से उनका धन्यवाद ज्ञापित करते हुये उनके विचारों के प्रति सहमति व्यक्त की।

मुख्यातिथि समाज के अध्यक्ष श्री सुनीलकुमारजी ने कहा – "किसी भी पारिवारिक कार्यक्रम में इतना ज्ञानवर्धक व जीवनोपयोगी आयोजन मैंने पहली बार देखा है। समाज के अन्य सदस्य भी इससे शिक्षा लेंगे कि हम जो भी पारिवारिक आयोजन करते हैं, वे कुछ न कुछ ज्ञानवर्धक भी हों। बस छककर मेहमानों को भोजन करा दिया, और लाखों रुपये खर्च कर दिये, उससे कुछ लोगों के पेट खराब होते हैं, कुछ लोगों के दिमाग खराब होते हैं, इसके अलावा कुछ लाभ नहीं होता।

पहले के समय में तो समाज का अध्यक्ष, उस समाज का राजा होता था, उसका निर्णय-निर्देश सभी को मान्य होता था; पर वर्तमान युग में

तो 'मानो तो गंगा माँ हूँ, न मानो तो बहता पानी' की स्थिति है; आप सब माने तो मैं इतनी बड़ी समाज का अध्यक्ष हूँ, और न माने तो बस सुनीलकुमार। इसलिये मैं निर्देश न देकर सादर निवेदन ही करना चाहता हूँ कि आज सर्वत्र संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, माता-पिता को उदासीन आश्रम, वृद्धाश्रम में भेजा जा रहा है या अकेले ही तड़पने को छोड़ा जा रहा है, हमारी जैन संस्कृति ध्वस्त होती जा रही है; ऐसे वातावरण में हम पाठशालाओं, शिविरों, ऑनलाइन पाठशालाओं आदि के माध्यम से बच्चों को अपने धर्म का ज्ञान दें, संस्थानों में पढ़ने भेजें एवं पारिवारिक कार्यक्रम भी जैनाचार के अनुसार आयोजित करायें तो व्यक्ति, परिवार व समाज सभी के लिए लाभदायक होगा।

हमारे सागर नगर में श्री युवराजजी सपरिवार पधारे एवं अभूतपूर्व 'संवाद' आयोजित कर हमारा मार्ग प्रशस्त किया, इसके लिए मैं पूरी समाज की ओर से आभारी हूँ। आपका परिवार तो हमारी जैन समाज के लिए एक 'मॉडल' परिवार है। भाई सहजजी व बहिन मुक्ति से समाज के युवक-युवतियों को प्रेरणा लेना चाहिये। सभी का धन्यवाद।"

अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुये पण्डित ज्ञानचन्दजी ने कहा कि "भाइयो! आज हमारे ही देश में मुस्लिम भाई, सिक्ख भाई जितना अपनी संस्कृति के पालन करने व प्रचार करने के प्रति जागरूक हैं, अपने समाज के प्रति समर्पित हैं, उतना हमारी जैन समाज नहीं है। जैन समाज समृद्ध व प्रबुद्ध है; परन्तु मात्र अपने स्वार्थसिद्धि व प्रदर्शन के आकर्षण में इस तरह से जकड़ता चला जा रहा है कि अपने परिवार, अपने आदर्श, अपना आचार-विचार सभी भूलता जा रहा है।

धर्म के नाम पर हम बोलियाँ लगाकर भव्य आयोजन, दिव्य निर्माण तो कर रहे हैं; उनकी भी आवश्यकता है; परन्तु उस प्रदर्शन में दर्शन गायब है हमारी संस्कृति गायब है, मात्र प्रदर्शन में कुछ लोगों का मान

पोषण तथा धन के आय-व्यय के अतिरिक्त कुछ नहीं हो पा रहा है।

परिवार में 'मध्यान्तर के बाद' की आयु वाले माता-पिता व दादा-दादी आज के बच्चों के लिए अनुपयोगी व प्रदर्शनी में रखने योग्य लगने लगे हैं। भाइयो! इस बात को समझो कि जिस समाज की संस्कृति नष्ट हो गई, वह समाज भी नष्ट हो जायेगी। मंदिरों, धर्मशालाओं, बड़े-बड़े भवनों से धर्म व समाज नहीं टिकेगा, समाज टिकेगा जैनाचार के पालन से। घर का प्रत्येक सदस्य मंदिर आवे, रात्रि भोजन का त्यागी हो, वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु का ही भक्त हो, न्याय-नीति पूर्वक कार्य करता हो, हमारी बहिनों का पहनावा श्रावकाचार के अनुकूल हो तभी हमारी संस्कृति सुरक्षित रहेगी।

आप लोगों में से कोई कह सकता है कि बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए बाहर जाना होता है, बाहर नौकरी करना होती है, इसलिये इन सबका पालन किया जाना संभव नहीं है।

हमारे बीच सागर के दामाद सहजजी व उनकी बहिन मुक्ति मंचासीन हैं। आप सब जानते ही हैं कि सहजजी कितने उच्च पद पर हैं और किस प्रकार की व्यस्त नौकरी कर रहे हैं, नेताओं-अधिकारियों के बीच रहना पड़ता है, मुक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, अध्ययन करते हुये स्वर्ण पदक जीत रही हैं; फिर भी यह दोनों बचपन से आग्रह पूर्वक और प्रेम से समझाकर दिये गये संस्कारों के कारण आज तक रात में भोजन नहीं करते, जमीकंद का सेवन नहीं करते, प्रतिदिन मंदिर जाते हैं, घर पर व सार्वजनिक भी स्वाध्याय करते हैं; इससे बड़ा उदाहरण हम और कहाँ खोजने जायेंगे। इसीलिये सही ही कहा है 'मुश्किल नहीं है कुछ भी, गर ठान लीजिये।'

अपने सागर में भी ऐसे परिवार व व्यक्ति हैं, जो श्रावकाचार का पालन करते हुये अपनी संस्कृति का पालन कर रहे हैं व आगे बढ़ा रहे

हैं। कुछ वर्षों से संस्थानों में भी बच्चों को भेज रहे हैं, इसके लिए उन परिवारों को धन्यवाद; परन्तु इस संबंध में और विशेष जागरूकता की आवश्यकता है। इसके लिए मैं युवा वर्ग से ही अनुरोध करूँगा कि वे इस प्रकार के आयोजन समय-समय पर रखें तो अवश्य ही समाज में जागरूकता आयेगी।

मैं, हमारे मित्र व स्वाध्याय सभा के नियमित श्रोता श्री लालचन्दजी व उनकी धर्मपत्नी को 50 वर्ष तक साथ रहने के अवसर पर बधाई देते हुये कामना करता हूँ कि "जोलों न रोग जरा गहे, तबलों झटिति निज हित करो।" आत्मकल्याण के मार्ग पर आप निरन्तर अग्रसर रहें एवं आप भवनाशिनी भावना भाते हुये दो-चार भवों में ही उस भावना को सार्थक करें इसी के साथ मैं अपनी बात पूर्ण करता हूँ।"

आभार प्रदर्शन के बाद पारिवारिक सदस्यों ने लालचन्दजी व विमला देवी के स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हुये अभिनंदन किया। ○○○

भाषा नहीं भाव को बदलो

मोहपाश में फँसकर प्राणी, सुध-बुध अपनी भूल गया।
अपनी निधि को भूला चेतन, जड़ वैभव पर रीझ गया।।
जिनवाणी कहती जग पर है, परिजन-पुरजन कोई नहीं।
सुनकर सबको पर कहता पर, पर लगता है कोई नहीं।।
पर कहकर सबको निज माने, उनका कर्ता-धर्ता भी।
मैं ही पालक, मैं ही पोषक, मैं ही उनका हर्ता भी।।
मात्र कथन से कुछ न होता, फल पावे जैसा माने।
'भाषा' नहीं 'भाव' को बदलो, ज्यों ज्ञानीजन हैं जाने।।
भाव बदलने से भव बदलें, भावों से हो भव का नाश।
तत्त्वज्ञान ही वह कुठार है, जिससे कटे मोह का पाश।।
मोहपाश के ही अभाव से, आकुलता सब मिट जावे।
हो प्रसन्नता हर घट में अरु, घर सुखायतन हो जावे।।

24

प्रोफेसर जयन्तजी–ऋतुजी सागर से आकर जब देखो तब वहीं की चर्चा करते रहते।

"लालचन्दजी ने कितना सुन्दर आयोजन किया। उनके बेटे–बहू कितने विनम्र व रुचिवन्त हैं, सभी मेहमानों का भी कितना ध्यान रखा। काश! हमारे बेटे–बहू भी इसी तरह रुचिवन्त हो जायें तो कितना अच्छा रहेगा।" जयन्तजी ने कहा।

"हमने कोशिश तो की है; परन्तु बचपन से प्राप्त संस्कारों का बदलना, असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। आज तो जैनकुल में जन्म लेने वाले लड़के–लड़कियों को ही जैनत्व के संस्कार दे पाना कठिन हो रहा है, वे ही चार्वाक दर्शन की मान्यता वाले होकर खाने–पीने में मस्त हो रहे हैं, तब सुनाक्षी को बदल पाना तो असंभव ही लगता है, हमने शिखरजी यात्रा के समय उसका व्यवहार देख ही लिया है धर्म के मामले में वह बहुत कट्टर है। सागर में जो भी विषय संवाद में चले, वह मुझे तो ऐसा लगता था, मानो सौरभ और सुनाक्षी की अज्ञानता को दूर करने के लिए ही चल रहे हैं।" ऋतुजी ने कहा।

"हाँ सच में देव–शास्त्र–गुरु की उपयोगिता व वीतरागी–निर्दोष व्यक्तित्व ही पूज्य होते हैं यह तो सहजजी ने कितना अच्छा स्पष्ट किया; सुनकर मन गदगद हो गया।" जयन्तजी ने कहा।

"सागर से आने के बाद सौरभ का मन तो कुछ धर्म के प्रति बदला है, ऐसा मुझे लगता है। बातों ही बातों में वह मंदिर के बारे में पूछता है, मम्मी आज स्वाध्याय में क्या सुनकर आयीं ऐसा पूँछता है। शिखरजी से जो पुस्तकें लाया था उन्हें भी मैंने पढ़ते देखा है।" ऋतुजी ने कहा।

''हाँ यह तो मैंने भी देखा, जब तुम और सुनाक्षी रसोई में थीं तब सौरभ 'सर्वोदय-तीर्थ' पढ़ रहा था।

देखो, आखिर है तो अपना ही खून न। यदि उसकी भली होनहार होगी तो बदलने में क्या देर लगती है। गौतम गणधर एक दिन में ही तो बदल गये थे।''

''अरे! उतना भाग्यशाली व पुरुषार्थी होना भी तो कठिन है।''

''मैं उनसे तुलना नहीं कर रहा हूँ। केवल उदाहरण दिया है, कि होना हो तो ऐसा हो सकता है। सौरभ तो आखिर जैन कुल का ही है, बचपन में दशलक्षण पर्व आदि पर मंदिर जाता ही था। बस वह तो बाहर पढ़ने व अपनी भी कम रुचि होने से वह आगे नहीं बढ़ सका।''

''सही कह रहे हो; चलो देखते हैं क्या होता है? जिसकी जैसी होनहार हो वैसे सभी समागम मिल जाते हैं। सागर का समागम तो इनके लिए 'टर्निंग प्वाइंट' हो सकता है।''

''अरे! यही बात तो अनिकेत नागपुर ने सागर में मंच से कही थी।''

''हाँ कही तो थी, पर जब कार्य हो, उस समय जो अनुकूल हो वह निमित्त कहलाता है। यदि होनहार न हो तो समवसरण से मारीचि जैसे वापिस भी आ जाते हैं, हम भी भूतकाल में ऐसे ही भटकते रहे हैं। अब महान जिनधर्म समझने का भाव जागृत हुआ है, बस अब उस रूप परिणमन हो जाये तो जीवन धन्य हो जाये।''

''कार्तिक कृष्ण तेरस की सुबह-सुबह जयन्तजी-ऋतुजी मंदिर जाने को तैयार हो रहे थे, तभी सौरभ व सुनाक्षी तैयार होकर आये सुनाक्षी ने कहा ''मम्मीजी आज धनतेरस है, आपको आज क्या खरीद लायें।'' प्रसन्नतापूर्वक सुनाक्षी ने पूँछा।

''बेटा! हमें कुछ नहीं चाहिये। पर आज ही क्यों खरीदना?''

''आज धनतेरस है न मम्मीजी।''

''अरे वह तो हमें भी पता है, पर ऐसा अंधविश्वास क्यों, कि आज ही खरीदना, आज तो मार्केट में पैर रखने को भी जगह नहीं होगी ऐसे में मनपसंद चीज देखना भी मुश्किल होता है, तुम्हें भी कुछ लेना है तो बाद में ले लेना।''

''हाँ सुनाक्षी! मम्मी सही कह रही हैं, तुम्हें जो खरीदना हो वह बाद मे खरीद लेना।'' सौरभ ने कहा।

''नहीं। मेरी मम्मी ने कहा है कि धनतेरस को सोना–चाँदी जरूर लेना वह बहुत फलता है। मेरी मम्मी भी हमेशा कुछ न कुछ खरीदती हैं।'' सुनाक्षी दृढ़ता से कहा।

''पर मेरी मम्मी तो नहीं खरीद रहीं न।'' सौरभ ने कहा।

''वह मम्मीजी की मर्जी, मैंने तो उनसे भी पूँछा है कि उनको खरीदना हो तो वह भी खरीद लें।''

''सौरभ बेटा! सुनाक्षी की इच्छा है तो उसे खरीदने दो। तुम भी साथ में बाजार चले जाना। हम मंदिर जा रहे हैं।''

शाम को सुनाक्षी दीपक जलाकर रख रही थी।

ऋतुजी ने कहा ''बेटा! दीपक क्यों जला रही हो?''

''अरे मम्मीजी! आप भूल जाती हो; आज धनतेरस है।'' सुनाक्षी ने चिढ़ते हुये कहा।

''इतनी तो सब तरफ लाइट जल रही है और दीपक जलाने से फालतू में जीवों की हिंसा होती है।

''मम्मीजी! हिंसा तो जब भोजन बनाते हैं, तब गैस जलाने में भी

होती है, तो चूल्हा जलाना भी बंद कर दें। यह अपने पर्व हैं, दीपक जलाकर लक्ष्मीदेवी का स्वागत किया जाता है। दीपक जलाना शुभ होता है।'' ऐसा कहकर दरवाजे पर दीपक रखकर अपने कमरे में चली गई। सौरभ और जयन्तजी सुनाक्षी के व्यवहार और चेहरे के हावभाव को देख रहे थे, जिनमें ऋतुजी द्वारा कही गई बात के प्रति उपेक्षा भाव स्पष्ट था।

सौरभ कमरे में जाकर सुनाक्षी से बोला – ''सुनाक्षी! मम्मी जिस काम को मना करती हैं, तुम वही करने के पीछे क्यों पड़ी रहती हो?''

''इसमें पीछे पड़ने की क्या बात है ? क्या हमने पिछले वर्ष ऐसा ही नहीं किया था?''

''पिछले वर्ष दिवाली पर मम्मी–पापा उज्जैन थे, अपने साथ नहीं थे। मैं तो जानता नहीं कि कैसे यह सब मनाना चाहिये; तो तुमने जो किया वह तुमने किया; पर अब की बार वे लोग हैं, घर के बड़े हैं वे सब जानते हैं, तो वे जो कह रहे हैं; वही करना चाहिये न?''

''अच्छा! जो वे कह रहे हैं, वह मुझे करने लग जाना चाहिये और मेरे मम्मी–पापा मूर्ख हैं, जो वर्षों से ऐसा ही कर रहे हैं, और मुझे हाथ पकड़ कर सिखाया है। आपके मम्मी–पापा ने तो आपको बचपन से धर्म का क–ख–ग सिखाया नहीं और अब हमारे बीच में सिखाने के लिए आ गये।''

''पर जब वे कह रहे हैं, तो मानना चाहिये न।''

''देखो आपने पहले ही कहा था कि धर्म के बारे में आप कुछ नहीं कहोगे। उनकी जो मर्जी है वे करें, मेरी मर्जी है मैं वह करूँगी। मैंने अंधेरा दूर करने वाला दीपक ही तो जलाया है, कोई घर थोड़े जला दिया है।

मैं देख रही हूँ कि सागर से आने के बाद आपके विचार बदल रहे हैं, आपको जो करना हो वह आप करना, पर मुझे मेरे धर्म के संबंध में किसी की भी टोकाटोकी पसंद नहीं है, यह आप ध्यान रखना।''

सुनाक्षी जानकर इतना जोर से बोल रही थी कि बाहर बैठे जयन्तजी-ऋतुजी सुन सकें। यह सुनकर उन्हें बहुत बुरा लगा, पर कह कुछ भी नहीं सकते थे। दोनों उठकर अपने कमरे में चले गये और चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखकर बिना कुछ कहे सी.डी. चालू करके धीमी आवाज में प्रवचन सुनने लगे।

आज भगवान महावीरस्वामी का निर्वाण कल्याणक दिवस था। जयन्तजी व ऋतुजी हमेशा ही 5 बजे उठ जाते थे, कुछ पाठ आदि करके तैयार होकर ऋतुजी ने प्रसन्न मुद्रा में आवाज लगाई ''सौरभ-सुनाक्षी।''

सौरभ-सुनाक्षी आँखें मलते हुये बाहर आये देखा मम्मी-पापाजी प्रसन्न मुद्रा में तैयार खड़े हैं। सौरभ ने पूँछा ''पापा आज आप लोग इतनी जल्दी तैयार हो गये, क्या बात है?''

''अरे बेटा! आज भगवान महावीरस्वामी का निर्वाण दिवस है, मंदिर में आज विशेष पूजन होगी। निर्वाणकाण्ड पढ़कर सभी सिद्धक्षेत्रों व सिद्ध भगवन्तों को याद किया जायेगा और फिर मोक्षफल चढ़ाया जायेगा, जिसे निर्वाणलाडू भी कहते हैं।''

''अरे वाह। मैं तो भूल ही गया था। मैं वर्षों बाद निर्वाण दिवस की पूजन करूँगा। चलो सुनाक्षी तैयार हो जाओ, मंदिर चलते हैं।''

''अरे! इतनी जल्दी मैं तैयार नहीं हो सकती। आज तो ऑफिस भी नहीं जाना है, मैं तो अभी सोऊँगी तुम्हें तैयार होना है, तो हो जाओ। मैं तो रात को लक्ष्मीजी की पूजन करके दीपावली मनाऊँगी। फालतू हल्ला मचाकर मेरी तो नींद खराब कर दी'' सुनाक्षी मुँह बिगाड़ते हुये कमरे में चली गई।

सौरभ सोचने लगा कि तुम्हारी तो नींद खराब हो गई; पर मुझे लगता है कि मम्मी–पापा की बात न मानकर तुमसे शादी करके तो मेरी जिंदगी ही खराब हो गई। "मम्मी मैं तैयार होकर आता हूँ, साथ ही मंदिर चलेंगे।"

रात में सुनाक्षी अनेक दीपक लेकर लक्ष्मी की पूजन की तैयारी कर रही थी, ऋतुजी को अच्छा नहीं लग रहा था तो उन्होंने कहा कि "बेटा! तुम्हारा मन कर रहा है तो एक दीपक जला लो। लोगों को तो घी–तेल खाने को नहीं मिलते, इतने दीपक जलाकर क्या फायदा है? खुशी तो अपने मन में होती है अंधेरा तो ज्ञान से भगता है, इतनी लाइट के बीच, इतने सारे दीपक जलाने से तो अंधेरा नहीं भगता, उल्टा अंधविश्वासों का अंधेरा बढ़ता चला जाता है।"

सुनाक्षी गुस्से में कमरे में गई और सौरभ से चिल्लाते हुये बोली "सौरभ! आप अपने मम्मी–पापा को बोलो कि वे चुप बैठकर जो हो रहा है, उसे देखें। बीच–बीच में बोलकर मेरा दिमाग खराब न करें नहीं तो आज इतने बड़े पर्व के दिन ठीक नहीं होगा। उनको बोलो कि वह गाते रहते हैं न "मात्र जानना मेरा काम" तो बस मात्र जानते रहें, हमारे घर के मालिक बनने की कोशिश न करें।

वे मेरे धर्म के बीच में नहीं आवें, यह मेरा घर है, मुझे जो करना है, वह करूँगी; यदि उनको मेरे साथ अच्छा नहीं लगता है, तो अपने घर उज्जैन चले जायें।"

सौरभ बिना कुछ कहे धम्म से पलंग पर बैठ गया और सोचने लगा यदि 'ज्ञान नेत्र न खुलें तो बाहर के दीपक, बल्ब या हैलोजन तो क्या, सूर्य भी हमारे अंदर के अंधेरे को नहीं भगा सकता।"

जयन्तजी–ऋतुजी तक सुनाक्षी का संदेश पहुँच चुका था, वे उठकर अपने कमरे में गये और एक–दूसरे की ओर देखकर आँसू बहाते हुये,

नये वीर निर्वाण संवत् में "निजघर बिना विश्राम नांहिं" यही सोचकर कर अपने घर उज्जैन जाने की सोचने लगे।

प्रात:काल पूजन व स्वाध्याय करके जयन्तजी-ॠतुजी जब घर पर आये, तब सौरभ और सुनाक्षी ड्राइंगहॉल में बैठे अल्पाहार कर रहे थे। दोनों ने ही विनयपूर्वक मम्मी-पापा को अभिवादन किया। ये दोनों भी मुस्कुराते हुए दोनों से जय जिनेन्द्र करके उनके पास ही बैठ गये।

जयन्तजी ने सौरभ से कहा - "बेटा! यहाँ रहते हुए हमें बहुत समय हो गया है, अब हम सोचते हैं कुछ दिन के लिए उज्जैन चले जायें। वहाँ पर सभी मित्रगण याद करते रहते हैं। बेटा! हम आज भोजन करके दोपहर में उज्जैन जाना चाहते हैं।"

सौरभ को यह समझते देर नहीं लगी कि कल रात की घटना से मम्मी-पापा को ठेस पहुँची है। वह कुछ कहे उससे पहले ही सुनाक्षी रुंधे गले से कहने लगी - "पापाजी! प्लीज आप अभी यहाँ से मत जाइये, हम लोगों को अच्छा नहीं लगेगा। आपको मित्रों से मिलना है तो हम सभी अगले शनिवार-रविवार को एक साथ चलेंगे। हम भी सभी से मिल आयेंगे और मिलकर वापिस आ जायेंगे।

मम्मीजी! आपको कल मेरी बात बुरी लगी होगी, उसके लिए मैं क्षमा चाहती हूँ। मम्मीजी! जिसतरह आपको अपना धर्म प्यारा और सच्चा लगता है, वैसा मुझे अपना धर्म प्यारा व सच्चा लगता है। आप अपनी धर्म आराधना के लिए जो भी करना चाहें, करें। मैं सदैव सहयोग करती हूँ और करूँगी; परन्तु जब कोई मुझे मेरे धर्म के विरुद्ध कुछ कहता है तो बहुत बुरा लगता है। इसलिए कल मैंने गुस्से में जो कुछ कहा, उसके लिए क्षमा चाहती हूँ।

मेरे मम्मी-पापा ने मुझे जन्म से जो संस्कार दिये हैं, मैं उन्हें गलत नहीं समझती, पर यह भी सच है, वह सब क्यों किया जाता है, मैं यह

भी नहीं जानती। आप यहाँ रहेंगी तो मैं आपसे धीरे-धीरे समझने का प्रयास करूँगी और यदि मुझे सही लगेगा तो स्वीकार भी करूँगी; परन्तु इस बात के लिए भी आप हमें छोड़कर नहीं जाइये। आपकी सेवा करने या आपकी विनय करने में मुझसे कुछ भूल हुई हो तो आप बताइये, मैं उसमें जरूर सुधार करूँगी। यहाँ पर तो आप ही मेरे मम्मी-पापा हैं। कल की बात के लिए मैं एक बार फिर से क्षमा चाहती हूँ।''

सौरभ ने कहा – ''मम्मी! कल सुनाक्षी ने जो व्यवहार किया, उसका मुझे भी बड़ा दु:ख है; पर आज जो सुनाक्षी कह रही है, वह भी सच है। आपको भी पता ही है कि सुनाक्षी अपने धर्म के प्रति आस्थावान है। आप साथ में हैं तो मैं अब धर्म के बारे में कुछ समझने लगा हूँ। यदि होनहार होगी तो सुनाक्षी भी समझ कर स्वीकार कर सकती है। आप अभी उज्जैन जाने का विचार मत बनाइये, हम दोनों आपसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं।''

''नहीं बेटा! आप दोनों की ही कोई गल्ती नहीं है, हम तो बस मित्रों से मिलना जाना चाहते हैं।'' ऋतुजी ने कहा।

''मम्मी! तो हम सब अगले शनिवार साथ में उज्जैन चलेंगे और मिलकर वापिस आ जायेंगे। हम रहेंगे तो आपके साथ इन्दौर में ही।'' मुस्कुराते हुए सौरभ ने कहा। ''सुनाक्षी भोजन की तैयारी करो, आज हमें ऑफिस भी चलना है।''

''ठीक है बेटा जैसा तुम कहोगे वैसा ही करेंगे। बेटा! तुम दोनों तैयार हो जाओ, मैं तब तक भोजन तैयार करती हूँ।'' ऋतुजी ऐसा कहकर रसोई में चली गयीं और सौरभ-सुनाक्षी तैयार होने कमरे में चले गये। जयन्त भी रसोई में ऋतुजी के पास आये दोनों की ही आँखों में ''कुछ खुशी-कुछ गम के आँसू थे।''

OOO

25

'**म**ध्यान्तर के बाद' समारोह मनाकर सभी अपने-अपने घर पहुँच गये। सभी श्रोताओं के मन पर इस संवाद ने अपनी छाप छोड़ी थी, कुछ न कुछ संकल्प लेकर ही सभी ने प्रस्थान किया।

भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण दिवस के 5 दिन पूर्व ही सोनम ने सरलादेवी से कहा कि "मम्मीजी अपने जैनधर्म में दीपावली क्यों मनाई जाती है? वह बताइये न।"

सरलादेवी यह सुनकर तो बहुत खुश हुईं और उन्होंने अनिकेत व सोनम को दीपावली जो कि भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण दिवस है, उसके संबंध में विस्तार से समझाया कि उस दिन अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ था, समस्त कर्मों का अभाव करके, जन्म-मरण का नाश करके अनंतकाल तक के लिए वह सुखी हो गये, इसलिये हम निर्वाण दिवस मनाते हैं ।

इसी तरह धन्य तेरस व गौतम गणधर के केवलज्ञान की प्राप्ति के संबध में भी जानकारी दी जो इन्होंने बहुत ही प्रेम से सुना।

तेरस के दिन सोनम प्रातःकाल ही जल्दी उठकर तैयार होकर कमरे से बाहर आते ही सरलादेवी से जय जिनेन्द्र करने के बाद बोली "मम्मीजी आज धन्यतेरस है न?"

"हाँ आज कार्तिक कृष्ण तेरस है, जिसे लोग धनतेरस के रूप में मनाते हैं।"

"मम्मीजी! आज के दिन तो सब लोग कुछ न कुछ लेते हैं, कोई सोना तो कोई बर्तन-कपड़े आदि।"

"हाँ लोग लेते तो हैं, वह समझते हैं कि यदि आज लेंगे तो शुभ रहेगा।"

"मम्मीजी! मैं भी आज के दिन कुछ लेना चाहती हूँ।"

"बेटा! आज के दिन ही क्यों? और तुम्हें किस चीज की जरूरत है? अभी तो बाजार में भीड़ रहती है "तुम तो पढ़ी-लिखी हो, जानती हो कि कोई दिन शुभ या अशुभ नहीं होता।"

"वो सब तो ठीक है; पर मम्मीजी मैं तो आज ही लूँगी।" सोनम ने प्रेम भरी जिद से कहा।

"तुम्हें जो करना हो करो, तुम सी.ए. हो , होशियार हो, तुम कमाती हो, अपनी मर्जी से खरीदती हो, सो जब चाहो, जो चाहो ले लो न; मैं कौन होती हूँ मना करने वाली।" सरलादेवी उदास होती हुई बोलीं।

"मम्मीजी! आप तो नाराज हो रही हो, आप यह तो पूँछो कि मैं क्या लेना चाहती हूँ।"

"तुम्हारी मर्जी जो चाहे लो न मैंने कह तो दिया। मैं नाराज कैसे हो सकती हूँ, मुझे इसी घर में रहना है।"

"अरे मम्मीजी! आप ऐसा मत सोचिये, घर आपका ही है, हम आपके घर में रह रहे हैं। पर आप पूछो तो कि क्या लेना है, मैं अनिकेत के लिए भी वही ले रही हूँ।"

सोनम की जिद और प्यार भरी बातें सुनकर सरलादेवी ने कहा "अच्छा! बताओ कि तुम क्या लेना चाहती हो?"

"मम्मीजी! आपने कहा था कि तेरस के बाद भगवान की वाणी सुनने को नहीं मिली थी, तो हम दोनों आज धन्यतेरस के दिन नियम

ले रहे हैं कि हम आज से भगवान महावीर स्वामी की वाणी का स्वाध्याय करेंगे। मम्मीजी! हम आपके सामने स्वाध्याय का नियम ले रहे हैं।''

यह कहते हुये सोनम सरलादेवी से लिपट गई, अनिकेत खड़ा-खड़ा यह सब देख रहा था, वह भी मम्मी के पास आया; दोनों ने माँ के पैर छुये, सरलादेवी की आँखों में आँसू आ गये। वह बोली ''मेरा तो अनीशा के घर सागर जाना और यह निर्वाण दिवस का आना दोनों ही सफल हो गये, अरे! इतना ही नहीं मेरा तो जीवन ही सफल हो गया।''

''नहीं मम्मी! आपका तो धर्म साधना करने से जीवन सफल हो ही रहा था, अब हम भी अपना जीवन सफल करने के मार्ग पर चलेंगे। मम्मीजी आप अपने पोते अनी को तो संस्कार दे ही रही हो पर क्या अपनी संस्कारहीन बहू को संस्कार देकर जैन नहीं बनाओगी?''

''अरे बेटा! मैं तो क्या बनाऊँगी तू तो स्वयं बहुत होशियार है, हम मिलकर जिनवाणी से सीखेंगे, हम सब प्रतिदिन स्वाध्याय में चलेंगे और जैन होने का अर्थ समझ कर जिन बनने का प्रयास करेंगे।''

सभी प्रसन्नता पूर्वक मंदिर दर्शन करने व स्वाध्याय का लाभ लेने चल दिये।

सरलादेवी मन ही मन गुनगुना रही थीं - ''धन्य-धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है।''

○○○

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में, तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम – समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट	**स्थापना तिथि** – 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल – **संरक्षक :** 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री चन्द्रभान जैन घुवारा, 3. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 4. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 5. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष – राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** – अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** – रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** – डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** – पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** – पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री कोटा, इंजी. सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र 'ओजस्वी' आगरा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा – उद्देश्य : 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. चिकित्सा व शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त सहयोग को वितरित करना।

गतिविधि – 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **सुखायतन – सुखार्थी साधर्मियों के लिए निःशुल्क/सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक पर्यावरण प्रदान करना,** 4. साधर्मी वात्सल्य योजना – साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

निवेदन

आपने मुझे पूरा पढ़ लिया होगा, अब कृपया मुझे अलमारी में बन्द न करके, किसी अन्य रुचिवन्त पाठक के हाथों में पहुँचा दीजियेगा।

समर्पण द्वारा प्रकाशित साहित्य

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा

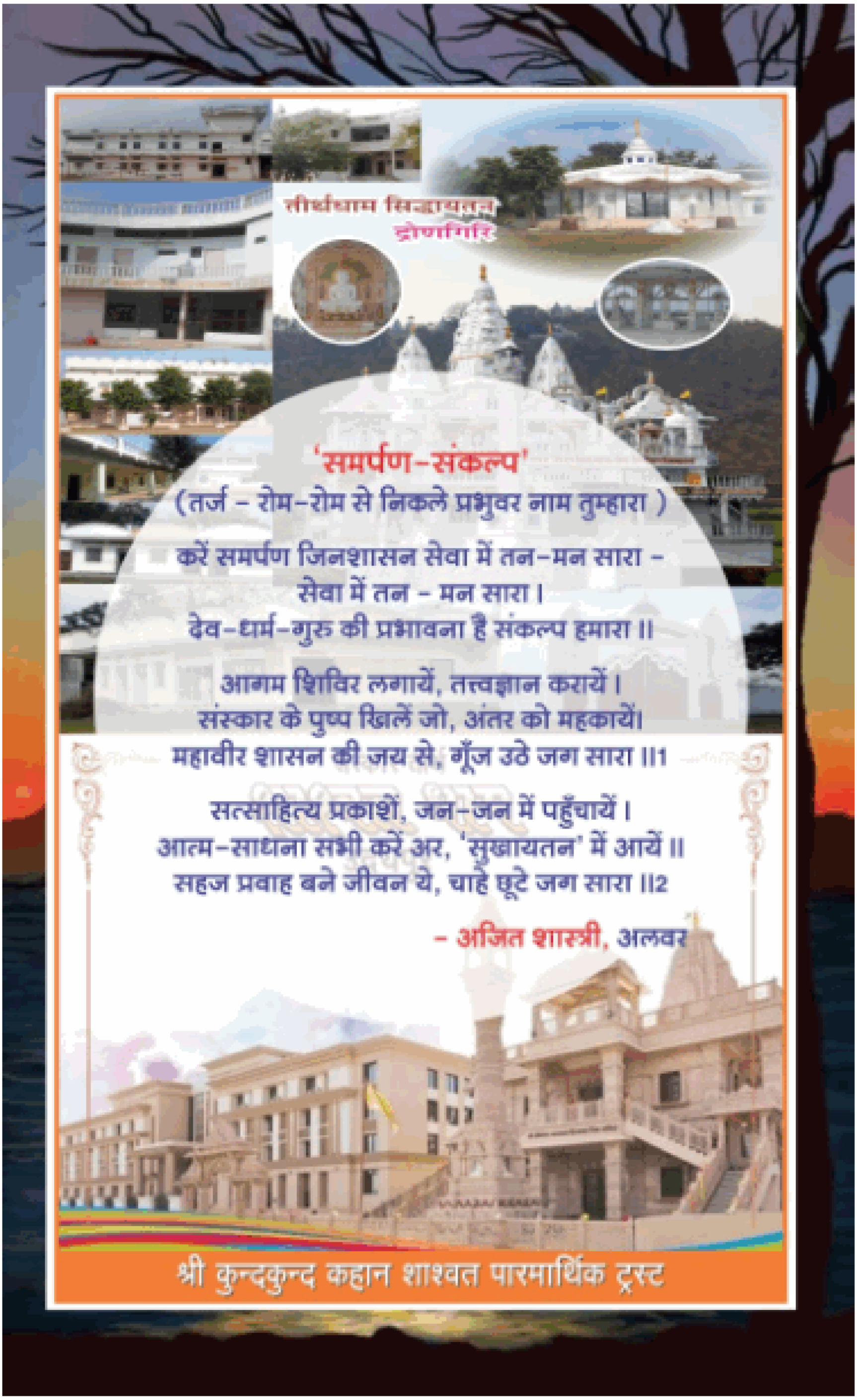
तीर्थधाम सिद्धायतन
द्रोणगिरि
'समर्पण-संकल्प'
(तर्ज - रोम-रोम से निकले प्रभुवर नाम तुम्हारा)
करें समर्पण जिनशासन सेवा में तन-मन सारा -
सेवा में तन - मन सारा।
देव-धर्म-गुरु की प्रभावना है संकल्प हमारा ॥
आगम शिविर लगायें, तत्त्वज्ञान करायें।
संस्कार के पुष्प खिलें जो, अंतर को महकायें।
महावीर शासन की जय से, गूँज उठे जग सारा ॥1
सत्साहित्य प्रकाशें, जन-जन में पहुँचायें।
आत्म-साधना सभी करें अर, 'सुखायतन' में आयें ॥
सहज प्रवाह बने जीवन ये, चाहे छूटे जग सारा ॥2
- अजित शास्त्री, अलवर
श्री कुन्दकुन्द कहान शाश्वत पारमार्थिक ट्रस्ट